ANCIENT INDIAN FESTIVALS

A Thesis SUBMITTED FOR THE DEGREE OF

DOCTOR OF PHILOSOPHY

OF THE FACULTY OF ARTS

BY

Sudha Singh

Supervisor

Prof. (Dr.) Geeta Devi
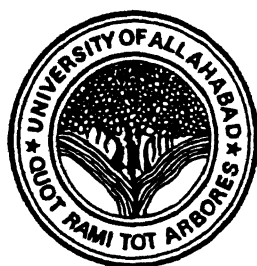
THE DEPARTMENT OF ANCIENT HISTORY, CULTURE AND ARCHAEOLOGY

UNIVERSITY OF ALLAHABAD

I N D I A (U.P.)

DECEMBER, 2002

पुरोवाक्

परिवार मे धार्मिक वातावरण का प्रभाव होने के कारण मेरे मानस–निर्माण में व्रतो–त्यौहारों की गहरी भूमिका रही है। व्रत–त्यौहारो पर होने वाले उत्सव अपने सास्कृतिक महत्त्व के कारण सदा से ही मुझे आकर्षित करते रहे तथा मै उन्हें केवल धार्मिक–अनुष्ठान मानने की जगह उसके सांस्कृतिक व सामाजिक आधारों का अपनी बौद्धिक क्षमता के अनुरूप विश्लेषण करती रहती थी। स्नातकोत्तर में प्राचीन इतिहास, सस्कृति एवं पुरातत्व का अध्ययन करते हुए इस विषय में मेरी रूचि और गहरी हो गयी। इसी रूचि और जिज्ञासा ने मुझे इस विषय में गहन अध्ययन के लिए आकर्षित किया, जिसे मैने अपने शोध–कार्य के विषय के रूप में चुना। इस विषय में मेरी जिज्ञासाओं की तृप्त करने का कार्य यदि अपने विद्वतापूर्ण निर्देशन के माध्यम से मेरी विदुषी शोध–निर्देशिका प्रो० (श्रीमती) गीता देवी ने न किया होता तो यह शोध कार्य अपनी पूर्णता तक कभी नहीं पहुँच पाता। अपने स्नेहसिक्त सम्बन्धों में उन्होंने मुझे इतना अधिक सहयोग किया कि उनके प्रति शब्दो में आभार प्रकट कर पाना मेरे लिए संभव ही नहीं है। कबीर ने 'गुरू' की जिस गरिमा और महत्ता का गान किया है, अपनी आदरणीय शोध–निर्देशिका में मैंने उसे मूर्त रूप में साकार पाया।

शोध कार्य को पूरा करने में जिनका आशीर्वाद और संरक्षण लगातार मिलता रहा उनको याद किए बिना मैं गुरू–ऋण से उऋण नहीं हो सकूँगी। पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो० बी०डी० मिश्र एवं वर्तमान अध्यक्ष प्रो० ओमप्रकाश के प्रति मैं अत्यंत आदर के साथ आभार व्यक्त करना चाहती हूँ, जिन्होंने अपने व्यस्ततम समय और अनेक दायित्वों के बीच भी मुझे प्रोत्साहन और संरक्षण दिया तथा

विभाग के पुस्तकालय आदि का पूरा उपयोग करने का सुअवसर उपलब्ध कराया। प्राचीन इतिहास विभाग के अन्य गुरूजनों के प्रति भी आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ, क्योंकि समय–समय पर उनके द्वारा दिये गये परामर्श के फलस्वरूप ही शोध के इस कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न किया जा सका है। डा० अनामिका राय एव डा० हर्ष कुमार के प्रति मैं विशेष रूप से आभार व्यक्त करना चाहती हूँ जिन्होंने अपने बहुमूल्य समय मे कुछ समय निकाल कर मेरा मार्ग दर्शन किया एवम् शोध के इस कार्य को पूर्णता प्रदान करने में हर सम्भव सहयोग किया।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध व्यंगकार श्री हरिशकर परसाई ने अपनी एक व्यग टिप्पणी में लिखा है कि महिलाओ के लिए शोध वह कार्य है जो एम०ए० के बांद और शादी के पूर्व किया जाता है। परिवारिक जीवन के दायित्वों का निर्वहन करते हुए किसी भी महिला के लिए शोध–कार्य एक दुष्कर स्वप्न की तरह है। मेरे ससुराल मे मेरे प्रति इतना उदार, सौहार्द्रपूर्ण एवं स्नेहसिक्त वातावरण मिला कि परिवार के किसी भी सदस्य ने शोध–कार्य के महत्व को कम करके नही आँका तथा मुझे पारिवारिक दायित्वों मे उलझने नही दिया। मै विशेष रूप से अपनी परमपूज्या सास माँ श्रीमती अवधा देवी के प्रति नतमस्तक हूँ जिनका असीम प्यार, व स्नेहपूर्ण व्यवहार इस अवधि में मेरा सम्बल व प्रेरणा श्रोत बना रहा। पुरूष प्रधान समाज में पति के मित्र होने की कल्पना सामान्यतः आदर्श ही है, पर मेरे पति श्री राम कृष्ण सिंह ने अपने व्यवहार से यथार्थ में परिणत कर दिखाया। उनका प्रोत्साहन यदि न मिला होता तो शोध–कार्य पूरा कर पाना कभी संभव ही नहीं होता। मै अपने उन सभी निकट सम्बन्धियों, मित्रों एवं शुभचिन्तकों के प्रोत्साहन् द्वारा किये गये उत्साहवर्धन, उनकी प्रेरणा तथा उनकी शुभेच्छाओं के प्रति धन्यवाद या आभार के चन्द शब्द कह कर, उनके

महत्व को कम नहीं करना चाहती। मात्र 'धन्यवाद' उनके योगदान के साथ न्याय नही होगा।

अत में इस लेख को टकित करने का श्रमसाध्य कार्य करने वाले श्री गौरव मोहन को भी मै धन्यवाद देना जरूरी समझती हूँ।

सुधासिंह
सुधा सिंह

ANCIENT INDIAN FESTIVALS
प्राचीन भारतीय उत्सव

अनुक्रमणिका

विषय-प्रवेश

भारतीय सस्कृति में सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं की उल्लास पूर्ण अभिव्यक्ति उत्सव का रूप ले लेती है, जो एक सामूहिक आयोजन भी बनता है। हमें इस प्रकार के विभिन्न आयोजनों के साक्ष्य प्राचीन भारतीय इतिहास के गर्भ में परिलक्षित होते है। प्राचीन भारतीय सामाजिक–रीतियों का क्रमिक अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनका सतत–क्रम समसामयिक ढाँचे में ढलते हुए भी निरन्तर बना रहा है, और आज भी विविध व्रत और त्यौहार के रूप में विद्यमान है। लेकिन हमें इस बात का ध्यान रखना होगा कि त्यौहार, उत्सव, व्रत और पर्व के बीच विभाजन रेखा खींचना बहुत दुष्कर कार्य है, क्योंकि जहाँ कुछ उत्सवों में धार्मिक तत्व का विशेष समावेश है, तो कहीं सामाजिक मान्यताओ का। वस्तुतः भारतीय संस्कृति से जिस प्रकार धार्मिक मान्यताओं को अलग करना उसकी आत्मा को अलग करना है, उसी प्रकार व्रत, पर्व, त्यौहार और उत्सव को अलग–अलग परिभाषित करना उसमें विकृति को जन्म देने के समान है। प्रायः हम भारतीय उत्सवों का ऐतिहासिक अध्ययन करते समय यह देखते हैं कि कभी व्रत और पर्व उत्सव का रूप ले लेते हैं, और उत्सव मनाते–मनाते पर्व की प्रधानता के कारण उसमें व्रत का समावेश हो जाता है।

त्यौहार हमारी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक बन चुके हैं। वे शताब्दियों से हमारे जीवन में गतिशीलता लाने के लिए प्रेरक–स्रोत सिद्ध हुए है। विविधता ही हमारी संस्कृति और सभ्यता की विशेषता है। ये विविध व्रत, पर्व और उत्सव जीवन को न केवल गतिशीलता प्रदान करते हैं, बल्कि इनसे जुड़ी शिक्षाप्रद कथाएँ सर्वतोन्मुखी विकास में भी सहायता प्रदान करती हैं। हमारी संस्कृति

अनेक जन–जातियो के कर्मकाण्डों और सस्कारों को समाहित कर, एक महासमुद्र की तरह है, जिसमें अनेकानेक व्रत, पर्व त्यौहार एवं उत्सव रत्न–राशि की भॉति पाये जाते है। ये रत्नराशि सामाजिक और धार्मिक सौहार्द्र एव सहिष्णुता को बनाये रखने मे भी सहायक सिद्ध होते हैं। साथ ही साथ यन्त्रवत् जीवन में एक नयी स्फूर्ति एवं एक नयी उमंग का भी सचार करते हैं। इन आयोजनो के द्वारा नयी सचेतना का सृजन भी होता है। व्रत और उत्सव के सम्बन्ध मे प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन करते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कभी तो व्रत, पर्व आदि व्यक्तिगत स्तर पर साध्य थे, जैसे–चिन्तन–मनन, स्वाध्याय आदि, और कभी उनका पारिवारिक स्तर पर महत्व बढ़ जाता था, जैसे षोडश–सस्कार के माध्यम से श्रेष्ठ गुणों का विकास और पारिवारिक सम्बद्धता को बनाये रखनें का प्रयास दिखाई पड़ता है। सामाजिक स्तर पर मनाये जाने वाले उत्सवों की महत्ता भी हमें देखने को मिलती है। कभी–कभी किसी विशेष पर्व के आयोजनों मे राजनैतिक गतिविधियों का भी योगदान रहा है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में धार्मिक सहिष्णुता एवं समरसता को बनाये रखने में उत्सवों का विशेष महत्व है। ये पर्व एव उत्सव मनुष्य में शिथिलता दूर कर एक स्फूर्ति भर देते हैं। जितने पर्व और त्यौहार हम मनाते हैं, वे सभी मनुष्य की थकान दूर करते हैं। वे नई आशा और नई उमंग का सचार करते हैं एवं नये विचारों की प्रेरणा देते हैं। उस समय मनुष्य अपनी भूलों को सुधारता है और नये उत्साह के साथ, नयी उमंग तथा नयी चेतना के साथ आगे बढता है। ये उत्सव प्रसन्नता के वातावरण का सृजन करते हैं।

इसके साथ ही साथ हम यह भी देखते हैं कि कुछ उत्सव ऋतु से सम्बन्धित होते हैं। नयी ऋतु के आगमन पर किसी न किसी उत्सव का

आयोजन भारत वर्ष में सर्वत्र किया जाता है। उनका क्षेत्रीय रूप भिन्न–भिन्न हो सकता है। ऋतु परिवर्तन के अनुसार मकर–संक्रान्ति, बसन्त पंचमी आदि को हम सास्कृतिक पर्व के रूप में देखते है। रामनवमी, जन्माष्टमी जैसे व्रत एंव उत्सव किसी न किसी विभूति–जिन्हें हम अवतार के रूप मे मानते हैं– से सम्बन्धित हैं इसलिए इनका सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व है। इस दिन व्रत करने का उद्देश्य मनुष्य के अन्दर उस विशिष्ट अवतार के गुणो का उदय होना है। इस प्रकार हम यह देखते है कि पर्व, त्यौहार एवं व्रत ये एक दूसरे से परस्पर जुड़े हुए है।

यहाँ उत्सवों का विभाजन ऋतुओं के आधार पर करने का प्रयास किया गया है। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा,शरद, हेमन्त एव शिशिर ऋतुओ मे क्रमशः सम्पादित होने वाले उत्सवों का वर्गीकरण किया गया है। प्राचीन भारतीय साहित्य व्रत, पर्व त्यौहार एवं उत्सवों के उल्लेख और उनकी परस्पर सन्निकटता एव महत्ता के वर्णन से परिपूर्ण है। मैने अपने शोध–प्रबन्ध में उत्सवों से सम्बन्धित प्रासंगिक काल–विभागों की भी चर्चा की है। तद्नुसार युग, संवत्सर, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार एवं नक्षत्र का उल्लेख किया गया है। ऋतुओं के एक पूरे चक्र को 'संवत्सर' कहते हैं। सूर्य की गति को 'अयन' कहते है। अयन दो प्रकार के होते हैं–**उत्तरायण, दक्षिणायन**। उत्तरायण मे ग्रीष्म के छः महीने होते हैं यह समय देवताओं का दिन माना गया है। दक्षिणायन् ठण्ढ के छः महीने हैं जो देवताओ की रात्रि मानी गयी है। एक अयन में कई ऋतुएँ होती है। शास्त्रों में ऋतुओं का आगमन प्रकृति में परिवर्तन का परिणाम बताया गया है। ऋग्वेद में मास (बारह मास) का वर्णन प्राप्त है। मास दो पक्ष में विभाजित है–कृष्णपक्ष, शुक्लपक्ष। इसके साथ ही वनस्पतियों की उत्पत्ति और उनका क्षय भी सम्मिलित

है। एक प्रकार से यह वर्णन सम्पूर्ण पर्यावरण का प्रतीक है। तिथियॉ दो प्रकार की होती हैं–पूर्णा एव सखण्डा। सिद्धान्तत· तिथि चन्द्रमा एवं सूर्य की गति से सम्बन्धित है। उनका अत्यधिक प्रभाव पडता है और नक्षत्रों के अनुसार ही खगोल में चन्द्रमा का उचित स्थान दृष्टिगोचर होता है। अतः चन्द्रमा के वर्तमान प्रभाव को जानने के लिए पंचांग के नक्षत्रों को जानना आवश्यक है। धार्मिक त्यौहारो एवं शुभ कार्यो मे नक्षत्रों के साथ–साथ 'वारों' को प्रशस्त माना गया है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ही 'संवत्सर' का प्रारम्भ होता है। ब्रह्मा ने चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय होने पर जगत् की सृष्टि की थी। अतः इस तिथि को सृष्टि का आरम्भ मानते हैं।

शोध प्रबन्ध में वसन्त ऋतु से सम्बन्धित उत्सवों का वर्णन किया गया है जैसे **वसन्तोत्सव**, **होलिकोत्सव**, **शिवरात्रि**, **रामनवमी** इत्यादि। कालिका पुराण में वसन्त की उत्पत्ति के विषय में शिव को सम्मोहित करने के निमित्त इस ऋतु के सृजन का वर्णन प्राप्य है। इस अवसर पर काम के देवता मदन की पूजा की जाती है। कतिपय विशिष्ट ग्रन्थों में इसे 'मदनोत्सव' के रूप में उल्लिखित किया गया है। इस अवसर पर समस्त वातावरण रतियुक्त रहता है, एवं संगीत की प्रधानता रहती है। वसन्तोत्सव की पूर्ण वासन्ती चन्द्रिका छिटकी रहती है। इस ऋतु मे पडने वाले उत्सव होलिकोत्सव में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें सबका समान मनोरंजन होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, बालक, वृद्ध, स्त्री, नवयुवक सबको यह पर्याप्त मनोरंजन और उत्साह प्रदान करता है। इस त्यौहार में वर्णाश्रम धर्म की किसी मर्यादा की कट्टरता नहीं रह जाती है। आसुरी प्रवृत्तियों का दमन, आदर्श मानव–मूल्यों का विकास और रंगों का प्रयोग प्रेम की जीवन्तता की ओर संकेत करता है। इस ऋतु का प्रमुख पर्व है शिवरात्रि।

ऐसी अवधारणा है कि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन शिव ने समुद्र–मन्थन के उपरान्त निकले हुए विष का पान किया था और वे मूर्छित हो गये थे। तब समस्त देवता रात्रि भर शिव की मगल कामना करते रहे। कालान्तर में यह पर्व **शिव-रात्रि** के रूप में प्रचलित हुआ। इस पर्व के विषय मे यह अवधारणा है कि सूर्य के समान तेज–पुंज के प्रतीकात्मक लिग का प्रादुर्भाव इसी तिथि को हुआ था। इस कारण से यह महाशिवरात्रि मनायी जाती है। पुराणों में इसे शिव की जननेन्द्रिय कहा गया है। मगध की ऋषि पत्नियों की कथा मे शिव की जननेन्द्रिय की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। शिव रात्रि के अवसर पर लिंग–पूजा, अर्चना एव लिग स्नान रात्रि के चारो प्रहरों में करने का विधान है। इस ऋतु की रामनवमी नामक उत्सव के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि यह चैत्र शुक्ल की नवमी को मनाया जाता है। भारतीय जीवन में यह पर्व पवित्रता के पर्व के रूप में प्रतिष्ठित है। चैत्र मासीय नवरात्र को 'वासन्तीय' नवरात्र के रूप में भी जाना जाता है। जो मनुष्य भक्तिभाव के साथ रामनवमी व्रत करते हैं, उन्हे महान फल मिलता है। रामनवमी एक राष्ट्रीय पर्व है। यह हिन्दू सस्कृति का परिचायक तथा हमारे विराट् आदर्शों का परिचायक है। तह हमारी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को जागृत करने वाला प्रकाश स्तम्भ है और हिन्दू–जाति के लिए उत्साह का स्रोत है।

ग्रीष्म ऋतु में पड़ने वाले उत्सवों से सम्बन्धित **गंगादशहरा**, **अक्षय तृतीया**, **रथयात्रा** आदि का विवेचन किया गया है। ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की दशमी 'गंगा दशहरा' के नाम से विख्यात है। दशहरा का तात्पर्य धर्मशास्त्रकारों के अनुसार, दस पापों को दूर करने वाली तिथि, अर्थात् इस दिन गंगा जी में स्नान करने से मनुष्य दस पापों से छुटकारा पा जाता है। ये दस पाप तीन

प्रकार के है—कायिक, वाचिक और मानसिक। वर्ष भर के इन तीनों प्रकार के दसो पापों को नष्ट करने की शक्ति दशहरा स्नान मे है। वैशाख की शुक्ल पक्ष की तृतीया को 'अक्षय तृतीया' कहते है। इस दिन दिये गये दान और किये गये स्नान, होम, जप आदि का फल अनन्त होता हैं। इस ऋतु के उत्सवों में 'रथयात्रा' का भी वर्णन किया गया है। अपने आराध्य देव के निमित्त मांगलिक उपचारों को सम्पन्न करते हुए तथा इष्ट देव की प्रतिमा को रथ पर आयोजित करने के पश्चात् लोगों के दर्शनार्थ निकालने की प्रथा इस अवसर पर अब भी परिलक्षित होती है। रथ बनाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि रथ टूटने न पाये। सूर्य—रथ टूटने पर कई अमगलकारी परिणाम शास्त्रों में निर्दिष्ट हैं। सतर्कता पूर्वक निर्मित रथ को अच्छी प्रकार से विभूषित करने के पश्चात् विधिपूर्वक वेदोच्चारण इस अवसर पर वांछनीय है। जय मंगल घोष एवं वाद्य—ध्वनि तथा पुष्प—वृष्टि और धूप से सुगन्धित रथ को वहन करना अनिवार्य है। इस प्रसंग में जगन्नाथ—पुरी की रथयात्रा बहुत प्रसिद्ध है।

वर्षा—ऋतु में सम्पादित **नागपंचमी**, **रक्षाबन्धन**, **कृष्णजन्मोत्सव**, **गणेश-चतुर्थी** आदि उत्सवों का वर्णन किया गया है। नागपूजा भारतीय लोकधर्म का पुराना रूप है। वैदिक, बौद्ध एवं जैन— इनमें से प्रत्येक धर्म के साथ नागपूजा का गहरा रिश्ता है। यह श्रावण—शुक्ल पंचमी को 'नागपंचमी' के उत्सव के रूप में मनाया जाता है। 'रक्षा बन्धन' श्रावण—पूर्णिमा के दिन पड़ता है। इसीलिए इसे 'श्रावणी' नाम से भी जाना जाता है। इसका पारिवारिक, सामाजिक एवं धार्मिक पहलू है। इसमें स्त्रियों द्वारा भाइयों की कलाई पर राखी या रक्षा के लिए धागा बाँधकर भाइयों द्वारा उपहार प्राप्त किया जाता है। यह राखी उनको भाई एवं मित्र बनाती है। श्रावण पक्ष की अष्टमी को 'कृष्ण

जन्माष्टमी' व्रत एव उत्सव प्रचलित हैं। यह भारत में सर्वत्र मनाया जाता है और सभी व्रतों एव उत्सवो में श्रेष्ठ माना जाता है। 'गणेश–चतुर्थी' का उत्सव भाद्र कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को किया जाता है। गणेश हिन्दुओं के आदि देवता है। सनातन धर्मानुयायी स्मार्तो के पंचदेवताओं में 'गणेश' प्रमुख हैं। वर्तमान काल में ऐसी मान्यता है कि यदि कोई गणेश–चतुर्थी को चन्द्रदर्शन कर लेता है, तो उसे चोरी का झूठा अभियोग लग जाता है। गणेश जी बुद्धि के देवता हैं, और वह भी विवेचनात्मक बुद्धि के। मन, वचन और कर्म से पवित्र होकर अनुष्ठान करने से गणेश की असीम अनुकम्पा प्राप्त होती है।

शरद ऋतु से सम्बन्धित उत्सवों, जैसे **नवरात्र** (दुर्गोत्सव), **विजयादशमी**, **दीपावली** का वर्णन किया गया है। 'नवरात्र' शब्द का सम्बन्ध नौ रातों से है, जिसे ग्रन्थो मे शक्ति के नौ रूपों सा वर्णित किया गया है। मातृदेवी की उपासना से सम्बन्धित संकेत वैदिक साहित्य मे ही प्राप्त होने लगते हैं। महाभारत और रामायण दोनो मे ही अवतरित पुरूषों के साथ देवी की उपासना से सम्बन्धित प्रकरण उल्लिखित है। 'नवरात्र' अथवा दुर्गापूजा का उत्सव आश्विन शुक्ल प्रतिपदा तिथि से नवमी तक किसी न किसी रूप में सर्वत्र आयोजित होता है। कालिका पुराण में दुर्गा एवं भैरव के सम्मान में बलि दिये जाने वाले जीवो का वर्णन प्राप्त है। ऐसा भी उल्लेख है कि भगवती मन्त्रों के साथ चढाया हुआ शोणित (रक्त) एवं शीर्ष दोनों ग्रहण करती हैं। आश्विन शुक्ल की दशमी को विजयादशमी भी कहा जाता है। भगवान राम चन्द्र जी ने इसी दिन लका पर चढाई की थी एवं रावण का वध कर उस पर विजय प्राप्त की थी। तभी से यह पावन तिथि 'विजयादशमी' के नाम से विख्यात हुई और इस दिन विजय यात्रा का पर्व मनाया जाने लगा। 'ज्योतिष' नामक निबन्ध मे लिखा

है कि आश्विन के शुक्ल पक्ष की दशमी को तारा उदय होने के समय 'विजय काल' होता है। यह समस्त कार्यो को सिद्ध कराने वाला होता है। विजयादशमी वर्ष की तीन अत्यन्त शुभ–तिथियों मे एक है। अन्य दो हैं–चैत्रशुक्ल एवं कार्तिकशुक्ल की प्रतिपदा। इसलिए इस दिन बालक अक्षरारम्भ करते है। 'सरस्वती–पूजा' के लिए यही तिथि वांछनीय है। श्रवण–नक्षत्र में राजा शत्रु पर आक्रमण करते हैं। अपराजिता पूजा, शमीपूजन, सीमोल्लंघन, घर को पुनः लौट आना एवं घर की नारियों द्वारा घोडों, हाथियों एव सैनिकों का नीराजन तथा परिक्रमा कराना भी विहित है। इस ऋतु के कार्तिक मास में आयोजित होने वाली दीपावली का उत्सव आज भी परम्परागत स्वरूप को किंचित परिवर्तनों के साथ सुरक्षित किये हुए है। समय–समय पर इसके अन्तर्गत लक्ष्मी–पूजा, यक्षपूजा, कुबेरपूजा, आदि कार्य भी सम्मिलित किये गये हैं, परन्तु इनके मूल में सम्भवतः यही भावना क्रियाशील है जिसमें देवताओ को सम्मिलित कर इसके श्रद्धापक्ष, सत्यपक्ष, नीति एव सद्भाव पक्ष आदि को सम्पुष्ट किया गया है। इस पर्व में आन्तरिक शुद्धता के साथ वाह्य शुद्धता पर भी बल दिया गया है। अतः लोग अपने घरों के कूड़ा–कचरा एवं गन्दगी का नाश करते हैं। भारतीय संस्कृति में मृत्यु की भी वन्दना की गई है। इसी लिये इस अवसर पर यम की पूजा का भी प्रचलन है एवं सायंकाल उसके नाम का दीपक जलाया जाता है। 'भ्रातृ–द्वितीया' विशुद्ध प्रेम का प्रतीक है, जिसमें भाई बहन की समस्याओं को अपनी व्यक्तिगत समस्या समझकर उसे स्वय सुलझाने का प्रयास करता है।

क्रमशः शिशिर–ऋतु में सम्पादित उत्सवों का प्रसङ्ग प्राप्त है। **मकर संक्रान्ति** विषयक यह अध्याय इस पर्व की सांस्कृतिक महत्ता पर प्रभाव डालता है। मकर–संक्रान्ति का अर्थ है सूर्य का धनु राशि से मकर राशि में प्रविष्ट

होना। जब सूर्य धनु राशि को छोडकर मकर राशि मे प्रविष्ट होता है, तब 'मकर संक्रान्ति' होती है। इस अवसर पर स्नान, दान से पुण्य होता है। प्रचलित अवधारणा के अनुसार ऐसा करने से मनुष्य ब्रह्म–लोक प्राप्त करता है। पौराणिक परम्परा के अनुसार इष्ट काल मे किया गया दान अक्षय होता है। इस अवसर पर सूर्य उत्तरायण होता है। दक्षिण भारत में इस अवसर पर 'पोंगल' नामक उत्सव मनाया जाता है।

प्रथम अध्याय

प्राचीन भारत में व्रत-पर्व, त्यौहारएवं उत्सवों की व्याख्या

प्राचीन भारत में व्रत-पर्व, त्यौहार एवं उत्सवों की व्याख्या

व्रत,पर्व और त्योहार यद्यपि ये तीनों उत्सव के भिन्न–भिन्न रूप हैं, तथापि किसी न किसी रूप में परस्पर विचित्र समानता पायी जाती है। व्रत का विधान बहुधा आध्यात्मिक अथवा मानसिक शक्ति की प्राप्ति के लिए, चित्त की शुद्धि के लिए, संकल्प शक्ति की दृढ़ता के लिए, ईश्वर की भक्ति और श्रद्धा के विकास के लिए, तथा अपने विचारों को उच्च एवं परिष्कृत करने के लिए किया जाता है। पर्व किसी मुख्य तिथि अथवा ज्योतिष के अनुसार ग्रहो आदि के संयोग का ही दूसरा नाम है, जो किसी निर्दिष्ट समय पर आता है। त्यौहार एक सामान्य शब्द है। प्रायः इसका प्रयोग व्रत और पर्व को विधि विधान से करने के लिए किया जाने लगा है[1] क्योकि व्रत, पर्व बहुधा आत्मशुद्धि और सकल्पशक्ति के उद्देश्य से जुडा हुआ है, इसलिए मनुष्य जीवन में उसकी सतत पुनरावृत्ति होती रहे न कि केवल ज्ञान क्रीड़ा में सिमट कर रह जाये इसलिए हमारे पुराविदो ने उसे त्यौहार अथवा उत्सव का रूप दे दिया।

मानव जीवन में स्वाध्याय मनन और चिन्तन तथा उपासना को भी व्रत का एक अंग माना गया है। जिसके द्वारा मनुष्य में श्रेष्ठ गुणों का विकास और आत्म शक्ति की वृत्ति हो। व्यक्ति परिवार और समाज से भी जुड़ा हुआ है। और दोनों के ही प्रति उसके उत्तरदायित्व को विकसित करने से ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास कहा जाता है। व्यक्ति परिवार और समाज एक सूत्र में बँधे रहे इसीलिए सम्भवतः षोड्श–संस्कार के माध्यम से आजीवन एक दूसरे के प्रति कर्तव्य बोध को बनाये रखने की व्यवस्था की गयी।

---

[1] शास्त्री राम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दुओ के व्रत, पर्व और त्यौहार पृष्ठ ११–१२।

प्राचीन भारतीय धार्मिक साहित्य मे व्रत को विभिन्न प्रकार से अलग–अलग मनिषियों द्वारा परिभाषित किया गया है, जैसे–– जैमिनीकृत 'मीमांसासूत्र' मे[२] में कहा गया है कि व्रत एक मानस प्रक्रिया है, जो प्रतिज्ञा के रूप मे होती है, यथा–'मै यह नहीं करूँगा। मेधातिथि[३] ने भी इस मत को स्वीकार करते हुए व्रत को व्यक्ति की स्वप्रतिज्ञा अथवा स्वदृढ निश्चय के रूप में ही बताया है। अग्निपुराण[४] में लिखा गया है कि शास्त्र द्वारा घोषित नियम का पालन करना ही व्रत है, मनु ने व्रत को सकल्प से जोडते हुए कहा है कि "सकल्प सभी कामो का मूल है, सभी यज्ञों, सभी व्रतो का मूल है।, इनकी विशेषताएँ तथा नियम संकल्प से ही उत्पन्न होते है।" मनु के इस कथन से यह ज्ञात होता है कि संकल्प ही व्रत का दूसरा नाम है जिसका सीधा सम्बन्ध मनुष्य के निश्चयात्मक बुद्धि से है अर्थात जब तक मनुष्य दृढ़ निश्चय नहीं करेगा तब तक उसकी कार्य सिद्धि नहीं होगी। एक प्रकार से मनु ने कार्यों की सिद्धि के मूल में संकल्प अर्थात व्रत को महत्व दिया है। नियम तथा व्रत समानार्थी है, जो पुण्य उत्पन्न करते हैं।

किन्तु प्रत्येक संकल्प व्रत नही कहा जा सकता। मिताक्षरा[५] के अनुसार व्रत मानसिक संकल्प है जिसके द्वारा कुछ किया जाता या कुछ नहीं किया जाता, दोनों कर्तव्य रूप में लिए जाते हैं। धर्मसिन्धु[६] ने व्रत को पूजा आदि से सम्बन्धित धार्मिक कृत्य माना है।

---

[२] जैमिमिपूर्व मिमांसासूत्र (६,२,२,०)

[३] मेघातिथि (२–३)

[४] अग्निपुराण १७५,(२–३)

[५] मिताक्षरा (याज्ञवल्क्य स्मृति) १, १२६

[६] धर्म सिन्धु पृष्ठ ६

श्री दत्त ने कहा है कि व्रत भावात्मक या अभावात्मक हो सकता है उनके अनुसार वह संकल्प जिसके साथ कोई प्रतिबन्ध लगा हो अथवा जो शास्त्रो द्वारा निर्धारित न हो, व्रत नहीं कहलाता है। व्रत–प्रकाश ने व्रत को एक विशिष्ट संकल्प माना है, जो विद्वानों को व्रत के रूप में भली–भॉति विदित है।

इन सब पर दृष्टिपात करके यह ज्ञात होता है कि व्रत एक निर्दिष्ट संकल्प है जो किसी विषय से सम्बन्धित है। यदि कोई दुर्बल बुद्धि का व्यक्ति या अज्ञानी व्यक्ति बिना किसी संकल्प के व्रत करे तो वह मात्र शरीर–क्लेश कहा जायेगा, न कि व्रत।

निर्णय सिन्धु मे व्रत में सकल्प की विधि इस प्रकार बतायी गयी है कि उत्तर की ओर मुख करके जल से पूर्ण तॉबे का पात्र रखें और उससे हाथ में जल लेकर उद्देश्य की इच्छा करके व्रत का आरम्भ करें। मदन रत्न में गार्ग्य का वचन है कि गुरू और शुक्र के अस्त होने पर और मलमास में व्रत के प्रारम्भ का विशेष महत्व है। देवल का वचन है कि प्रातः काल स्नान करके भोजन किये बिना सूर्य आदि देवताओं का निवेदन करके व्रत करें। सामान्य रूप से किसी भी व्रत के दस धर्म है ऐसा मदन रत्न में भविष्य ने बताया है–क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, देवता की पूजा, मन्त्रों के साथ होम (आहुति), संतोष और चोरी न करना। नन्दिपुराण के अनुसार व्रत की समाप्ति पर उसका उद्यापन अवश्य करे क्योकि उसके बिना व्रत निष्फल होता है।

कभी–कभी व्रत उत्सव का रूप ले लेते हैं। व्रत एवं उत्सवों में विभाजन रेखा खीचना दुष्कर है क्योंकि बहुत से उत्सवों में धार्मिक तत्वों का समावेश होता है और इसी प्रकार बहुत से व्रतों में उत्सवों की गन्ध आती है। यहाँ कुछ ऐसे उत्सवों का वर्णन है जिन्हें व्रत भी कहा जा सकता है।

आज व्रत का सामान्य अर्थ उपवास हो गया है, जिसका तात्पर्य है दुर्गुणों से बचकर आत्मा अथवा गुणो के साथ वास अर्थात् निवास। अनुभव से देखा जा सकता है कि पाप अथवा कलुषित भावनाओं से मुक्त होकर चित्त–वृत्तियों को आत्मा अथवा सत्य में सन्निविष्ट करने की प्रेरणा उपवास के समय में अधिक होती है। भारतीय संस्कृति मे उपवासो का सर्वाधिक महत्त्व है। ऐसा कोई भी महीना नहीं जिसमें उपवास करने का विशेष महत्त्व न बताया गया हो। व्रत–उपवास केवल–नारियों के लिए नहीं बल्कि प्रत्येक बालक, बालिका, वृद्ध, युवा और महिलाओं के लिये उसका विधान है।

इन व्रतो तथा पर्वो में हमारे देश के भिन्न–भिन्न मतावलम्बी लोगों के लिए अपनी–अपनी कुल परम्परागत मान्यता के अनुसार चलने की पूरी सुविधाएँ प्रदान की गयी है। व्रतों की कथाओं का भी जीवन को प्रशस्त करने के मार्ग मे अत्यधिक महत्त्व है। ये इतनी निपुणता के साथ ग्रथित हुई है कि इनका सरल हृदयों पर अत्यन्त गम्भीर प्रभाव पड़ता है, और सहज श्रद्धा उत्पन्न होती है। ये कथाएँ वास्तव में इन व्रतों की संजीवनी शक्ति हैं। शारीरिक तथा मानसिक शुद्धि का व्रतो के अनुष्ठान में विशेष महत्त्व है। व्रत का अर्थ बन्धन युक्त सत्कर्म है। संकल्पपूर्ण व्रतों का फल अमोध होता है। व्रतों मे पूजन एव उनके नियमों तथा विधि–विधानों का पालन भी विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। पूजन में शुद्ध मन और शुद्ध शरीर दो बातों पर विशेष ध्यान देने को कहा गया है। देवमन्दिर, नदी अथवा सरोवर के तट, वृक्षो के कुंज अथवा उपवनों आदि में व्रतों के पूजन का विशेष महत्त्व बताया गया है। शारीरिक तथा मानसिक शुद्धि का व्रतों में विशेष महत्त्व है। यदि मनुष्य का शरीर तथा वस्त्रादि अपवित्र है, मन चंचल है तथा दूषित है तो व्रत का फल उसे नही मिलेगा। इस प्रकार व्रत में पूजा करते समय चित्त की एकाग्रता को प्रमुखता दी गयी है। प्राचीन काल में सोने, चाँदी की

आज जैसी कमी नहीं थी इसलिए आज मृत्तिका की मूर्ति सुविधा से स्थापित की जा सकती है।

व्रतों का सम्बन्ध ऋतुओ के परिवर्तन से होने वाले त्यौहारो से भी है। नये ऋतु के आगमन पर नये व्रत तथा नवीन उत्सवों का आयोजन भारत वर्ष मे सर्वत्र किया जाता है—यथा होली, वसन्तपंचमी, रामनवमी इत्यादि। रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी आदि अनेक व्रत भगवान की किसी विभूति अथवा अवतार से सम्बन्धित हैं। इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नही है। इस दिन व्रत करने से मनुष्य के अन्दर उस विशिष्ट अवतार के गुणो का उदय होता है। व्रतों का अनुष्ठान नियमपूर्वक होना चाहिए। व्रत करने वाले व्यक्ति को क्रोध, लोभ, माया, मोह, आलस्य, चोरी, ईर्ष्या आदि नही करनी चाहिए । व्रत करने वालो में धार्मिक कृत्यो के प्रति प्रगाढ श्रद्धा होनी चाहिए। व्रती को क्षमा, दान, दया, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, देवपूजा, अग्निहोत्र और संतोष से काम लेना चाहिए किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय में व्रत के अन्तर्गत इन्द्रिय–निग्रह, सयम आवश्यक अंग होता है। जिसका पालन करना व्रत माना जाता है। हमारे ह्रद्रय में यह दृढ निश्चय होना चाहिए कि समस्त जगत के मूल में एक सर्वमान्य नियन्ता विद्यमान है। उसे परमकल्याण कारक होने के कारण 'शिव' कहते है। वह समस्त मनुष्यों को शरण देने के कारण 'नारायण' है। वह जगत् में समग्र प्राणियों में व्यापक होने के कारण विष्णु है। संसार में जितने पदार्थ हैं, वे सब उसी की शक्ति से अनुस्यूत है। वह प्राणों का प्राण है, काल के नियमन करने वाले सूर्य और चन्द्र उसी के नेत्र है। जगत् में प्राण–संचार करने वाला वायु उसका श्वास रूप है। नानारूपी जगत् के मूल में एक सर्वशक्तिमान नियन्ता विद्यमान है। समस्त देवता उसी के प्रतिनिधि हैं। व्रत करने वाले को इसमें पूर्ण निष्ठा होना आवश्यक है। यह भावना जब तक दृढ़ नही होता व्रत पूरा नहीं हो सकता।[७]

[७] काणे पी०वी धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ४ पृष्ठ ६–६।

ईशा की प्रथम शताब्दियो पश्चात व्रतों एवं उत्सवों की व्यवस्था प्रचलित थी जैसा कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र[८], कालिदास के नाटकों, तथा मृच्छकटिक एवं रत्नावली आदि से सिद्ध होता है। ईशा से पूर्व तीन शताब्दियों में व्रत उत्सवो की सख्या एक सहस्त्र हो गयी। पुराणो में तीर्थयात्रा एवं श्राद्ध के विषयो के अतिरिक्त अन्य किसी विषय पर उतना नहीं लिखा गया जितना व्रत–उत्सवो पर। कतिपय पुराणों मे व्रत एव उपवास के सहस्त्रो श्लोक लिखे गये है यथा भविष्य पुराण[९] में ब्रह्मपर्व पर सात सौ श्लोक, उत्तरखण्ड मे पाँच हजार श्लोको से अधिक उपलब्ध है। मत्स्यपुराण मे बारह सौ तीस श्लोक, वराह में सात सौ एवं विष्णुधर्मोत्तर में सोलह सौ श्लोक प्राप्त होते है। गणना किये जाने पर विदित होता है कि पुराणों में चौबीस हजार श्लोक प्राप्त है। शाकुन्तलम[१०] मे वर्णित है कि दुष्यन्त की माता ने पुत्र पालन नामक व्रत किया था। रघुवंश[११] में असिधार व्रत का उल्लेख है। मृच्छकटिक[१२] में अभिरूपति नामक व्रत का जो मनोवांछित भर्त्ता की प्राप्तिव्रत के सदृश है, वर्णन प्राप्त है। रत्नावली[१३] में मदन–महोत्सव उल्लिखित है। राजा भोज (ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) द्वारा लिखित राजमार्तण्ड में लगभग चौबीस व्रतों का उल्लेख है। हेमाद्रि ने सात सौ व्रतों के नाम बताये हैं। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के अनुसार व्रत कोश में सोलह सौ बाइस व्रतों का उल्लेख मिलता है।

ब्रह्मपुराण[१४] का कथन है कि केवल एक दिन की सूर्य पूजा से उत्पन्न फल दक्षिणा वाले सैकड़ों वैदिक यज्ञों अथवा होमों द्वारा भी प्राप्त नही हो

---

[८] आपस्तम्मधर्मसूत्त पृष्ठ २८, १८–२०।
[९] भविष्यपुराण पृष्ठ १६८।
[१०] शाकुन्तलम पृष्ठ अक २।
[११] रघुवश १३, ६७।
[१२] मृच्छकटिक अंक १।
[१३] रत्नावली अंक १।
[१४] व्रहनपुराण पृष्ठ २६, ६१।

सकता है। भविष्य पुराण मे सूर्य पूजा, सूर्य व्रत–विधान की विस्तृत विधा दी गई है। पद्मपुराण[१५] ने जयंतीव्रत की प्रशसा में लिखा है कि इसके व्रती के शरीर में सभी देवता एवं तीर्थ अवस्थित हो जाते है। गरूडपुराण[१६] (हेमाद्रिव्रत) मे आया है कि काचन पुरी व्रत गगा, कुरूक्षेत्र, काशी एव पुष्कर से भी अधिक पवित्र करने वाला है। भविष्यपुराण[१७] उत्तर पर्व का कथन है कि व्यक्ति व्रतों, उपवासों एवं नियमों की नौका द्वारा नरको के समुद्र को बडी सरलता से पार कर जाता है। महाभारत एवं पद्मपुराण[१८] के अनुसार मनु द्वारा व्यवस्थित कृत्य तथा वैदिक कृत्य कलियुग मे नही किये जा सकते, अतः युधिष्ठिर से बहुत सरल अल्पव्ययसाध्य, अल्पकष्टकर किन्तु अत्यधिक फल देने वाला ऐसे मार्ग की घोषणा की गयी जो पुराणों का सार था, यथा–दोनो पक्षो की एकादशी को नही खाना,। जो ऐसा करता है वह नरक नही जाता। अनुशासन पर्व[१९] मे घोषित हुआ है कि उपवास से बढकर या उसके बराबर कोई तप नहीं है और दरिद्र व्यक्ति यज्ञों का फल उपवास से प्राप्त कर सकता है। वराहपुराण[२०] में एक प्रश्न है "एक दरिद्र किस प्रकार परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है?" उत्तर है कि वह व्रतों एवं उपवासों से ऐसा कर सकता है। लिंग पुराण[२१] ने व्यवस्था दी है कि जो एक वर्ष तक नक्त व्रत (केवल एक वार संध्या को खाना) करता है और प्रत्येक पक्ष की चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथियों में शिवपूजा करता है, वह सभी यज्ञों का फल पाता है; और परम लक्ष्य की प्राप्ति करता है। ब्रह्मपुराण में आया है कि कलियुग

---

[१५] पद्मापुराण पृष्ठ ३,४,२७।

[१६] गरूडपुराण हेमाद्रिव्रत – २ पृष्ठ ८६६।

[१७] भष्यिपुराण पृष्ठ ७,१।

[१८] महाभारत एव पद्मपुराण ५३, ४, ६।

[१९] अनुशासन पर्व पृष्ठ १०६, ६५, ६७।

[२०] वराहपुराण पृष्ठ ३६, १७, १८।

[२१] लिगंपुराण पृष्ठ ८३, ४।

में केवल 'केशव' का नाम लेने से व्यक्ति को वही फल मिलता है जो कृत युग मे गम्भीर मनोयोग,त्रेता मे यज्ञो तथा द्वापर में (मूर्ति)पूजा से प्राप्त होता था।

व्रत और उपवासों की श्रृखंला में एकादशी का भी विस्तृत उल्लेख मिलता है। शिवधर्म एव सर्वपुराण के अनुसार वैष्णव हो या शैव एकादशी व्रत करना चाहिए। यह व्रत दो प्रकार का होता है, नित्य और काम्य। गरूड पुराण के अनुसार दोनों पक्षों को एकादशी का उपवास करना नित्य है, जो वानप्रस्थ या सन्यासी का धर्म है। गृहस्थ को केवल शुक्लपक्ष की एकादशी का व्रत करना चाहिए जो काम्य है, जिसमें इच्छित फल की प्राप्ति होती है। निर्णय सिन्धु में द्वादशी व्रत एवं उपवास के विधि विधानो तथा उससे प्राप्त फलों का विस्तृत वर्णन किया है। भविष्य पुराण के उत्तरपर्व में व्रतोपवास की महिमा बताते हुए शकट व्रत की कथा, तिलक व्रत के महामात्य में चित्र लेखा का चरित्र वर्णन विस्तार से किया गया है। इसमें चैत्रमास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के दिन स्त्री अथवा पुरूष को नदी तालाब अथवा घर पर देवता और पितरों का तर्पण करना चाहिए, फिर घर आकर ऑटे की पुरूषाकार मूर्ति बनाकर चन्दन, धूप, पुष्प, दीप, नैवेद्य आदि। उपचारों से उनकी पूजा करना चाहिए। यथाशक्ति ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए और उसी दिन से आरम्भ कर लटाट को नित्य चन्दन से अलंकृत करना चाहिए। इस प्रकार स्त्री या पुरूष इस व्रत के प्रभाव से उत्तम फल प्राप्त करते हैं। भविष्यपुराण के उत्तरपर्व में अश्विन मास की शुक्ल प्रतिपदा को गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, सप्तधान्य से तथा फल, नारियल, अनार, लड्डू आदि अनेक प्रकार के नैवेद्य से, मनोरम पल्लवों से युक्त अशोक वृक्ष के पूजन से मनुष्य के शोक रहित होने का विस्तृत वर्णन हुआ है। कोकिला व्रत विधान करने से कुलीन स्त्रियों का अपने पति के साथ विशुद्ध प्रेम बना रहता है यह व्रत आषाढ़ मास की पूर्णिमा को किया जाता है। सभी पापों का नाशक तथा

सुर असुर और मुनियो के लिए भी दुर्लभ वृहत्तपोव्रत का विधान और उसका फल ब्राह्मपर्व (अध्याय २) में बताया गया है। इस व्रत में अश्विन मास के पूर्णिमा के दिन आत्मशुद्धि पूर्वक उपवास रात में घृत मिश्रित पायस का भोजन करना चाहिए। मन्त्र से महादेव की प्रार्थना करनी चाहिए और शिवभक्त ब्राह्मणों के सोलहवें वर्ष में पारण के दिन शिव की पूजा कर सोने की सीग,चॉदी के खुर और घण्टा, कॉसे के दोहन–पात्र के साथ उत्तम गाय दान देनी चाहिए। भविष्य पुराण के उत्तरपर्व में भद्रव्रत का फल और विधान बताते हुए कहा गया है कि एक ही वर्ष मे 'मार्ग शीर्ष फाल्गुन, ज्येष्ठ एवं भाद्रपद' क्रमशः इन चार मासों में श्रद्धापूर्वक उपवास करने से मनुष्य को अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो जाता है। भविष्य पुराण के उत्तरपर्व मे यम द्वितीया तथा अशून्यशयन–व्रत की विधि का वर्णन हुआ है इसके अनुसार जो पुरूष यम द्वितीया को बहिन के साथ भोजन करता है उसे धन, यश, आयुष्य, धर्म, अर्थ और अपरिमित सुख की प्राप्ति होती है। उत्तर पर्व में मधूक तृतीया, मेघपाली तृतीया, रम्भातृतीया, गोण्पद–तृतीया, ललित तृतीया, अवियोग तृतीया, अनन्त तृतीया, रसकल्याणिनी तृतीया, आर्दानन्द करी तृतीया, आनन्तर्य–तृतीया एवं अक्षय तृतीया आदि व्रतो की विधि तथा उससे प्राप्त अभिष्ट फलों का विस्तृत वर्णन किया गया है।[२२] भविष्य पुराण के अनुसार जो ब्राह्मण अग्निहोत्री नही है उनका कल्याण व्रत, उपवास, नियम और दान से होता है। इस कथन में अनग्नि का ग्रहण उपवास के लिए है, क्योंकि देवल का यह कथन है कि अग्निहोत्री, बैल और ब्रह्मचारी इन तीनों की सिद्धि भोजन से होती है बिना भोजन के नही। व्यास के अनुसार शूद्र को भी अधिकार है। चौथा वर्ण होने से शूद्र वर्ण भी वेद के मन्त्र, स्वधा, स्वाहा आदि के बिना धर्म कर्म कर सकता है। इसी प्रकार स्कन्द पुराण में कहा गया है कि स्त्रियों

---

[२२] भविष्य पुराण (उत्तरपर्व) पृष्ठ २८६–३०८

को पति से पृथक यज्ञ, व्रत और उपवास है, किन्तु पति की सेवा से ही स्त्रियाँ इष्टलोक प्राप्त करती है।[२३]

व्रताधिकारी कौन होता है? 'देवल[२४] ने व्यवस्था दी है कि 'इसमें सन्देह नही कि व्रतो, उपवासों, नियमो तथा शरीर को कष्ट देने से पापों से छुटकारा मिलता है।" सभी जातियों के लोग यहॉ तक कि म्लेच्छों को भी, यदि वे श्रद्धालु हैं और व्रत में विश्वास रखते है, तो उन्हे व्रत करने की व्यवस्था दी गयी है। शान्तिपर्व[२५] में इन्द्र ने राजा मान्धाता से कहा कि यवनों, किरातों, गान्धारों, चीनो, शबरो, बर्बरों, शकों और आन्ध्रो को भी वेद में विहित कृत्यो को करने की अनुमति है। वे मृत पितरों को श्राद्ध कर सकते है, जनकल्याण के लिए कूप खुदवा सकते है और ब्राह्मणों को दान दे सकते है। भविष्यपुराण का कथन है कि तुर्को यवनों एवं शकों ने ब्राह्मण गौरव प्राप्ति की इच्छा से प्रतिपदा को व्रत किया था।

पुराणों एवं निबन्धों मे स्त्रियों के लिए केवल कुछ व्रतों की व्यवस्था की गयी है। मनुस्मृति',[२६] विष्णुधर्मसूत्र एवं कतिपय पुराणों में व्यवस्था दी गयी है कि कोई स्त्री पृथक रूप से यज्ञ, व्रत या उपवास नही कर सकती। विष्णु धर्मसूत्र[२७] में आया है कि वह स्त्री जो पति के जीवित रहते किसी उपवास युक्त व्रत को करती है वह अपने पति की आयु हरती है और नरक मे जाती हैं। लिंगपुराण[२८] के अनुसार पति की आज्ञा से कोई भी स्त्री जप, तप, दान आदि कर सकती हैं। क्या नारियों को होम करने के अधिकार है? पराशर का अनुगमन करते हुए

---

[२३] निर्णय सिन्धु पृष्ठ ३१
[२४] देवल हिमाद्रि खण्ड–१ पृष्ठ ३२५।
[२५] शान्ति पृष्ठ ६५, १३, १४।
[२६] मनु पृष्ठ ५, १५५।
[२७] विष्धुधर्म सूल पृष्ठ २५, १६।
[२८] लिंग पुराण पूर्वार्द्ध ८४, १६।

व्यवहार मयूख ने प्रतिपादित किया है कि शूद्रों एवं नारियों के लिए इस विषय में एक ही नियम है अत· किसी भी व्रत में नारी या शूद्र ब्राह्मण द्वारा होम करा सकती हैं। निर्णयसिन्धु[२९] ने नारी द्वारा किये जाने वाले व्रत और होम के विषय में व्यवहारमयूख की बात मानी हैं। गर्भवती स्त्री या हालही मे जिसे सन्तानोत्पत्ति हुई हो ऐसी स्त्री उपवास न करके केवल एक बार सन्ध्याकाल के उपरान्त भोजन करे।

व्याधि या दुर्घटना मे पडा व्यक्ति किसी प्रतिनिधि द्वारा व्रत करा सकता है इस विषय में कुछ निश्चित नियम बने हैं। सत्याषाढ़ श्रोतसूत्र[३०] में वर्णित है कि—स्वामी, पत्नी, पुत्र; उचित देश एव काल, अग्नि, इष्टदेव, कृत्य एवं शास्त्र के अंश के विषय में प्रतिनिधि की व्यवस्था नही है। सभी धार्मिक कृत्यो को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है यथा १ नित्य २ नैमित्तिक ३ काम्य। त्रिकाण्डमण्डन के अनुसार काम्य कृत्यों में प्रतिनिधि नही होताः नित्य एवं नैमित्तिक में प्रतिनिधि की व्यवस्था होती हैं। यदि व्रती व्रत आरम्भ कर देने पर अयोग्य हो जाय तो प्रतिनिधि द्वारा व्रत पूरा किया जा सकता है जैसे— पुत्र, पत्नी, भाई, पति, बहिन, शिष्य, पुरोहित तथा कोई भी मित्र। इस प्रकार व्रत भग नही होता। कालनिर्णय[३१] में आया है कि जो अपने पिता या माता, भाई या, पति के लिए विशेषतः अपने गुरू के लिए व्रत करता है वह सौ गुनी श्रेष्ठता प्राप्त करता है। प्रतिनिधि सम्बन्धी ये नियम सभी वर्णो के लिए हैं। मध्य एवं वर्तमान काल की प्रथा के अनुसार कुमारी, विवाहिता नारी एवं विधवा किसी व्रत के सम्पादन के पूर्व कम से कम अपने पिता, पति एवं पुत्र से सहमति लेकर स्वतन्त्र व्रत कर सकती है। अधिकांश प्रचलित व्रत काम्य होते हैं अर्थात ऐसे

---

[२९] निर्णय सिन्धु—३ पृष्ठ २४६।

[३०] सत्याषाढ श्रौत सूत्र पृष्ठ ३ , १।

[३१] काल निर्णय पृष्ठ २६२, २६३।

व्रत जिनसे इस लोक मे या कभी–कभी परलोक में किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हो। अधिकांश व्रत सांसारिक है किन्तु उन पर धार्मिक रंग चढा हुआ है यथा–उपवास, पूजा ब्रह्मचर्य, सत्य भाषण ये समान्य जन की इच्छाओ से प्रेरित होते है। अग्निपुराण[३२] के अनुसार व्रत से धर्म, सतति,धन, सौन्दर्य,सौभाग्य कीर्ति, विद्या, आयु, शुचिता, आनन्दोपभोग, स्वर्ग, मोक्ष आदि प्राप्त होते हैं।कल्पत्तरू[३३] के अनुसार व्रत से ब्रह्मलोक, शिवलोक, वैकुण्ठ की प्राप्ति होती हैं। आनन्द एवं विजय का उपभोग होता है।

पुराणो मे अध्याय को भी पर्व कहा गया है। पर्व किसी मुख्य तिथि अथवा ज्योतिष के अनुसार ग्रहों आदि के विशेष संयोग पर आयोजित होते है। प्राचीन काल में जो प्रमुख राजनैतिक घटनाऍ थी वे आज धार्मिक और सामाजिक पर्व बन गये है। राजनैतिक सघर्षो मे घटित मुख्य–मुख्य घटनाओं एवं तिथियों को भी हम पर्व के रूप में मनाते है। ये ही हमारे राजनीतिक पर्व कहे जाते है। विजयादशमी, दीपावली, होलिकोत्सव तथा उन सभी जन नायकों की जन्म तिथियों को भी हम पर्व के रूप मे मनाते है, जिन्होने हमारे समाज में क्रान्ति लाकर राष्ट्र को आगे बढ़ाया है। ऐसे पर्वो को हम सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक पर्व कहते है। मकर संक्रान्ति, गंगा दशहरा, वसन्तोत्सव आदि पर्वो को हम सांस्कृतिक पर्व कहते हैं।

विविधता हमारे यहाँ का भूषण है। जिस प्रकार हमारा समाज विविध है, उसी प्रकार हमारा जीवन भी विविध है और इसीलिए जीवन को संबल प्रदान करने वाले पर्व भी विविध है। इन पर्वो से विविध प्रकार कीसांस्कृतिक चेतना आत्मसात् कर हम अपना सर्वतोन्मुखी विकास करते हैं।

---

[३२] अग्निपुरण पृष्ठ १७५, ४४, ५७।

[३३] कल्पत्ररू पृष्ठ १–२।

हम पर्वो को लिगो और वर्णाश्रम–मर्यादा के आधार पर विभाजित कर सकते है। ऐसे बहुत से पर्व है जिन्हे महिलाएँ मनाती है करवाचौथ, तीजव्रत, छठव्रत इत्यादि। उसी प्रकार बहुत से ऐसे पर्व है जिन्हे पुरूष मनाते है जैसे–दशहरा, नागपंचमी इत्यादि। अनेक ऐसे भी पर्व है जिन्हें वर्ण–विशेष से जोड़ा जाता है जैसे श्रेष्ठियों का पर्व है दीपोत्सव, ब्राह्मणों का श्रावणी, क्षत्रीयों का विजयादशमी तथा शूद्रों का होलिकोत्सव।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में धार्मिक सहिष्णुता एवं समरसता को बनाये रखने में पर्वो का विशेष महत्व है। ये पर्व मनुष्य में शिथिलता दूर कर एक स्फूर्ति भर देते हैं। जिस प्रकार कुम्हार के चाक में जब शिथिलता आने लगती है तब वह अपने दण्ड के प्रयोग से उसकी गति में तीव्रता लाता है। हमारा जीवन–चक्र भी कुम्हार के चाक की तरह घुमता है। जितने पर्व और त्यौहार हम मनाते हैं, वे सभी मनुष्य की थकान और एकरसता दूर करते है, उनमे नयी आशा और नयी उमंग का संचार करते है साथ ही नये विचारों को प्रेरणा देते हैं। पर्वो से मनुष्य अपनी भूलों को सुधारता है और नये उत्साह के साथ, नई उमंग तथा नई चेतना लेकर आगे बढता है।

त्यौहार वस्तुतः लौकिक उत्सवों एवं समारोहों की तिथि से ही अधिक समीप हैं जैसे दशहरा, होली इत्यादि। त्यौहार शब्द से बहुधा उत्सव का बोध होता है किन्तु उत्सव दो प्रकार के होते हैं एक वह उत्सव जो किसी प्राचीन महान व्यक्ति या घटना का स्मारक हो तथा दूसरा वह जो वर्तमान व्यक्ति या घटना के होने पर हो। इसमें से प्राचीन व्यक्ति या घटना के स्मारक में जो उत्सव किया जाता है, उसी को त्यौहार कहा जाता है। प्राचीन व्यक्ति अथवा घटना का स्मारक रूप उत्सव जो प्रतिवर्ष किया जाता है उसका तात्पर्य यही है

कि साल में एक दिन उस प्राचीन व्यक्ति या घटना से हमारे अन्त.करण का तादाम्य भाव होना सम्भव हो सके। जिस व्यक्ति अथवा घटना मे देश के कल्याण–गुणो–गुणों का कोश भरा हो, उसके साथ तादाम्य भाव हो जाने पर उन जगतोद्धारक गुणों का पुज हमारे अन्तःकरण में आकर विराजमान हो जाता है। उदाहरणार्थ प्राचीन काल मे रामभक्त कुलशेखर नामक राजा नीलाचल पर्वत पर रहता था। एक दिन वह राजा बाल्मीकि रामायण कथा का श्रवण कर रहा था, जब व्यास ने राम के अनुपस्थिति में रावण द्वारा सीता को उठा ले जाने की घटना का वर्णन किया तो शोकसन्तप्त राजा कुलशेखर अपने को भूल गया और अतीत वृतान्त को वर्तमान मे जानकर उसी समय खड्ग हाथ में लेकर लंका पुरी की ओर सेतुबन्ध के पास क्षीर सिन्धु के तट पर खड़ा हो गया उसकी इच्छा थी कि समुद्र मे कूद कर दुष्ट रावण को दण्ड देकर, सीता को पुनः ले आऊँ। परन्तु यह उसके तादाम्य भाव का अतिशय था। कारण तादाम्य भाव अन्त·करण के गुणों का तत्वरूप कर सकता है, पदार्थ के गुणों को नही पलट सकता है। यदि राजा गिर गया तब उसके प्राण जाने का डर है, यह विचार कर राम–सीता सहित नौका में दिखलाई दिये और कहा–हे राजन! मै सीता को ले आया, अब तुम्हारे जाने की आवश्यकता नही। इस प्रकार राजा को सन्तोष हुआ।[३४]

प्राचीन भारतीय धार्मिक त्योहारों में पूजन के प्रसंगों में षोड्शोपचार अर्थात सोलह प्रकार के पूजन–उपचार बताये गये हैं। इसकी संख्या छत्तीस और अड़तीस तक भी पहुँचती है और कभी–कभी कम भी होती है यथा तेरह, चौदह, बारह, दस या पाँच। इस विषय में मतैक्य नहीं है। ब्रह्मवैवर्तपुराण ने सोलह, बारह एवं पाँच उपचारों की भी चर्चा की है। यदि कोई व्यक्ति पाँच

---

[३४] पी गणेशन, व्रतोत्सव चन्द्रिका, पृष्ठ०६

उपचार भी न कर सके तो वह केवल दो कर सकता है यथा चन्दन और पुष्प और यदि इतना भी न कर सके तो श्रद्धा मात्र पर्याप्त बतायी गयी है।

वर्षक्रियाकौमुदी[३५] के अनुसार सभी व्रतों के समान्य रूप से पुरूष सूक्त के प्रत्येक मन्त्र का पाठ प्रत्येक उपचार के साथ क्रम से होना चाहिए यथा–आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीयक, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, अनुलेपन या गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, दक्षिणा और प्रदक्षिणा। शतपथ ब्राह्मण[३६] में उपचार शब्द 'सम्मान' अथवा सम्मान प्रकट करने की विधि के रूप में प्रयुक्त है। पाणिनि[३७] की अष्टाध्यायी और महाभाष्य पतजलिकृत से प्रकट है कि उन दिनों देवी–देवताओ की प्रतिमाएँ बनती थीं, बिकती थी जिससे कि उनकी पूजा हो सके। धर्मसूत्रों के काल मे पूजा गौण अर्थ में होने लगी अर्थात् बिना गन्ध पुष्प आदि के सम्मान देना। याज्ञवल्क्य[३८] स्मृति मे श्राद्ध में आवाहन, अर्घ्य, गन्ध, माल्य, धूप,दीप, आदि का उल्लेख है। जब मूर्ति–पूजा का प्रचलन हो गया, तब उपचार के योग्य व्यक्तियों के सम्मान एवं पूजा के लिए दी गई व्यवस्थाएँ भी इनके साथ सयुक्त हो गयी। स्मृतिचन्द्रिका[३९] ने पद्मपुराण का उद्धरण दिया है कि गन्धों में चन्दन परम पुनीत है, अगरू चन्दन से उत्तम है, गहरे रंग का कृष्ण अगरू और भी उत्तम है। पीला अगरू कृष्ण अगरू से श्रेष्ठ है। अग्निपुराण[४०] में सर्वप्रथम कहा गया है हरि पुष्प, गन्ध दीप एवं नैवेद्य से प्रसन्न होते हैं। उसमें पुष्पों का विभेद किया गया है। योग्य और अयोग्य के रूप में कल्पतरू[४१] ने भविष्य–पुराण का उद्धरण देकर यह बताया है कि पूजा में

---

[३५] वर्ष क्रिया कौमुदी महोत्सव पृष्ठ १५७।
[३६] शतपथ प्राहन पृष्ठ १, ११।
[३७] पाणिनी पृष्ठ ५, ३, ६६।
[३८] याज्ञवलक्य स्मृति–१ पृष्ठ २२६।
[३९] स्मृति चन्द्रिका पृष्ठ २०४/१।
[४०] अग्नि पुराण पृष्ठ १८०–१८१।
[४१] कृत्य कल्पत्ररू पृष्ठ १८०–१८१।

प्रयुक्त विभिन्न पुष्पों के उपयोग से पुजारी देवता का सामजस्य पाता है, करवीर (कनैल) पुष्प से स्वास्थ्य एवं अतुलनीय सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। मल्लिका के उपयोग से सभी प्रकार के आनन्द मिलते है। कमल से कल्याण एवं अधिक काल तक रहने वाली सम्पत्ति मिलती है। सुगन्धित युक्त कुरबक से (करसरैया) सर्वोत्तम ऐश्वर्य प्राप्त होता है। कमल (श्वेत एव नीले) से निष्कलंक ख्याति मिलती है। विविध कुकुरमुत्तों से रोग निवारण होता है, मन्दार से कुष्ट के सभी प्रकारों का क्षय होता है, बिल्व से धन प्राप्ति होती है। अर्क (करम्) पुष्प से सूर्य कल्याण करते हैं। बबूल के पुष्पों की माला से सुन्दर कन्या प्राप्त होती है। किशुक पुष्प से पूजित होने पर सूर्य दुख का हरण करता है। अगस्त्य पुष्पो से इष्ट देव सफलता देते हैं। कमल पुष्प द्वारा पूजा से सुन्दर पत्नी मिलती है। मनमाला से थकावट दूर होती हैं। अशोक पुष्प से सूर्य–पूजा करने पर त्रुटियॉ नहीं होती और जपा पुष्प (गुडहल) से पूजित होने पर सूर्य पूजक को दुंख–रहित करता है। भविष्य पुराण में आया है कि पुष्पों मे जाती (मालती) सर्वश्रेष्ठ है, और कुण्डक सर्वोत्म धूप है। सुगन्धित पदार्थो में केसर सर्वश्रेष्ठ है। गन्धों में चन्दन सर्वोपरि है। दीप के लिए घृत सर्वोत्तम है तथा नैवेद्य भोजनों में मोदक (लड्डू) मिठाई सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार हम यह देखते है कि भारतीय परम्परा मे क्रमश· व्रत की इतनी विस्तृत विधि होती गयी कि उसने उत्सव अथवा त्यौहार का स्वरूप ले लिया।

द्वितीय अध्याय

व्रत, पर्व एवं उत्सवों का काल-निर्धारणएवं यज्ञ, तप और दान का उल्लेख

व्रत, पर्व एवं उत्सवों का काल निर्धारण एवं यज्ञ, तप और दान का उल्लेख

व्रत, उत्सव, पर्व एवं त्यौहार आदि किसी नियत समय पर (काल) सम्पादित किये जाते हैं अतः प्राचीन काल मे प्रचलित व्रत, उत्सव आदि के ज्ञान के लिए उस के काल का ज्ञान भी आवश्यक है। भारतीय उत्सव में निम्न प्रकार के काल क्रम का उल्लेख मिलता है।

(१) युग

(२) संवत्सर

(३) अयन

(४) ऋतु

(५) मास

(६) तिथि

(७) पक्ष

(८) वार और

(९) नक्षत्र

युग - ऋग्वेद में 'युग' शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। दो अर्थ स्पष्टतया इस प्रकार हैं—अल्पावधि एवं दीर्घावधि। ऋग्वेद[1] में आया है कि—'ममता के पुत्र दीर्घतमा दस युगों में बूढ़े हुए, वे ब्रह्मा, बड़े याजक और

---

[1] ऋग्वेद १, १५, ८, ६।

अपने लक्ष्य की ओर बहने वाली नदियो के नेता बने, यहॉ 'युग' दस वर्ष या सम्भवतः पॉच वर्ष का द्योतक है। ऋग्वेद मे यह भी आया है कि– 'अपनी माता के पास हिनहिनाते हुए अश्व के समान वैश्वानर (अग्नि) प्रत्येक युग में कुशिको द्वारा प्रज्वलित किया जाता है।' वेदाग ज्योतिष[2] में युग पॉच वर्षो का द्योतक है। ऋग्वेद[3] में ये पॉच वर्ष की इकाइयॉ छः ऋतुओ मे विभाजित है इस ओर गूढ सकेत है। अतएव, हम ऋग्वेद मे प्रयुक्त 'युग' को पॉच वर्ष की अवधि के रूप में ले सकते हैं। महाभारत, मनु स्मृति एवं पुराणों के अनुसार युग चार है–कृत, त्रेता, द्वापर एवं कलि और ये केवल भारत से सम्बन्धित माने गये है।[4] मनुस्मृति[5], विष्णु धर्म सूत्र[6], विष्णु पुराण[7] ब्रह्मपुराण[8], मत्स्यपुराण[9], वायुपुराण[10], मार्कण्डेय पुराण[11] आदि में भी युग सम्बन्धी विशाल साहित्य है। कतिपय पुराणो में वर्णन आया है कि युग–सिद्वान्त भारत तक ही सीमित था। समान्यतः युगों के स्वभाव या स्वरूप का वर्णन इन ग्रन्थो में एक सा है किन्तु विचारों में मतभेद अवश्य है।

संवत्सर - ऋग्वेद[12] में संवत्सर का अर्थ एक वर्ष है। ऋतुओं के एक पूरे चक्र को संवत्सर कहते हैं अर्थात किसी ऋतु से आरम्भ करके पुन; उसी ऋतु के आने तक जितना समय लगता है उसका नाम 'एक संवत्सर' है।[13] इसी

---

[2] वेदाग ज्योजिष १ एवं ५।

[3] ऋग्वेद ३, ५५ख १८।

[4] वायु–पुराण २३, १, ४५, १३७ एवं ५७, २२।

[5] मनुस्मृति १, ६१–७४, ७६–८६।

[6] विष्णु–धर्मसूल २०, १–२१।

[7] विष्णु–पुराण १/३, ६/३।

[8] ब्रह्मपुराण ५, २२६–२३२।

[9] मत्स्य–पुराण १४२–१४५।

[10] वायु–पुराण अध्याय–२१, २२, ५७, ५८, १००।

[11] मार्कण्डेय पुराण ५८–६८, ६६–७०, ७२–६७।

[12] ऋग्वेद १, ११०, ४ – १, १४० २ – १, ११६, १३ – १, १६४, ४४ – ७, १०३, १७, ६ – १०ख १६०, २।

[13] अमरकोष–कालवर्ग २०१ ।

प्रकार सभी प्राणियों की गणना भी इन्ही सवत्सरों के द्वारा होती है। इस प्रकार जो काल–विभाजन सभी ऋतुओ का आधार है उसका नाम 'संवत्सर' है। तात्पर्य यह है कि यदि मानव को संवत्सर का ज्ञान न हो तो वह न तो ऋतु–विभाग को समझ सकेगा और न ही प्राणियों के आयु की गणना हो सकेगी। इस तरह सवत्सर का प्रत्येक प्राणी के जीवन से पूर्ण सम्बन्ध है। यह सवत्सर तथा ऋतु–विभाजन सूर्य के परिभ्रमण से सम्बन्ध रखता है। अत. सूर्य, संवत्सर अथवा काल का अधिदेवता माना गया है, क्योंकि यदि सूर्य न रहे तो नहीं संवत्सर रहेगा न ही काल–विभाग। ऋग्वेद में वर्णित है कि एकाकी विचरण करने वाले सूर्य के रथ को सात वर्णों वाली राशियाँ अपने साथ जोडती है और अकेला सबको व्याप्त करने वाला सूर्य, सातों राशियों से रस लेता हुआ अर्थात सप्तर्षियों से स्तुति लेता हुआ जा रहा है। यह ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त इन तीन नाभियों वाला, कभी जीर्ण न होने वाला और किसी के सहारे न चलने वाला चक्र 'संवत्सर' है, जिसमे ये सब लोग स्थित हैं।[१४]

अयन - ऋग्वेद[१५] में 'अयन' शब्द 'गति या मार्ग' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सूर्य की गति को 'अयन' कहते है। अयन दो होते हैं–उत्तरायण, दक्षिणायन। छः मासों तक उत्तर तथा छः मासों तक दक्षिण में सूर्य की गतियाँ बृहदारण्यकोपनिषद्[१६] में भी उल्लिखित हैं। वसन्त और ग्रीष्म ऋतुएँ उत्तरायण के प्रमुख भाग है। मकर सक्रान्ति से लेकर मिथुन सक्रान्ति पर्यन्त उत्तरायण होता है। इसमें माघ, फाल्गुन, चैत, वैशाख, ज्येष्ट और अषाढ़ ये छ. महीने होते हैं। कर्क संक्रान्ति (सौर श्रावण) से लेकर धन संक्रान्ति (सौर पौष) पर्यन्त दक्षिणायन होता है। उत्तरायण में दिन बड़ा होने के कारण प्रकाश में अधिकता

---

[१४] अमर–कोष काल वर्ग १३।

[१५] ऋग्वेद ३, ३३०।

[१६] बृहदारव्यकोपनिषद् १, ६६–६७।

रहती है। और दक्षिणायन मे रात्रि बडी होने के कारण अन्धकार में अधिकता रहती है। शास्त्रों में प्रकाश को देवतत्त्व और अन्धकार को असुरतत्व माना गया है, अत, उत्तरायण देवताओं का दिन और दक्षिणायन देवताओ की रात्रि माने जाते है।[१७] शतपथ ब्राह्मण[१८] में भी उत्तरायण एव दक्षिणायन की गतियो का उल्लेख है।

ऋतु - ऋतु शब्द / ऋ– गतौ धातु से बना है। इसकी व्युत्पत्ति इयर्तीति ऋतु; अर्थात् जो सर्वदा चलती रहती है, उसे ऋतु कहते है। ऋतु काल की गति है। शास्त्रों मे ऋतु के अनुसार ही वस्तुओ का परिणाम बताया गया है। वेदों में चन्द्रमा को विधाता बताया गया है, जैसा कि ऋग्वेद[१९] मे वर्णित है ये दोनों बालक अर्थात (सूर्य एव चन्द्रमा) अपने प्रज्ञान के द्वारा आकाश में पूर्व से पश्चिम आगे पीछे चलते है। ये दोनों बालक बनकर खेलते हुए यज्ञ में जाते है। इन दोनो में से एक अर्थात् सूर्य सब लोगो को देखता है और दूसरा अर्थात् चन्द्रमा वसन्तादि को बनाता हुआ बार–बार उत्पन्न होता है। सूर्य और चन्द्रमा बार–बार उत्पन्न होते रहते हैं, लेकिन सूर्य सदैव एक रूप होता है और चन्द्रमा घटता बढता रहता है। अतः इसकी उत्पत्ति बार–बार कही गयी है। सूर्य और चन्द्रमा दोनों ऋतुओं के विधाता है; क्योंकि सूर्य की ऋताग्नि में चन्द्र के सोम रस का मिश्रण होने से ही ऋतुँए बनती हैं। चूकि चन्द्रमा पृथ्वी का उपग्रह है, अतः सोमरस तो चन्द्रमा के गति के अनुसार पृथ्वी को समान रूप से प्रतिदिन प्राप्त होता है, परन्तु सूर्य का प्रभाव पृथ्वी पर हमेशा एक सा नही पड़ता है। उत्तरायण में सूर्य की किरणें सीधी पड़ने के कारण सोम के प्रभाव को कम कर देती है अतः क्रमशः उष्णता बढ़ती जाती है, और दक्षिणायन

---

[१७] मनुस्मृति १, ६६–६७।
[१८] शतपथ ब्राह्मण २, १, ३२।
[१९] ऋग्वेद १०, ८५, १०।

मे सूर्य के क्रमशः पृथ्वी से दूर होते जाने के कारण सोम का प्रभाव अधिक होता जाता है, अतः उष्णता क्रमशः कम होती जाती है,। इस शीत और उष्णता के घटा–बढी के कारण ही ऋतुऍ बनती है। यही ऋतुओ का सामान्य विज्ञान है।[२०]

ऋग्वेद में पॉच प्रकार की ऋतुओं का उल्लेख आया है– वसन्त[२१] ग्रीष्म[२२], प्रावृट्[२३], शरद्[२४], हेमन्त। अथर्ववेद[२५] मे छः ऋतुओं के नाम आये है, किन्तु क्रम से नही है। ऐतरेय ब्राह्मण[२६] में पॉच ऋतुओ का उल्लेख है, हेमन्त और शिशिर एक में अन्तर्मुक्त हैं। शतपथ ब्राह्मण[२७] में कहा गया है कि संवत्सर में ऋतुऍ छ. हैं। अथर्ववेद[२८] में सात ऋतुओं का उल्लेख है किन्तु सातवीं ऋतु सम्भवतः मलमास है जो अथर्ववेद[२९] में स्पष्टतया उल्लिखित है। तैत्तिरीय संहिता[३०] में छः ऋतुओं में प्रत्येक को दो मास वाली कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण[३१] ने बसन्त एवं ग्रीष्म को देवी की, शरद हेमन्त एवं शिशिर को पितरो की ऋतुओं के रूप में वर्णित किया है। इसी प्रकार मास का शुक्ल पक्ष, दिन एवं पूर्वार्द्ध देवों के लिए तथा कृष्णपक्ष, रात्रि एवं अपराह्ण पितरों के लिए मान्य ठहराया गया है और अन्त में व्यवस्था की गयी है कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों को क्रम से बसन्त, ग्रीष्म एवं शरद ऋतु में पवित्र अग्नि प्रज्वलित करनी चाहिए।

---

[२०] अमरकोश–कालवर्ग १५।
[२१] ऋग्वेद १०, १६१, ४।
[२२] वही १०, ६०, ६।
[२३] वही ७, १०३, ३–६।
[२४] वही १०, १६१, ४।
[२५] अथर्ववेद ६, ५५ख २।
[२६] ऐतरेय ब्राह्मण १, १।
[२७] शतपथ ब्राह्मण २ , १ ३, १६।
[२८] अथर्ववेद ६, ६१, २।
[२९] वही ५, ६, ४।
[३०] तैत्तिरीयसंहिता ४, ४, ११, १।
[३१] शतपथ ब्राह्मण २, १, ३, १–५।

तीन ऋतुओ की मान्यता के पक्ष मे एक–एक ऋतु का एक–एक चातुर्मास्य माना जाता है। फाल्गुन से लेकर ज्येष्ठ तक के चार महीनों को ग्रीष्म ऋतु, आषाढ से लेकर अश्विन तक वर्षा ऋतु और कार्तिक से लेकर माघ तक हेमन्त ऋतु होती है। जिस ऋतु मे रस (जल) सूखता है वह ग्रीष्म ऋतु[३२] है,। जिसमें पर्जन्य अर्थात बादल गरजता है[३३] और इन्द्र जल सींचता है उसे वर्षा ऋतु[३४] कहते हैं।, जिस ऋतु मे शीत रहता है उसे हेमन्त ऋतु[३५] कहते है।

इस प्रकार संवत्सर के चार–चार महीनों के तीन ऐसे कालखण्ड आते है जिनमें क्रमश· जल सूखता है, जल बरसता है, और धान्य एवं प्राणी सभी पुष्टि प्राप्ति करते है।

छः ऋतुओं की मान्यता के पक्ष में एक–एक ऋतु दो–दो मासों की मानी जाती है। महीनो के नामों मधु–माधव, शुक्र–शुचि, नभस्–नभस्य, इष–ऊर्ज, सह–सहस्य और तपस्–तपस्य में इष और ऊर्ज के अतिरिक्त एक–एक ऋतु के दो–दो मासों में शब्द और अर्थ की पर्याप्त समानता है। इस पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वसन्त का मधु से, ग्रीष्म का शुक्र से, वर्षा का नभस् से शरद का इष से, हेमन्त का सहस् से और शिशिर का तपस् से अवश्यमेय कोई सम्बन्ध है। ऋतुओं का वर्णन इस प्रकार है—

वसन्त - मधु और माधव दोनो शब्द मधु से बने है मधु का अर्थ एक प्रकार का रस है जो वृक्ष, लता और प्राणियों को मत्त करता है। उसी रस की जिस ऋतु में प्राप्ति होती है, उस ऋतु को वसन्त ऋतु कहते हैं। क्षीरस्वामी ने वसन्त शब्द की 'वसन्त्यस्मिन् सुखम्' अर्थात् जिसमें प्राणी सुख मे रहते हैं–

---

[३२] निरूक्त ४, ४, २७।

[३३] अमरकोश नार्थवर्ग १४६।

[३४] वही ४, ४, २७।

[३५] निरूक्त ४४, २७।

ऐसी व्युत्पत्ति की है। तात्पर्य यह है कि जिस ऋतु मे प्राणियों को ही नही वृक्ष लता आदि को भी आह्लादित करने वाला मधुरस प्रकृति द्वारा प्राप्त होता है, उस ऋतु को वसन्त ऋतु कहते हैं।

ग्रीष्म - शुक्र और शुचि शब्द 'शुच' धातु से बना है। शुच का अर्थ है जलना या सूखना[३६]। जिस ऋतु में पृथ्वी का रस (जल) सूखता है, या जलता है, उस ऋतु का नाम ग्रीष्म ऋतु है।

वर्षा - इसी प्रकार नभ और नभस्य शब्द नभस् से बने है। नभस[३७] शब्द का अर्थ है प्रतिबन्ध। जिसके द्वारा रसों अथवा प्रकाश के पहुँचाने वाले आदित्य का प्रतिबन्ध होता है, उस तत्त्व (तम) को नभस् कहते है। यह तत्त्व जिस ऋतु में प्रधान रहता है, उस ऋतु को वर्षा ऋतु कहते है। सारांश यह है कि आठ महीनों[३८] तक जो जल सूर्य की किरणों से भाप बनकर आकाश में अव्यक्त रूप से स्थित था उसको व्यक्त रूप अर्थात जल का स्वरूप देने वाले तत्व को अथवा सूर्य को आच्छादित करने वाले तत्व को नभस् कहते हैं।

शरद - इष का अर्थ है अन्न और ऊर्ज का अर्थ है (दुग्ध, घृत आदि) रस। जिस ऋतु मे अन्न, घृत और दुग्धादि का परिपाक और प्राप्ति होती है, उसी ऋतु को शरद् ऋतु कहते हैं।

हेमन्त - 'सहस्' शब्द का अर्थ बल दिया गया है। सहा और सहस्य शब्द इसी 'सहस्' शब्द से बने हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि जिस ऋतु में अन्न आदि के उपयोग से बल की वृद्धि होती है, उस ऋतु को हेमन्त कहते है। अन्न–पानादि, अन्य ऋतु की अपेक्षा हेमन्त मे अधिक बल प्रदान करते हैं और प्राणियों की कार्य–क्षमता भी हेमन्त में अधिक हो जाती है।

---

[३६] निरूक्त २, ५, १४।

[३७] वही २, ४, १४।

[३८] श्रीमद्भगवद् ० १०, २०, ५।

शिशिर - 'तपा' और 'तपस्य' शब्द 'तपस्' से बने है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस ऋतु मे बढी हुई गर्मी वृक्षो के पत्तों को पकाकर गिराती है, अथवा शीत का शमन करती है, वह ऋतु शिशिर कहलाती है।[३९]

इस प्रकार काल अथवा समय के द्वारा जो भिन्न–भिन्न परिणाम वर्ष के विभिन्न विभागों मे प्रतीत होते हैं, वे इन्हीं ऋतु नामक काल के अवयवों के कारण होते हैं अतः काल के स्वरूप को यथार्थ रूप में प्रकट करने वाली ऋतुएँ ही है। अतः भारतीय उत्सवों में ऋतुओं को प्रधानता दी गयी है।

मास - शब्द 'मास्' या 'मास' है। 'मास' शब्द ऋग्वेद[४०] में आया है– "वह शिशु जो माँ के पेट में दस 'मास' रहता है और जीवितावस्था में निकल आता है। 'मास' का अर्थ चन्द्र भी हैं[४१] अर्थात देवों ने सूर्य से ज्योति तथा चन्द्र से अन्धकार रख दिया। ऋग्वेद[४२] में अन्यन्त्र उल्लिखित है—वह (अग्नि) प्रत्येक दिन एवं प्रत्येक 'मास' में प्रकट होता है।

चन्द्रमा की स्थिति के अनुसार मासों का निश्चय इस प्रकार है':–

चैत्र मास उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र पर हो।

वैशाख उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा विशाखा नक्षत्र पर हो।

ज्येष्ठ उस मास को कहते हैं, जिसमे पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा ज्येष्ठा नक्षत्र पर हो।

---

[३९] निरूक्त। १, ३१०–३११।
[४०] ऋग्वेद ५, ७८, ६।
[४१] वही ८, ६४, २, १०, १२, ७।
[४२] वही १, २५, ८, ४, १८, ४, १०, ५२, ३

आषाढ़ उस मास को कहते है, जिसके पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा उत्तराषाढ नक्षत्र पर हो।

श्रावण उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा श्रवण नक्षत्र पर हो।

भाद्रपद उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र पर हो।

आश्विन मास उस मास को कहते है, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा अश्विनी नक्षत्र पर हो।

कार्तिक उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा कृत्तिक नक्षत्र पर हो।

मार्गशीर्ष उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्र पर हो।

पौष उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा पुष्य नक्षत्र में हो।

माघ उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा मघा नक्षत्र पर हो।

फाल्गुन उस मास को कहते हैं, जिसकी पूर्णिमा के दिन चन्द्रमा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र पर हो।

ऋतुओं के पूर्वोवत वैदिक विज्ञान के अनुसार मासों का नाम इस प्रकार है।—

चैत्र का नाम मधु है, क्योंकि इस मास में मधुरस उत्पन्न होता है; जिसमें वृक्षादि फलित एवं पुष्पित होते हैं।

वैशाख का नाम माधव है, क्योकि इस मास मे चैत्र मास से प्राप्त मधु का परिपाक होता है।

ज्येष्ठ मास का नाम शुक्र है, क्योकि इस मास में गर्मी (सूर्य की उष्णता) बढ़ती है।

आषाढ़ का नाम शुचि है, क्योकि इस मास में सूर्य संताप से उत्पन्न परिणाम की प्रतीति होती है।

श्रावण का नाम 'नभस्' है क्योकि इस मास में जल के प्रतिबन्धक तत्त्वों का विनाश होता है।

भाद्रपद का नाम 'नभस्य' है, क्योकि इस मास में जल के प्रतिबन्धक तत्त्वों के विनाश का परिणाम परिलक्षित होता है।

आश्विन का नाम 'इष है, क्योंकि इस मास में नवीन अन्न परिपक्व होता है।

कार्तिक मास का नाम 'ऊर्ज है, क्योंकि इस मास में परिपक्व अन्न, तृण आदि की प्राप्ति से गौ आदि प्राणियों में धृत, दुग्ध आदि रसों का परिपाक होता है।

मार्गशीर्ष—मास का नाम' सहस्' है क्योंकि इस मास में बल की अभिवृद्धि होती है।

पौष मास का नाम 'सहस्य' है क्योंकि इस मास में प्राणियों का बल स्थिर होता है।

माघ मास का नाम 'तपस्' है, क्योंकि इस मास में तप की क्रमशः वृद्धि होती है, जिससे शीत काल की फसल का परिपाक आरम्भ होता है।

फाल्गुन मास का नाम 'तपस्य' है क्योंकि इस मास में अन्न के परिपाक का स्पष्ट परिणाम प्रतिफलित होता है।

तिथि-

तिथियो के दो प्रकार है–पूर्णा एवं सखण्डा। निर्णय–सिन्धु ने अन्यविधि से तिथियों के दो प्रकार दिये हैं, यथा शुद्धा एवं विद्धा। तिथ्यर्क ने सम्पूर्णा एवं खण्डा पे दो प्रकार बताये है। जब कोई एक तिथि सूर्योदय से साठ घटिकाओं तक पूरे दिन को व्याप्त करती है तो उसे पूर्णा कहते है, क्योंकि इसके अतिरिक्त अन्य तिथियॉ सखण्डा कहलाती है। पुनः सखण्डा के दो प्रकार है– शुद्धा एवं विद्धा। शुद्धा तिथि सूर्योदय से सूर्यास्त तक या अर्धरात्रि तक चलती है। अन्य सखण्डा तिथियाँ विद्धा कही जाती है। 'श्रुति' मे आया है कि दोपहर के पूर्व का समय देवताओ का, मध्याह्न वाला मनुष्यों का तथा अपराह्ण वाला पितरों का समय हैं।[४३] मनु[४४] ने कहा है कि व्यक्ति को प्रातः काल के कर्तव्य करने चाहिए। अतः देवों के दिये जाने वाले समस्त धार्मिक कृत्य निर्दिष्ट तिथियों में प्रातः काल ही करने चाहिए। किन्तु वे सभी व्रत जो सन्ध्या काल या रात्रि में सम्पादित होने वाले हो, उसी तिथि में किये जाने चाहिए। भले ही वह किसी दूसरी तिथि से मिश्रित (विद्धा) हो। कभी–कभी विद्धा तिथियॉ धार्मिक कर्मो के योग्य ठहरती और है, कभी–कभी प्रतिकूल ठहरती है। जब तक उचित तिथि का निश्चय न हो जाय तब तक श्रौत एवं स्मार्त कृत्य, व्रत, दान तथा अन्य कर्म जो वेदों द्वारा निधारित हैं, उचित फल नहीं देते। वह तिथि जो काल–व्यापी होती है और जो किसी धार्मिक कृत्य के लिए प्रतिपादित रहती है, वह उस कृत्य के योग्य ठहरती है। तिथि विज्ञान के प्रभाव से ही हमारे यहाँ

[४३] शतपथ व्राह्नण २, ४, २८।
[४४] मनुस्मृति ४, १५२।

कोई जन्माष्टमी ऐसी नही होती, जिसमें अर्धरात्रि के समय चन्द्रोदय न हो। कोई राखी या होली ऐसी नहीं होती जिस दिन पूर्ण चन्द्र न हो। कोई दीपावली ऐसी नहीं होती जिस दिन चन्द्र–दर्शन हो पाए। यह बात भारतीयों के अतिरिक्त किसी भी अन्य देश के त्यौहारों मे नही दिखाई पडती। उदाहरणार्थ–क्रिसमस ईसाईयो का त्योहार या २५ तारीख का बडा दिन। इनमें ऐसा नही होता कि चन्द्रमा की अवस्था हर बार एक जैसी हो।

जिस तिथिको सूर्य और चन्द्रमा एक बिन्दु पर आ जाते हैं, उस तिथि को अमावास्या या अमावस्या कहतें हैं और जिस तिथि को सूर्य एवं चन्द्रमा बिल्कुल आमने–सामने आ जाते हैं, उस तिथि को पूर्णमासी कहते हैं। साधारण गणना के अनुसार अमावस्या और पूर्णमासी की तिथियों में पन्द्रह दिन का अन्तर होना चाहिए, किन्तु प्रत्येक तिथि पूरे एक–एक अहोरात्र अर्थात् चौबीस घंटे या साठ घडी में समाप्त होती है। इस कारण इनका अन्तर कभी पन्द्रह दिनो का कभी चौदह दिनों का तो कभी सोलह दिनो का भी होता है। कभी–कभी तेरह दिनों में ही उक्त समय पूरा हो जाता है। अमावस्या के दिन चन्द्रमा और सूर्य एक राशि में समान अंशादि में रहते है। चन्द्रमा को पुनः उसी स्थान पर पहुँचने में लगभग सत्ताइस दिन लग जाते हैं। इधर प्रायः इतने ही दिनों में सूर्य अपनी एक राशि की गति समाप्त कर पाता है। इस तरह सूर्य की दूसरी राशि पर जाकर चन्द्रमा पुनः अपने साथ सम्मिलित कर लेता है, अर्थात जैसे चैत्र की अमावस्या को दोनों मीन राशि पर थे तो वैशाख की अमावस्या का सूर्य और चन्द्रमा दोनों मेष राशि पर होने चाहिए। सूर्य से पुनः मिलने के लिए चन्द्रमा को पूरे तेरह राशियों का चक्कर लगाना पड़ेगा, जो लगभग तीस दिन में पूरा होगा। एक राशि में तीस अंश होते हैं। इस प्रकार अमावस्या से अमावस्या तथा पूर्णिमा

से पूर्णिमा तक चन्द्रमा को तीन सौ साठ अंश चलना पडता है। यदि तीन सौ साठ अंशो को तीन तिथियो में विभक्त करे, जब चन्द्रमा शीघ्र चलता है, तब चौवन घडी में ही समाप्त हो जातें हैं और कभी जब चन्द्रमा मन्द रहता है तब पैसठ घड़ी तक ले लेता है।

इस तरह से सिद्ध हुआ कि सूर्य से चन्द्रमा जब बारह अंश बढ़ा तब तक शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा समाप्त हुई, चौबीस अंश आगे बढा तब द्वितीया समाप्त हुई। इसी क्रम से जितनी घडियों पर बारह अंश समाप्त होते रहते हैं, तद्नुसार ही प्रतिपदा, द्वितीयादि तिथियाँ भी समाप्त होती रहती हैं।

तिथियों की क्षय-वृद्धि

यदि चन्द्रमा शीघ्र गति से चलता रहा और उसने दो–दो घंटे अपनी गति न्यून की तो बारह दिन में २४ घण्टे कम होंगे और इस तरह एक अहोरात्र से पूर्व बारहवें दिन ही चन्द्रमा की गति का (बारहवां अंश वाला) तेरहवां भाग समाप्त हो जायेगा और तेरहवे दिन चौदहवां भाग आरम्भ हो जायेगा इसको हम त्रयोदशी का क्षय कहेंगे, क्योंकि साधारण गणना के अनुसार तो प्रत्येक अहोरात्र में चन्द्रमा का बारहवाँ अंश ही होना चाहिए और इस तरह तेरहवें अहोरात्र में चन्द्रमा के बारह अंश ही समाप्त होने चाहिए। इस प्रकार तेरहवें अहोरात्र में तेरहवाँ भाग आना चाहिए। किन्तु हम देखते है कि तेरहवें भाग को तेरहवें अहोरात्र में कोई स्थान नही है। उस दिन से प्रात; काल में ही चौदहवाँ भाग प्रारम्भ हो गया। तब बारहवें अहोरात्र में ही तेरहवें भाग के समाप्त हो जाने के कारण त्रयोदशी का क्षय कहा जाता है। इसी तरह जब चन्द्रमा मन्द गति से चलता है और अपने एक बारह अंश वाला भाग चौबीस घंटों के स्थान पर छब्बीस घण्टे में समाप्त किया तब यही दो घण्टे बचते–बचते एक अहोरात्र आगे

बढ़ जायेंगे। तिथि विज्ञान के आधार पर कोई भी बता सकता है कि आज अमावस्या है, चन्द्रमा नही उगेगा। आज अष्टमी है, चन्द्रमा आधा उगेगा। पूर्णिमा है तो चन्द्रमा पूरा होगा इत्यादि। परन्तु रोमन तारीखों के आधार पर यह बात किसी भी दशा मे नही बतायी जा सकती है।

यदि तिथियों की क्षय–वृद्धि न मानी जाय तब चौदह दिन में होने वाली अथवा सोलह दिन में आने वाली अमावस्या को कोई नहीं बता सकेगा और धार्मिक कार्य जो पूर्ण चन्द्र को होने को हैं वे कभी आधे चन्द्र तथा कभी बिना चन्द्र–दर्शन के करने पड़ेंगे। इस प्रकार भारतीय व्रतोत्सवो को ठीक–ठीक समझने के लिए तिथियो के क्षय–वृद्धि विषयक इस विज्ञान का विशेष महत्व है।

पक्ष - पक्ष दो होते हैं–शुक्ल पक्ष और कृष्ण पंक्ष। जिस पक्ष में चन्द्रमा की कलाओं की वृद्धि होने से प्रकाश अधिक होता है उस पक्ष को शुक्ल पक्ष कहते है। जिस पक्ष में चन्द्रमा की कलाओं का ह्रास होता है, उसमें प्रतिदिन अन्धकार की वृद्धि होती है, उसे कृष्ण पक्ष कहते है। कृष्ण पक्ष को बहुलपक्ष भी कहते हैं।

वार - 'वार' का शाब्दिक अर्थ है नियमानुसार प्राप्त समय। आज के दिनों के नाम ग्रहों के नाम पर आधारित है। यथा–सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति शुक्र एवं शनि नामक सात ग्रहों के नाम पर। रविवार सप्ताह का पहला दिन है, क्योकि उसी दिन सृष्टि का आरम्भ हुआ। जिस प्रकार दिनों का क्रम है उसमें ग्रहों की दूरी उनके गुरूत्व, प्रकाश एवं महत्ता का कोई समावेश नहीं है। याज्ञवल्क्य–स्मृति ने ग्रहों का क्रम इस प्रकार दिया है– सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु[५१]। यही उल्लेख विष्णु पुराण मे भी आया है।

---

[५१] काणे पी०वी० धर्म शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ३२७।

जो देव जिस दिन पूजित होता था वह उसी दिन के साथ समन्वित हो गया। जो दिन सूर्य एवं चन्द्र के लिए पवित्र थे, वे रविवार एवं सोमवार हो गये। खगोलीय क्रम के अनुसार ग्रहो की होराएँ होती है। प्रत्येक[४६] होरा ढाई घडी अथवा साठ मिनट की होती है। इस प्रकार एक अहोरात्र मे चौबीस होराएँ होती हैं। उनमे से पहली घटी उस अहोरात्र के स्वामी की होती है और बाद में उसी पूर्वोक्त खगोलीय–क्रम के अनुसार क्रमागत निम्नवर्ती ग्रह की होरा आती है। उदाहरणार्थ यदि पहली होरा शनि की हुई तो उसके निम्नवर्ती ग्रहों के अनुसार शनि, गुरू, मगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्र इस प्रकार हेराएँ होती चली जायेंगी। इसके अनुसार तीसरे पर्याय की समाप्ति के बाद बाईसवी होरा पुनः शनि की होगी। तदन्तर उसी क्रम में तेइसवे और चौबीसवें घंटे में गुरू और मंगल की होराएँ रहेंगी और पच्चीसवें घण्टे में अर्थात् दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्य की होरा होगी। इस होरा–क्रम के अनुसार शनि के दूसरे दिन सूर्य की तीसरे दिन चन्द्र की, चौथे दिन मंगल की, पॉचवे दिन बुध की, छटे दिन गुरू की, सातवें दिन शुक्र की और आठवे दिन पुनः प्रातःकाल शनि की होरा आ जायेगी। वारो का क्रम यही है 'होरा' शब्द' 'अहोरात्र' शब्द के आदि और अन्त के अक्षरों का लोप करके बना हुआ प्रतीत होता है।

नक्षत्र - भारतीय व्रतोत्सवों में नक्षत्रों का भी महत्व है। चन्द्रमा और सूर्य का ही प्राणियों के जीवन पर अधिक प्रभाव पडता है और नक्षत्रों के अनुसार ही खगोल में चन्द्रमा की उचित स्थिति आँकी जा सकती है। भारतीयों के प्रत्येक धार्मिक कार्य वेदों के समय से लेकर अब तक इन्हीं नक्षत्रों की प्रधानता के अनुसार सम्पन्न किये जाते हैं। अनेक उत्सव भी नक्षत्रों के अनुसार ही निर्धारित है। जिस दिन चन्द्रमा जिस तारा–ब्यूह के समीप होता है, उस दिन वह उसी

---

[४६] सूर्य सिद्धान्त, गोलाध्याय श्लोक ११ ।

नक्षत्र पर समझा जाता है। तैतिरीय ब्राह्मण के बहुत पहले से वैदिक लोगों ने नक्षत्रो की सख्या (सत्ताइस या अठ्ठाइस) निश्चित कर ली थी। नक्षत्रो, उनके नामो और उनके देवताओं आदि के क्रम याज्ञिक कृत्यों में समाहित हो चुके थे।

सभी नक्षत्रों के नाम महत्त्वपूर्ण हैं और उनके साथ अनुश्रुतियॉ भी बॅधी हुई है। उदाहरणार्थ– आर्द्रा का अर्थ है भीगा हुआ यह नक्षत्र आर्द्रा नाम से इसी लिए प्रख्यात हुआ क्योकि जब सूर्य इसमें अवस्थित होता है तो वर्षा आरम्भ हो जाती है। पुनर्वासु का नाम इस लिए पडा, क्योकि धान एव जौ आदि के बीज जो भूमि में पडे थे, अब नये धान्य के रूप में अंकुरित हुए। पुष्य नाम इस लिए पडा क्योकि नये अंकुर बढ़े और पोषित–फलित हुए। आश्लेषा नाम इस लिए पडा क्योकि धान या जौ के पौधे इतने बढ़ गये कि वे एक–दूसरे का अलिंगन करने लगे। मघा नाम इस लिए पड़ा कि धान्य एवं अन्य पौधे खडे अन्नों के रूप में हो गये। कृत्तिका नाम इस लिए पडा क्योकि वे उस चितबरे मृगचर्म के समान हो गये जिस पर वेद के छात्र वेदाध्ययन के लिए आसन जमाते थे।[४७] तैतिरीय ब्राह्मण[४८] के अनुसार धार्मिक कृत्यों हेतु नक्षत्रों को जानने के लिए व्यक्ति को चाहिए कि वह सूर्योदय के पूर्व एवं सूर्योदय समय (जब सूर्य की प्रथम किरणें उतरती हैं), आकाश को देखें।

ऐतरेय[४९] ब्राह्मण के आरम्भिक काल में वैदिक भारतीय इस निष्कर्ष पर पहुँच गये थे कि सूर्य एक है और वह कभी अस्त नहीं होता। यह सूर्य वास्तव में न तो कभी अस्त होता है न ही उदित। जब ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य अस्त हो रहा है तब वास्तव में सूर्य दिन के अन्त को पहुँचता है। जब ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य उदित हो रहा है तब सूर्य रात्रि के अन्तिम रूप में पहुँच जाता है। वह वास्तव में कभी भी अस्त या उदित नहीं होता।

---

[४७] काणे पी०वी० धर्म शास्त्र का इतिहास भाग ४ पृष्ठ २५५।

[४८] तैतिरीय ब्राह्म१, ५, २, १।

[४९] ऐतरेय व्राह्नण ३, ४४।

परम्परागत· भारतीय त्यौहारों–उत्सवो का यज्ञ,तप,दान एक प्रमुख अग है जिसके बिना कोई भी उत्सव अधूरा सा रहता है। यज्ञ तप दान का उल्लेख हमे प्रायः सभी धार्मिक और लौकिक साहित्य में मिलता है।

यज्ञ - विष्णुपुराण में यज्ञ को सन्मार्ग की सज्ञा दी गयी है[५०]। तथा इसे विष्णु से उद्भूत माना गया है।[५१] प्रसंगान्तर मे वर्णित है कि पृथ्वी यज्ञ का फल है, और यज्ञ भारत में प्रतिष्ठित है।[५२] नृपवेन में वर्णित है कि यज्ञ के अभाव में धर्म क्षीण जाता है; क्योंकि समस्त जगत् हविष का परिणाम है।[५३] नक्षत्रों मे मेघ तथा मेघों में वृष्टि सन्निहित है। वृष्टि से ही देवादि का संवर्द्धन होता है। वृष्टि का कारण आज्य (घृतादि पदार्थ) हैं, इसी से परितुष्ट होकर अग्नि देव वृष्टि को सम्भव बनाते हैं।[५४] यज्ञ का अनुष्ठान मनुष्यो का उपकारक है तथा पाप–क्षय करने में समर्थ है। जिनके चित्त में कालजन्य पाप रहता है वही यज्ञानुष्ठान नहीं करते।[५५] वायु पुराण[५६] के अनुसार कलियुग मे ब्रह्मा तथा द्वापर में विष्णु के समान त्रेतायुग में यज्ञ पूजा का विषय है। इस पुराण ने यज्ञ की उत्पत्ति को शिव से सम्बन्धित किया है[५७] तथा शौचाचार के निरूपण में यज्ञ और वेद को समकोटि में रखा है।[५८] ब्रहमाण्ड[५९] पुराण के अनुसार जगत्–जीवनार्थ यज्ञ और उसके विधानों का सृजन किया गया है। इस पुराण का निर्देश है कि यज्ञ से

---

[५०] विष्णु पुराण ४, ४, १२।
[५१] वही १, १२, ५६।
[५२] वही २, ७, ११।
[५३] वही १, १७, २५।
[५४] वही २, ८, १०६–१०६।
[५५] वही १, ६, २७–२०।
[५६] वायु पुराण ३२, २१।
[५७] वायु पुराण ३२, १६।
[५८] वही १६, २१।
[५९] ब्रह्माण्ड पुराण ४,६,५३।

प्रसन्न होकर देवता अभीष्ट पूरा करते है। मत्स्य[६०] पुराण मे वर्णित है कि यज्ञ देवताओं के द्वारा त्रेता युग मे प्रवर्तित हुआ था।

उपर्युक्त स्थलो से यज्ञ की पौराणिक महत्ता स्पष्ट हो जाती है। इनसे व्यक्त होता कि देवो को यज्ञ के द्वारा आराधित करने की वैदिक भावना जीवित थी। वैदिक ग्रन्थों में स्थल–स्थल पर एतत्समर्थक विचार व्यक्त हुए है। उदाहराणार्थ– शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ देवताओं का अन्न घोषित है।[६१] एक अन्य स्थल पर वर्णित है कि प्रजापति ने यज्ञ का सृजन किया है। जो देवताओ के लिए आधार है।[६२] विष्णुस्मृति में यज्ञ को लक्ष्मी का निवास–स्थान बताया गया है[६३]। मनुस्मृति[६४] में कहा गया है कि देवता हव्य पदार्थो का आहार करते हैं।

यज्ञ एक रासायनिक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कुछ ऋतुओं के संगतिकरण द्वारा अपेक्षित वस्तुएँ सिद्ध होती हैं। उदाहरणार्थ कहीं चातुर्मास्य में वृष्टि नहीं हो रही है तो इसका कारण यह है कि जो जल सूर्य की किरणों द्वारा भाप बनकर आकाश में ले जाया गया है, उसको द्रुत करने वाले पदार्थ की कमी है। अतः यज्ञ द्वारा मन्त्र–शक्ति से विहित पदार्थ को आकाश में पहुँचाया जाता है तो वह अन्तरिक्ष गत भाप बनकर बरस पड़ेगा। यदि अपेक्षित सामग्री और मन्त्र–शक्ति का यथार्थ उपयोग हो, तभी वृष्टि की प्राप्ति होगी। यदि सामग्री आदि में विपर्यय हुआ तो विपरीत फल भी हो सकता है। भगवद्गीता[६५] में विधिहीन यज्ञ और तापस कर्म का फल अज्ञान अथवा अधोगति बतलाई गयी है। यज्ञ में जितना महत्त्व सामग्री का है, उससे भी अधिक महत्त्व

---

[६०] मत्स्य पुराण १४२, ५४–५६।
[६१] शतपथ ब्राह्मण ५, ११२।
[६२] वही ८, १, २, १०।
[६३] विष्णु स्मृति ६६, १६।
[६४] मनुस्मृति १, ६५।
[६५] भगवद् गीता १७–१३, १४–१३, १४–१६।

मन्त्रो का है। तैत्तिरीय संहिता[६६] में वर्णित है कि मन्त्र यदि स्वर से अथवा वर्ण या अक्षर से हीन हो, तब वह मिथ्या प्रयोग हो जाता है अत; उस अर्थ को व्यक्त नही करता जिसके लिए मन्त्र का प्रयोग किया गया है। ऐसा वाणी–रूपी वज्र यजमान को नष्ट कर देता है। उदाहरणार्थ मनु के विषय में वायुपुराण[६७] और ब्रहमाण्ड पुराणो[६८] मे वर्णित है कि उन्होंने पुत्र पाने की अभिलाषा से यज्ञ किया था। कश्यप ने अदिति को पुत्र पाने के लिए यज्ञ में प्रवृत्त होने का आदेश दिया था[६९]। इन्द्र से क्रुद्ध त्वष्टा 'इन्द्र का मारने वाला वृद्धि को प्राप्त करे हो' इस इच्छा से 'इन्द्रशत्रु' शब्द का प्रयोग करके यज्ञ किया। 'इन्द्रशत्रु' का अर्थ तत्पुरूष समास के अनुसार 'इन्द्र का मारने वाला' है और बहुव्रीहि समास के अनुसार इसका अर्थ 'इन्द्र जिसका मारने वाला है' है। ऋत्विजो ने तत्पुरूष के स्थान पर बहुब्रीहि का स्वर का प्रयोग किया। फलतः इन्द्र न मरा और उसके विरोधी वृत्रासुर की ही मृत्यु हो गयी।

भगवद्गीता[७०] में वर्णित है कि प्रजापति ने पहले सृष्टि के आरम्भ से ही यज्ञ सहित प्रजाओं को उत्पन्न करके कहा कि तुम यज्ञ से देवताओ को प्रसन्न करो और वे तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करेंगे। जो इस यज्ञ–प्रक्रिया से परिचित होंगे, वे ही नवीन वस्तुओं का उत्पादन और अमीष्ट की पूर्ति कर सकेंगे। वैदिकों की यज्ञ–प्रक्रिया और वैज्ञानिकों की रासायनिक प्रक्रिया प्रकृति–सिद्ध यज्ञ के कारण ही सम्भव है।

---

[६६] तैत्तिरीयसंहिता २, ५।
[६७] वायु पुराण ८५, ६।
[६८] ब्रह्माण्ड पुराण ३, ६०, ५।
[६९] मत्स्य पुराण ६, ३३।
[७०] भगवद्–गीता ३, १०।

यज्ञों के प्रति जो श्रद्धेय दृष्टि वेदों प्रकट में की गयी है, उसकी प्रतिच्छाया पुराणों मे स्थल–'स्थल पर दृष्टि गोचर होती है। यज्ञ मे किन उपकरणो की आवश्यकता होती है, कितने पुरोहित आवश्यक होते है अथवा कितने अन्य उपादान अनिवार्य होते हैं, इनका विवरण पुराणों मे प्रसंगार्थ अथवा प्रकरणार्थ रूप में समुपलब्ध होता है। यज्ञ वैदिक परम्परा निर्वाह के द्योतक है।[७१]

तप - तप भगवान की अन्तरग शक्ति है और भगवान तप से इस तरह विराजते हैं जैसे शरीर में आत्मा। सब काम भगवान तप के द्वारा ही करते है। यही भगवान का पराक्रम है जो और किसी प्रकार सिद्ध न हो सके वह तप से सिद्ध हो सकता है।

वैदिक–सनातन–धर्म प्रोक्त कृत्यों मे तप का अत्यधिक महत्त्व है। उपनिषदों में स्थान–स्थान पर तप के माहात्म्य का वर्णन हैं। तप वानप्रस्थों का असाधारण धर्म है। तप में काया–क्लेश प्रधान होता है। भगवद्गीता[७२] के अनुसार कायिक, वाचिक, मानसिक किसी प्रकार के क्लेश अथवा श्रम का नाम तप है–अतः उपवास, व्रत, प्रायश्चित तथा यम–नियमादि तप के अर्न्तगत ही आते है।

इसके साथ ही यह तर्क भी कि कष्ट पाना ही तप नही है। ऐसा कष्ट जिससे अन्तरात्मा घबड़ा उठे कभी तप नहीं हो सकता। अशास्त्रीय तप की निन्दा करते हुए भगवान कृष्ण भगवद्गीता[७३] में कहते है– जो लोग ऐसे घोर तप करते है, जिनका शास्त्रों में विधान नहीं है। जो लोग अभिमानी होते है, और जिन पर इच्छा और आसक्ति अपना प्रभाव जमाये रहती हैं, शरीर के अवयवों

---

[७१] राय एस०एन० पौराणिक धर्म एवं समाज पृष्ठ १२१।

[७२] भगवद् गीता १८–६७।

[७३] वही १७–५,६।

और इन्द्रियों तथा प्रत्येक प्राणी के अन्दर विराजमान नारायण को भी दुखी करते हैं उनका तप, निश्चय ही आसुर है। ऐसे लोगो को देव न समझकर असुर ही समझना चाहिए, क्योंकि शरीर को पीडित करने से कोई दैवी जीव नहीं बन सकता है।

दान - ऋग्वेद में विभिन्न प्रकार के दानो एवं दाताओं का वर्णन आया है। दानों में गायों, रथों, अश्वो, ऊँटो, दासियों, भोजन, आदि का विशिष्ट उल्लेख हुआ है। ऋग्वेद के अनुसार जो गायों का दान करता है वह स्वर्ग में उच्च स्थान पर जाता है, जो अश्व दान करता है वह सूर्य लोक में निवास करता है, जो स्वर्ण का दानी है वह देवता होता है, जो परिधान दान करता है वह दीर्घ जीवन का लाभ करता है।" शतपथ ब्रह्मण[७४] के अनुसार "देव" दो प्रकार के होते है, स्वर्ग के देव एव मानव देव, अर्थात इन्हीं दोनों में यज्ञ का विभाजन होता है। अर्थात आहुतियॉ देवों को मिलती है तथा दक्षिणा मानव देवों (वेदज्ञ ब्राह्मणों) को।" तैत्तिरीय संहिता[७५] में वर्णित है कि व्यक्ति जब अपना सर्वस्व दान कर देता है तो वह भी तपस्या है। वृहदारण्यकोपनिषद्[७६] के अनुसार विशिष्टगुण है तप, दान एवं दया। ऐतरेय ब्राह्मण ने भी सोने, पृथ्वी एवं पशु दान की चर्चा की है।

दान का अर्थ प्राचीन काल से ही स्पष्ट है। दान में किसी वस्तु से अपना स्वामित्व हटाकर किसी दूसरे को उस वस्तु का स्वामी बना दिया जाता है। दान लेने की स्वीकृति मानसिक या वाचिक या शारीरिक रूप से हो सकती है।[७७]

---

[७४] शतपथ ब्राह्नण २, २, १०, ६।
[७५] तैत्तिरीय संहिता ६, उ१, ६, ३।
[७६] वृहदारण्यकोपनिषद् ५, २, ३।
[७७] जैमिनि ४, २, २८, ७१, ५ पराशर ६, ४, ३२ याज्ञवल्क्य २७ पर मिताक्षरा।

धर्मशास्त्र में 'प्रतिग्रह' शब्द का विशिष्ट अर्थ होता है। मनु[७८] की टीका में मेधातिथि का कथन इस प्रकार है– "ग्रहण मात्र' प्रतिग्रह नही है। प्रतिग्रह उसी को कहते हैं जो विशिष्ट स्वीकृति का भी परिचायक हो और जिसे लेते समय वैदिक मन्त्र पढा जाय। जब कोई भिक्षा देता है, तब कोई मन्त्रोच्चारण नही करता, अतः वह शास्त्र–विहित दान नहीं है और न ही स्नेह से मिला या नौकर को मिला हुआ पदार्थ ही प्रतिग्रह है।" इस प्रकार जब 'विद्यादान' शब्द का प्रयोग होता है तो वहा दान शब्द मात्र आलंकारिक है, नही तो गुरू को शिष्य के लिए दक्षिणा–देनी पड़ जायेगी वास्तव में शिष्य गुरू को दक्षिणा देता है। देवता[७९] ने शास्त्रोक्त 'दान' की परिभाषा की है– " शास्त्र द्वारा उचित माने गये व्यक्ति के लिए शास्त्रानुमोदित विधि से प्रदत्त धन को दान कहा जाता है। जब किसी उचित व्यक्ति को केवल अपना कर्तव्य समझ कर कुछ दिया जाता है तो उसे धर्मदान कहा जाता है।" बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित है कि 'प्रजापति' के पुत्र देव, मनुष्य और असुर तीनों पिता प्रजापति के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए उपस्थित हुए। उसके पश्चात् सबसे पहले देवों ने प्रजापति से जाकर कहा 'हमें उपदेश दीजिए'। प्रजापति ने इसके उत्तर में केवल एक शब्द 'द' कहा जिसका अर्थ दमन (मन और इन्द्रिय को वश में) करना है। इसकेउपरान्त मनुष्य पहुँचे उनसे भी 'द' कहा अर्थात् दान करो। इसके उपरान्त असुर पहुॅचे उन्हें भी 'द' कहा गया जिसका अर्थ है दया करो। इस उपाख्यान में देवों के लिए इन्द्रिय–निग्रह, मनुष्यों के लिए दान तथा असुरों के लिए दया का उपदेश है। भगवद्गीता[८०] के अनुसार काम–क्रोध–लोभ को छोड़ देना चाहिए, क्योंकि ये तीनों नरक के द्वार हैं। मनुष्य के काम का अन्त क्षुधा और तृष्णा से होता है।

---

[७८] मनु ४, ५।
[७९] देवल पृष्ठ २८७।
[८०] भगवद् गीता ७, १५, १६–२२।

जब रोटियाँ नही मिलती तब अन्य सभी इच्छाऍं अपने आप समाप्त हो जाती हैं। क्रोध का अन्त उसका फलोदय होने से पाया जा सकता है। पर लोभ का अन्त मुश्किल है। लोभ जीतने का मार्ग है दान। धन होते हुए भी दान–रहित जीवन व्यर्थ है। कृष्ण ने भगवद्गीता में दान को अत्याज्य अर्थात् अपरिहार्य बताया है।

दान के प्रकार नित्य, नैमित्य एवं काम्य है। जो प्रतिदिन दिया जाय उसे नित्य, जो किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर दिया जाय वह नैमित्य तथा जो सन्तानोत्पत्ति, विजय, समृद्धि, स्वर्ग या पत्नी के लिए दिया जाय, उसे काम्य कहते है। भगवद्गीता[८१] ने दान को सात्त्विक, राजस एवं तामस नामक श्रेणियों मे बाँटा है। और कहा है "जब देश काल एवं पात्र के अनुसार अपना कर्तव्य समझकर दान दिया जाता है और लेने वाला और अस्वीकार नही करता, तो ऐसे दान को सात्त्विक दान कहते हैं। जब किसी इच्छा की पूर्ति के लिए या अनुत्साह से दिया जाय तो उसे राजस दान कहते हैं। जो दान अनुचित काल में अनुचित स्थान पर एवं कुपात्र को, बिना श्रद्धा के अर्थात् घृणा के साथ दिया जाय उसे तामस दान कहते हैं।"

निस्सन्देह प्रतिग्रह या स्वीकार पर ब्राह्मणों का अधिकार था, किन्तु दान किसी भी व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता था। गौतम[८२], मनु[८३], व्यास[८४], दक्ष[८५] ने कहा है कि जाति से ब्राह्मण को और जिसने सभी वेदों पर अधिकार प्राप्त कर लिया हो, उसको जो दान दिया जाता है, वह कई गुना पुण्यों वाला होता है। शास्त्रीय दान ब्राह्मणों को ही दिया जाय अथवा अन्य को भी इसका उत्तर याज्ञवल्क्य ने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है– विधाता ने ध्यान लगाकर पहले

---

[८१] भागवद् गीता १७, २०–२२।
[८२] गौतम ५, १७।
[८३] मनु ७, ८५।
[८४] व्यास ४, ४२।
[८५] दक्ष ३, २२८।

वेदो की रक्षा के लिए, देव–पितरों की तृप्ति के लिए और धर्म–संरक्षण के लिये ब्राह्मण को उत्पन्न किया। आधुनिक काल मे कतिपय लोग इसे ब्राह्मणो का पक्षपात कहते है, लेकिन गत हजारों वर्षो से बार–बार उन्होंने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक तथा धर्म–प्रचारकों के रूप में सामने आकर घोर संकटो से भारतीय संस्कृति को बचाया, अतः दान के लिए सत्पात्र ब्राह्मण ही दान के अधिकारी बताये जाते हैं तो अनुचित क्या है? मनुस्मृति मे ऐसा वर्णन प्राप्य है कि जो ब्राह्मण चोर है, महापापी है, नपुंसक है और नास्तिक वृत्ति वाला हो वह हव्य (देव–सम्बन्धी) कव्य (पितृ सम्बन्धी) दानों के अयोग्य है। वसिष्ठ[८६], मनु[८७], व्यास[८८], बृहस्पति[८९], पराशर[९०] एवं गोभिल स्मृतियों[९१] के अनुसार सन्निकट रहने वाले विद्वान् पडोसी को दान देने की व्यवस्था की गयी है। किन्तु यदि पास मे ब्राह्मण हो और अशिक्षित एवं मूर्ख हो तो दूर के योग्य ब्राह्मण को दान देना चाहिए। देवल के अनुसार पात्रता पर ध्यान देना विशेष आवश्यक है।

कुछ वस्तुएँ ऐसी भी हैं, जो दान के रूप में नहीं दी जा सकतीं। राजा अपने सम्पूर्ण राज्य का दान नहीं कर सकता। सन्तानों के रहते अपनी पूरी सम्पत्ति का दान भी अनुचित है। याज्ञवल्क्य स्मृति[९२] के अनुसार कुटुम्ब पालन के योग्य बचाकर अपनी वस्तुएँ–जिन पर अपना स्वत्व हो– देनी चाहिए। क्योकि अपने आश्रितों का पालन पहले और दान पीछे आते हैं। इस प्रकार कर्म–योग के तीन प्रमुख अंगो के विवेचन से स्पष्ट है कि यज्ञ, तप और दान का प्रत्येक धार्मिक उत्सव में महत्त्व विद्यमान था और ये एक दूसरे के साथ संपृक्त थे।

---

[८६] वशिष्ठ ३, ९–१०।
[८७] मनु ८, ३९२।
[८८] व्यास ४, ३५–३८।
[८९] बृहन्पतिस्मृति ६०।
[९०] पराशर ७६–७९
[९१] गोभिल स्मृति २, ६६–६९।
[९२] याज्ञवल्क्य स्मृति १७३।

तैतिरीय ब्राह्मण[63] के अनुसार धार्मिक कृत्यों हेतु नक्षत्रो को जानने के लिए व्यक्ति को चाहिए कि वह सूर्योदय के पूर्व एवं सूर्योदय समय (जब सूर्य की प्रथम किरणें उतरती हैं), आकाश को देखें।

[63] तैतिरीय ब्राह्म१, ५, २, १।

तृतीय अध्याय

वसन्त ऋतु के उत्सव

वसन्तोत्सव

महाशिवरात्रि

होलिकोत्सव

रामनवमी

वसन्तोत्सव

वसन्त ऋतुओ का राजा माना जाता है। फाल्गुन मास के आरम्भ के साथ ही वसन्त ऋतु के आगमन की मान्यता है। इस अवसर पर प्रकृति के सौन्दर्य में अनुपम छटा का दर्शन होता है। वृक्षों के पुराने पत्ते झड जाते हैं और वसन्त में उनमें नयी कोपलें आने लगती है, जो हल्के गुलाबी रंग की होती हैं। खेतों में सरसों की स्वर्णमयी क्रान्ति अपनी छटा बिखेरती है। ऐसा लगता है मानों धरती ने वसन्ती परिधान धारण कर लिया है। आम्र–मजरी खिल उठती हैं, उसकी सुगन्ध से भौरे उस पर मॅडराने लगते है। बाग–बगीचों मे अपूर्व लावण्य छिटकने लगता है। ऐसे समय में जबकि भीषण पतझड के उपरान्त वनस्पतियॉ नवकलेवर धारण कर समस्त पृथ्वी को हरीतिमा से आच्छादित सा कर देती है। ऐसा आभास होता है कि समस्त पर्यावरण और उस पर आश्रित सभी चैतन्य जीवों के अन्दर उल्लास एवं उत्साह भर उठा है। इसी हर्षातिरेक को महोत्सव के रूप में अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति ने वसन्त महोत्सव जैसे महत्वपूर्ण पर्व का सूत्रपात किया। वसन्त ऋतु का यह उत्सव वसन्तोत्सव नाम से प्रचलित है।

कालिका–पुराण[1] में वसन्त की उत्पत्ति के विषय में शिव को सम्मोहित करने के निमित्त इस ऋतु के सृजन का वर्णन प्राप्त होता है। इसका आख्यानात्मक वर्णन निर्दिष्ट है, कि पुष्पों से आप्लावित सरस किंशुकों की शोभा से समन्वित अनुपम छटा का इस अवसर पर प्रस्फुटन होता है। वसन्त को महोत्सव के रूप में स्वीकार करकें उसका बड़ा रोचक वर्णन किया गया है। वसन्त श्रृंगार का प्रतीक है। इस समय मलयानिल प्रवाहित होता है तथा अपने

---

[1] कालिका पुराण ४, ३६–४६।

वश मे करने वाले मख होते है, सभी कलाएँ विशेष आकर्षण से संयुक्त हो जाती है। आज भी वसन्तोत्सव की एक परिभाषा भीषण पतझड की विभीषिका से सत्रस्त वनस्पतियों के उबरने एवं नव कलेवर से उसके आच्छादित हो जाने के रूप मे की जाती है। काथासरित्सागर[2] में वसन्त का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस ऋतु ने कामदेव की खिली हुई आम्रमजरी रूपी धनुष को भौरो की पक्ति रूपी डोरी से संयुक्त कर दिया है। काम को उत्तेजित करने वाला मलयानिल बहने लगता है। प्राणियों का यौवन जाकर फिर नही आता अत; हे सुन्दरियो, मानकलह छोडकर अपने प्रियतम पतियों के साथ रमण करो मानो कोकिल की कूकें भी इसी तरह के सन्देश दे रही है। रत्नावली[3] में वसन्तोत्सव की शोभा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मतवाली कामिनियाँ अपने हाथों मे पिचकारी लेकर नागर पुरूषों पर रंग डालती है और पुरूष गण कौतूहल से नाच रहे है। चारो तरफ तालियों के ध्वनि से गलियॉ मुखरित हो रही है; उडाये हुए गुलाल से दसों दिशाओं का मुख पीत वर्ण हो रहा है; जिससे प्रात; काल का आभास हो रहा है।

निर्णय सिन्धु[4] मे इसके आयोजन की तिथि चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को बतायी गयी है। पारिजात मंजरी[5] के अनुसार चैत्र की प्रतिपदा को इस पर्व का आयोजन होता है। कालान्तर में इस महोत्सव के रूप में अनेक धाराएँ नि;सृत हुई यथा मदनमहोत्सव, काम महोत्सव, होलिका आदि। प्रकृति के नवयौवन की बेला में अपने उत्साहपूर्ण उद्‌गारों की अभिव्यक्ति ही इन उत्सवों की मूल भावना थी।

---

[2] कथासरित्सागर ४, ३०।
[3] रत्नावली २–३०।
[4] निर्णय सिन्धु २, १४६।
[5] पारिजात मजरी ३।

काममहोत्सव चैत्र शुक्ल चतुर्थी को मनाया जाता था सामान्य अवधारणा यह है कि कामदेव का धनुष गन्ने की डोरी के तुल्य कोमल होती है। तथा शहद के वाण पर फूल लगे होते है, जो हृदय को घायल करते है। बसन्त ऋतु मे ये और भी प्रचण्ड हो जाते है। यह उत्सव श्रृगांरिक गीतों के साथ गाते–बजाते हुए मनाया जाता है। सम्भवत रति और कामदेव की पूजा का कारण यह है कि पुराणों मे वसन्त और कामदेव दोनों को परस्पर अनन्य मित्र तथा सहचर के रूप में वर्णित किया गया है। रति और काम की प्रार्थना में अपने दाम्पत्य एवं पारिवारिक जीवन को सुख–समृद्धि से पूर्ण करने की चर्चा की जाती है।

मदनोत्सव चैत्र शुक्ल को सम्पन्न होता है। कामदेव की मूर्ति के सामने मिष्ठान्न एवं खाद्य पदार्थ रखकर मन्त्रो के साथ उनका पूजन करना चाहिए। पत्नियों को अपने पति को कामदेव का रूप समझकर प्रतिवर्ष पूजन करना चाहिए। इस आचरण से व्रती शोक,–सन्ताप से मुक्त होकर कल्याण तथा सम्पत्ति प्राप्त करता है।

वसन्त ऋतु में आयोजित किये जाने वाले पर्व में वसन्त ढोलनोत्सव एवं होलिकोत्सव का नाम महत्वपूर्ण है। इस पर्व में नागरिक गान, नृत्य और संगीत आदि का आयोजन करते है। ढोलनोत्सव के आयोजन के पीछे प्रेरक तत्व एवं उत्सव योजना विधि के सन्दर्भ में वर्णित है कि शिव–मन्दिरो में इस पर्व का आयोजन होता था। शिव और पार्वती को इस पालकी पर बैठाया जाता था। चैत्र शुक्ल की तृतीया को गौरी तथा शिव का एक साथ पूजन कर ढोलोत्सव किया जाता था। भविष्य पुराण के अनुसार कृष्ण ने युधिष्ठिर से ढोलोत्सव का वर्णन इस प्रकार किया–जब नन्द वंश में ढोलोत्सव होने लगा। बसन्त ऋतु में

देवागनाएँ मिलकर ढोल–क्रिडा करने लगे तब नन्दवन मे यह मनोहारी उत्सव देखकर पार्वती जी ने शंकर जी से कहा 'भगवान! इस क्रिडा को आप देखे। आप मेरे लिए एक ढोला बनवाए, जिसपर मै आप के साथ बैठकर ढोला क्रिड़ा कर सकूँ।' पार्वती जी के यह कहने पर शिव जी ने देवताओं को अपने पास बुलाकर ढोला बनाने को कहा। देवताओं ने शिव जी के कथनानुसार सुन्दर उत्तम इष्टापूर्तमय दो स्तम्भ गाडकर उस पर सत्यस्वरूप एक लकड़ी का पटरा रखा और वासुकि नाग की रस्सी बनाकर उसके फणों पर बैठने के लिए रत्नजटित पीठ की रचना की। ढोला की शोभा बढाने के लिए मोतियों के गुच्छों और फूल मालाओं से उसे सजा दिया। इस प्रकार देवताओं ने अति उत्तम ढोला तैयार कर भगवान शंकर को आदर पूर्वक प्रदान किया। अनन्तर भगवान चन्द्रभूषण भगवती पार्वती के साथ ढोला पर बैठ गये। भगवान शंकर के पार्षद ढोला झुलाने लगे तथा जया और विजया दोनों सखियाँ चँवर ढुलाने लगी उस समय पार्वती जी ने बहुत ही मधुर स्वर में गीत गाया, जिससे शिव जी आनन्दमय हो गये। गन्धर्व गीत गाने लगे; अप्सराएँ नाचने लगी और चारण विविध प्रकार के बाजे बजाने में संलग्न हो गये। परन्तु शिव जी के ढोला–विहार से सभी पर्वत कॉपने लगे, समुद्र मे हलचल मच गया, प्रचण्ड पवन चलने लगी, सारा लोक त्रस्त हो गया। इस प्रकार त्रैलोक्य को अति व्याकुल देखकर इन्द्रादि सभी देवगणों ने सभी के पापों का नाश करने वाले शिव जी के पास आकर प्रणाम किया और प्रार्थना कर कहने लगे–'नाथ! अब आप ढोला–लीला से निवृत हों, क्योकि त्रैलोक्य को क्षोभ प्राप्त हो रहा है।' इस प्रकार देवताओं की प्रार्थना सुनकर प्रसन्न हो शिवजी ने ढोला से उतरकर कहा कि 'आज से वसन्त ऋतु में जो व्यक्ति इस ढोलोत्सव को करेगा तथा नैवेद्य

अर्पित कर तत्तद देवताओ के मूल मन्त्रो से उन्हे ढोला पर आरोहण करायेगा, आनन्द मनायेगा और स्तुति पाठ करेगा, वह सभी अमीष्टों को प्राप्त करेगा।[६]

वसन्त ऋतु मे दमनक नामक फूल देवताओं के चढाये जाने का वर्णन पुराणों में हुआ है। उसके अनुसार मदरान्चल पर्वत पर दमनक नाम का एक श्रेष्ठ तथा अत्यन्त सुगन्धित वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके दिव्य गन्ध के प्रभाव से देवाङ्गनाएँ विमुग्ध हो गयी और ऋषि मुनि भी जप, तप, वेदाध्ययन आदि से च्युत हो गये। सभी शुभ कार्यो एवं मंगल कार्यो में विघ्न उपस्थित हो गया। यह देखकर ब्रह्मा जी ने श्राप दिया कि कोई भी व्यक्ति तुम्हारे पुष्प को देवकार्य तथा पितृ कार्य में आज से ग्रहण नही करेगा। ब्रह्मा द्वारा दिये गये श्राप को सुनकर दमनक ने कहा–'महाराज! मैने द्वेषवश अथवा क्रोध वश किसी का अपकार नही किया है। आपने ही मुझे इतना सुगन्ध दिया है कि उसके प्रभाव से सभी लोग स्वयं उन्मत्त हो जाते है। इसमें मेरा क्या दोष है। आप ने ही ऐसा मेरा स्वभाव बनाया है। जिसकी जो प्रकृति होती है, वह उसे त्याग नही सकता, क्योकि प्रकृति त्यागने में व असमर्थ होता है।[७] निरपराध होते हुए भी आपने मुझे शाप दिया है।' दमनक की यह तर्क संग बात को सुनकर ब्रह्म जी ने शाप की निवृत्ति के लिए वरदान दिया कि बसन्त ऋतु में तुम सभी देवताओं के मस्तक पर चढ़ोगे। जो व्यक्ति भक्ति भाव से पुष्प देवताओं पर चढ़ायेगा, उसे सुख प्राप्त होगा। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी दमनक–चतुर्दशी के नाम से विख्यात हो गयी। उस दिन व्रत नियम के पालन करने से व्रती के सभी पाप नष्ट हो जाते है। उसी दिन से लोक में दमनक–पूजा प्रसिद्ध हुई। तृतीया तिथि में कुंकर, दीपों से विशेषकर दमनक (दौना) जो तुलसी पत्र की तरह सुगन्धित

---

[६] भविष्य पुराण (उत्तरपर्व) पेज सं ४०५ (सम्पादक राधेश्याम खेमका) (गीता प्रेसःगोरखपुर)
[७] भविष्य पुराण (ब्राह्मपर्व १३३/६५)

होता है। सदा शिव एवं उमा के लिए आंदोलित किया जाता है। दक्षिण भारत में इस पर्व का आयोजन होलिकोत्सव के बाद होता है।[८]

उत्तरभारत वर्ष के कुछ प्रान्तो मे विशेषकर बंगाल में कृष्ण ढोलोत्सव का आयोजन किया जाता है। कृष्ण की प्रतिमा को झूले पर झूलाया जाता है। यह ढोलोत्सव होली प्रज्जवलित होने के बाद होता है। यदि फाल्गुन की पूर्णिमा को होली प्रज्जवलित हुई तो उत्सव प्रतिपदा को सम्पन्न होता है।। फाल्गुन चतुर्दशी के अवसर पर आठवे प्रहर में अथवा पूर्णिमा तथा प्रतिपदा के योग पर तीन दिनों से पाँच दिनों तक मनाया जाता है। इस समय गोविन्द की प्रतिमा का निर्माण किया जाता है। प्रथम दिन की प्रज्जवलित अग्नि को उत्सव के अन्तिम दिन तक रखने की प्रथा है। पुराणों के अनुसार पालने में झूलते हुए कृष्ण को कृष्णाभिमुख होकर एक बार देख लेने से समस्त पापों से मुक्ति मिल जाती है।

कालिदास, भवभूति, दण्डी आदि के काव्यो में भी वसन्त की चर्चा मदन–महोत्सव के रूप में की गयी है, मदन महोत्सव होलिका का ही एक रूप है। कामसूत्र एवं भविष्यपुराण में इसे वसन्त से संयुक्त करते है। यह उत्सव पूर्णिमान्त गणना के अनुसार वर्ष के अन्त में होता था, अत; होलिका हेमन्त या पतझड़ के अन्त का सूचक है और वसन्त की प्रेममय लीलाओ का द्योतक है। मस्ती भरे गाने, नृत्य एवं संगीत वसन्तागमन के उल्लास पूर्ण क्षणों के परिचायक है। वसन्त की आनन्दाभिव्यक्ति रंगीन जल एवं लाल रंग, और अबीर गुलाल के पारस्परिक आदान प्रदान से प्रकट होती है।[९]

फाल्गुन मास के व्यतीत हो जाने पर चैत्र मास के महोत्सव के प्राप्त हो जाने पर ब्राह्मणों के कथनानुसार पुण्य दिन में दान करना चाहिए। यह दान

---

[८] हापकिंस डा० डब्ल्यू रेलिजन ऑफ इण्डिया पृष्ठ ४५५।

[९] काणे पी०वी० धर्मशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ६०–६१।

सभी प्राणियो के लिए सामान्य है। इस दान से पितरों की आत्मा तृप्त होती है। अत; चार माह तक सबको दान देना चाहिए और जो दान देने में अक्षम है, उसे प्रतिदिन वस्त्र से ढ॑के मुख वाले धर्म–घट को पवित्र, निर्मल एवं शीतल जल से भरकर ब्राह्मणो के घर में देना चाहिए।

प्राचीन ज्योतिष के अनुसार वसन्त ऋतु के दो महीने है, चैत्र तथा वैशाख। अब स्वभाविक प्रश्न यह उठता है कि वसन्त का आगमन चैत्र से होता है तो माघ शुक्ल पंचमी को वसन्तोत्सव क्यो मनाया जाता है? एक पुराणकार ने इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है कि 'एक बार सभी ऋतुओं ने स्वेच्छा से अपने राजा वसन्त का अभिनन्दन किया और उन्हें अपनी ओर से भेंट स्वरूप प्रत्येक ने अपनी–अपनी अवधि के आठ दिन दे दियें। पॉचों ऋतुओ के ये आठ–आठ दिन मिलाकर कुल चालीस दिन होते है, जो चैत प्रतिपदा के चालीस दिन पूर्व माघ शुक्ल पंचमी को आता है। इस प्रकार वसन्त –पचमी वसन्त के आगमन की अभिनन्दन तिथि है। प्राचीन काल से ही इस महोत्सव को परम उत्साह के साथ मनाया जाता रहा है। इस दिन किसान लोग अपने खेतों से नया अन्न लाकर उसमें घी और मीठा मिलाकर उसे अग्नि को, पितरों तथा देवों को अर्पण करते हैं, तथा नया अन्न खाते है। वाणी की अधिष्ठात्री देवी मॉ सरस्वती की आराधना का भी इस दिन विशेष महत्त्व है। शिशुओं को इस दिन अक्षरज्ञान कराने की भी प्रथा है। सर्वप्रथम गणेश, सूर्य, विष्णु, शंकर आदि की पूजा करके सरस्वती की पूजा करना चाहिए। वसन्त पंचमी का त्यौहार वसन्त के आगमन के उत्सव में मनाया जाता है।

आज भी बसन्तपंचमी का उत्सव बहुत उत्साह से मनाया जाता है। प्रायः यह फरवरी के महीने में पड़ता है। इसकी महत्ता इसी से सिद्ध होती है कि

इसकी निरन्तरता बनी हुई है। ऋतु परिवर्तन का प्रतीक बना हुआ यह उत्सव आज भी बुद्धिजीवियों और अन्य धार्मिक आध्यात्मिक संगठनों द्वारा वसन्तोत्सव सरस्वती की प्रतिमा स्थापित कर उनको पुष्पाजलि अर्पित कर, एक दूसरे को अबीर–गुलाल का टीका लगाकर मनाया जाता है। सामाजिक परम्परा के अर्न्तगत इस दिन पीले वस्त्र धारण करने की प्रथा बन गयी थी। नदियों मे स्नान करना भी महत्वपूर्ण माना जाने लगा था। विशेष रूप से प्रयाग मे गंगा स्नान की परम्परा आज भी विद्यमान है। शिक्षा केन्द्रों में सरस्वती पूजा का आयोजन किया जाता है। यह एक प्रकार से आज सरस्वती पूजा से अधिक जुड गया है। इसका शहरो और नगरों मे जितना आयोजन दिखाया जाता है उतना ग्रामीण ॲचल में नही।

महाशिवरात्रि

बसन्त ऋतु के उत्सवों के कालक्रम मे होलिका के पश्चात् सबसे महत्वपूर्ण पर्व महाशिवरात्रि आता है। जिसका आयोजन उत्सव के रूप में कम, व्रत पर्व के रूप मे अधिक होता है। किसी भी मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी शिवरात्रि मानी जाती है, किन्तु माघ (फाल्गुन कृष्णपक्ष) की चतुर्दशी सबसे महत्वपूर्ण मानी जाती है और महाशिवरात्रि कही जाति है। गरूड[1], स्कन्द[2], पद्म,[3] अग्नि[4], आदि पुराणों में इसका वर्णन मिलता है। कहीं–कहीं वर्णनो में अन्तर है, किन्तु प्रमुख बातें एक जैसी है। सभी में इसकी प्रशंसा की गयी है। जो व्यक्ति उस दिन उपवास करके बिल्व पत्तियों से शिव की पूजा करता है और रात्रि भर जागरण करता है, शिव उसे नरक से बचाते हैं और आनन्द एवं मोक्ष प्रदान करते हैं। वह व्यक्ति स्वयं शिव हो जाता है। शिव पुराण में उसकी महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि दान, तप, यज्ञ, तीर्थ यात्राएँ, और व्रत इसके कोटि अंश के बराबर भी नहीं होते है।

ऐसी मान्यता है कि कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी की रात्रि को शिव अपने गणों के साथ फलदायी है। रात्रि में भ्रमण करते है। इसलिए इस रात्रि में शिव की उपासना विशेष फलदायी है। अतः चतुर्दशी को उनकी पूजा होनी चाहिए[5]। स्कन्द–पुराण[6] में आया है कि कृष्ण–पक्ष की चतुर्दशी को उपवास करनी चाहिए यह तिथि सर्वोत्तम है, और शिव में सामुज्य उत्पन्न करती है। ईशान–संहिता के

---

[1] गरूड पुराण १,१२४।

[2] स्कन्दपुराण १,१,३२।

[3] पद्मपुराण ६,२४०।

[4] अग्निपुराण १६३।

[5] हेमाद्रि काल–खण्ड पृष्ठ ३०४।

[6] स्कन्दपुराण १,१,३३,८२।

अनुसार उसी दिन व्रत करना चाहिए जबकि चतुर्दशी अर्धरात्रि के पूर्व एवं उपरान्त भी रहे। हेमाद्रि ने कहा है कि शिवरात्रि नाम वाली यह त्रयोदशी जो प्रदोष काल में रहती है, व्रत के लिए मान्य होनी चाहिए। उस तिथि पर उपवास करना चाहिए, क्योंकि रात्रि में जागरण होता है।[७] शिवरात्रि के लिए वही तिथि मान्य है जो उस काल को आच्छादित करती है। उस दिन व्रत रहना चाहिए, जबकि चतुर्दशी अर्धरात्रि के पूर्व एवं उपरान्त भी रहे।[८] व्रत के उचित दिन एवं काल के विषय में हेमाद्रि मे प्रदोष व्रत पर बल दिया गया है। परन्तु अनेक ग्रन्थो मे अर्धरात्रि अर्थात निशीथ पर बल दिया गया है। माधव के मत में यदि त्रयोदशी प्रदोष एवं निशीथ व्यापिनी हो, तो व्रत उसी दिन करना चाहिए। यदि वह दो दिनों वाली हो अर्थात वह चतुर्दशी एव अमावस्या दोनो में व्याप्त हो और वह दोनो निशीथ काल तक रहने वाली हो या दोनो दिनो तक इस प्रकार न उपस्थित रहने वाली हो, तब प्रदोष–व्याप्ति नियामक होती है। जब चतुर्दशी दोनो दिनों तक प्रदोष–व्यापिनी हो या दोनो दिनों तक उससे निर्मुक्त हो तब निशीथ मे रहने वाली ही नियामक (करने योग्य) होतीहै।[९] शिव रात्रि के काल मे रात्रि के प्रथम प्रहर में दूध से, दूसरे में दही से, तीसरे में घृत से और चौथे मे मधु से शिव लिग का स्नान करना चाहिए। चारों पहरों के अर्घ्य के समय के मन्त्र भी अलग होते है। वर्ष क्रिया–कौमुदी महोत्सव[१०] में आया है कि दूसरे तीसरे एव चौथे प्रहर में व्रती को पूजा, अर्घ्य जप एवं कथा–श्रवण करना चाहिए, स्तोत्रपाठ करना चाहिए एवं लेट कर प्रणाम करना चाहिए। प्रातःकाल व्रती को अर्घ्यजल के साथ क्षमा मॉगनी चाहिए। यदि फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी रविवार या

---

[७] हेमाद्रि काल–खण्ड पृष्ठ ३०७।
[८] निर्णयसिन्धु ३२२ ।
[९] काल निर्णय पृष्ठ २६७।
[१०] वर्षक्रिया कौमुदी महोत्सव पृष्ठ ५१३

मंगलवार को पड़े तो वह व्रत के लिए उत्तम होती है।[११] पाश्चात्त्य–कालीन निबन्धो के अनुसार , कालतत्त्व विवेक, पुरूषार्थ–चिन्तामणि, धर्मसिन्धु आदि मे शिवरात्रि विधि के विषय मे विस्तार पूर्वक उल्लेख है। चौबीस, चौदह या बारह वर्षो तक शिवरात्रि व्रत करने वाले को अवधि के उपरान्त उद्यापन करना पड़ता है। शिवरात्रि के पारण के विषय में ऐसा वर्णन प्राप्त है कि जब शिवरात्रि पूर्व एवं पश्चात् की तिथियों से संयुक्त हो जाती है तो वह पूर्णवाली तिथि प्रतिपादित कृत्य के लिए मान्य होती है, और पारण तिथि के अन्त में किया जाता है। धर्म सिन्धु के अनुसार 'यदि तिथि रात्रि के तीन प्रहरों के पूर्व ही समाप्त हो जाय तो उसके बीच में ही सूर्योदय के समय पारण करना चाहिए।

काल निर्णय में 'शिवरात्रि' शब्द के विषय में एक लम्बा विवेचन उपस्थित किया गया है। क्या यह 'रूढ़' या यौगिक है; या लाक्षणिक या योग–रूढ़ है। निष्कर्ष यह है कि यह शब्द पंकज (कमल) के सदृश योगरूढ़ है, जो कि पक से अवश्य निकलता है, किन्तु यह केवल कमल से ही सम्बन्धित है न कि मेढक से। ऋग्वेद में शिव के लिए रूद्र शब्द का प्रयोग हुआ है, जो अपनी कठोरता और रूद्रता के लिए विख्यात हैं। ऐसा विवरण मिलता है कि उनके द्वारा फेंके गये वाण तीव्र रूप से स्वर्ग और पृथ्वी पर गिरते हैं।[१२] वे अपने अस्त्रों से मनुष्य एवं गायों का संहार करते है।[१३] उनकी प्रलयकारी शक्ति से मनुष्य और पशु दोनों विनष्ट हो जाते हैं। अतः ऋषियों ने उनकी प्रार्थना की कि वे अपने अस्त्रो को दूर रखे तथा द्विपदो तथा चतुष्पदों की रक्षा करें।[१४] फलस्वरूप वे उन्हें पशुपति अर्थात् पशुओं का रक्षक मानते हैं। रूष्ट होने पर वे महामारियाँ फैला देते थे, अतः उनसे बचने के लिए लोग उनकी पूजा करते थे। रूद्र के

---

[११] स्कन्दपुराण २५२ काल निर्णय पृष्ठ २६६।
[१२] कालनिर्णय पृष्ठ १५८–१६७।
[१३] कालसार पृष्ठ १५८–१६७।
[१४] ऋग्वेद पृष्ठ ७,४६,३।

पास सहस्त्रों औषधियाँ थी।[15] जिनके कारण रोगों से छुटकारा पाना सरल था। उत्तर–वैदिक काल में रूद्र–पूजा का विकास अधिक तीव्र गति से हुआ। उन्हे 'शतरूद्रिय' और 'शिवातनु' कहा गया और साथ ही पर्वत पर शयन करने के कारण 'गिरिश' नाम से अभिहित किया गया।[16] अथर्ववेद[17] एवं शतपथ ब्राह्मण[18] में उन्हें' सहस्त्राक्ष' कहा गया है। निकटवर्ती एव दूरवर्ती समस्त पदार्थ उन्हीं के थे। साथ ही वे समस्त धनुर्धरों में श्रेष्ठ थे। अतः उनके द्वारा अपनी रक्षा के लिए उनकी आराधना की जाती थी। रूद्र सर्वत्र विराजमान थे– जल, अग्नि, औषधि, वनस्पति और समस्त भूतों मे उन्हें भूपति और पशुपति माना गया है।[19] पशुपति के रूप में उनके अधीन पॉच प्रकार के पशु थे गौ, अश्व,मनुष्य, अजा और भेड। उनकी आराधना करते हुए कहा गया है कि वे विनाश, विश एवं अग्नि से रक्षा करते हैं। उनकी उपस्थिति आकाश, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और दिशाओं में सर्वत्र मानी गयी हैं। वैभव रूप मे पूर्वी प्रदेश के, अर्न्तपर्ती ? स्थान में 'शर्व' के रूप में, दक्षिण में पशुपति के रूप में, पश्चिम में'उग्ररूप' में उत्तर में'रूद्र' के रूप में भूतल में महादेव के रूप में और अन्तरिक्ष में ईशान रूप में व्याप्त थे।[20] प्रजापति द्वारा रखे गये आठ नामों में से रूद्र, शर्व, उग्र, ईशान ये चार नाम विध्वंसकारी और विनाशकारी थे तथा भव, पशुपति, महादेव और ईशान, कल्याणकारी और विनाशकारी थे। समस्त देवगण उनकी रूद्रता से भयत्रस्त थे।[21] उनको प्रसन्न करने के लिए पशुबलि की भी व्यवस्था की गयी थी; जो ग्राम की सीमा के बाहर आयोजित की जाती थी।[22] मार्ग को पार करते समय, चतुष्पद पर पहुँचते समय, नदी पार करते समय नाव पर आरूढ़ होते समय,

---

[15] ऋग्वेद १,११४,६।
[16] ऋग्वेद ७,४६,३।
[17] अथर्ववेद ११,२,७।
[18] शतपथ ब्राहमण ६,१,१,६।
[19] अथर्ववेद ६,६३,२।
[20] अथर्ववेद १५,५,१–७।
[21] शतपथ ब्राहमण ६,१।
[22] आपस्तम्बगृहयसूत्र ४,६।

और पर्व, श्मशान एव गोशाला जैसे स्थानों के मध्य से जाते समय अपने सुरक्षार्थ रूद्र की उपासना की जाती थी।[23] महाभारत मे शिव का उल्लेख श्रेष्ठ देवता के रूप में हुआ है, जिनसे पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिए अर्जुन को हिमालय जाना पडा था, वहाँ उन्होंने किरात वेश में शिव की वास्तविकता को समझे बिना उनसे युद्ध किया, परन्तु वे परास्त हुए। इसके पश्चात् उन्होंने मृत्तिका की वेदी बनाकर शिव की आराधना की और देखा कि जो पुष्प उन्होने अर्पित किया है, वह किरात के सिर पर रखा हुआ है। तब उन्होंने शिव को पहचान कर अपने को उनके चरणों में शरणागत किया।[24] पुत्र–प्राप्ति के लिए स्वयं कृष्ण ने शिव की आराधना की थी। तद्नन्तर भगवान शिव ने अपनी पत्नी उमा के साथ प्रकट होकर कृष्ण को मनोवाक्षित वर प्रदान किया था[25]। स्कन्दपुराण[26] में ऐसा उल्लेख मिलता है कि भगवान रूद्र ने कहा कि सृष्टि–कर्ता ब्रहमा से भी पहले मैं ही अकेला ईश्वर था, वर्तमान में भी मैं ईश्वर हूँ और भविष्य में भी एकमात्र ईश्वर रहूँगा। मेरे अतिरिक्त कोई दूसरा ईश्वर नही है। अपनी इसी प्रतिष्ठा के कारण ही ऐश्वर्य से देवताओं को, शक्ति से असुरों को, ज्ञान से मुनियों को तथा योग से प्राणियों को उन्होंने पराजित किया था।[27]

शिवरात्रि नित्य एवं काम्य दोनो होती है। यह नित्य इसलिए है क्योंकि इसके विषय में यह अवधारणा है कि जो मनुष्य इसे नहीं करता वह पापी होता है, 'वह व्यक्ति जो तीनो लोकों के स्वामी रूद्र की पूजा भक्ति से नहीं करता वह सहस्र जन्मों में भ्रमित रहता है।' इस व्रत को प्रतिवर्ष किया जाना चाहिए। पुरूष या पतिव्रता नारी को प्रतिवर्ष शिवरात्रि पर भक्ति के साथ महादेव की

---

[23] परास्कर गृह्यसूत्र।
[24] महाभारत वन पर्व ३८–४०।
[25] वायु पुराण ५, ४१।
[26] स्कन्द पुराण १, २, ७–८।
[27] वायु पुराण ७०, ६१–६२।

पूजा करनी चाहिए।[२८] यह व्रत काम्य भी है, क्योकि इसे करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

ईशान–संहिता, काल निर्णय[२९], निर्णय सिन्धु[३०], कृत्यतत्त्व आदि के मत में यह व्रत सभी प्रकार के मनुष्यो द्वारा सम्पादित हो सकता है। यहॉ तक कि चाण्डालों को भी शिवरात्रि पाप–मुक्त करती है। आनन्द देती है। ईशान संहिता के अनुसार यदि विष्णु या शिव या किसी भी देव का भक्त शिवरात्रि का त्याग करता है तो वह अपनी पूजा के फलों को नष्ट करता है। जो इस व्रत को करता है उसे कुछ नियम मानने पडते हैं; जैसे–अहिंसा, सत्य, अक्रोध, ब्रहमचर्य, दया, क्षमा का पालन करना होता है।[३१] उसे शान्त–मन, कोपहीन, तपस्वी, मत्सारहित होना चाहिए। इसका ज्ञान उसको दिया जाना चाहिए जो गुरूपादानुरागी हो, यदि इसके अतिरिक्त किसी अन्य को यह दिया जाता है तो ज्ञानदाता नरक में पड़ता है। विवाहित स्त्रियाँ पति की मंगलकामना के लिए और कुवाँरी कन्याऍ योग्य वर की प्राप्ति के लिए इस व्रत का अनुष्ठान करती है। धतूर, बिल्वपत्र और सिन्दूर से शिवलिंग की पूजा होती है।[३२]

प्राचीन भारतीय इतिहास में सैन्धव–सभ्यता के काल से ही शिव की पूजा के प्रमाण मिलने लगते हैं। लेकिन उत्तरोत्तर काल में शिव की महत्ता अधिक तीव्र गति से आगे बढ़ने लगती है। इस क्रम में शैव–धर्म एवं सम्प्रदाय की भी विधिवत् स्थापना हो जाती है। पुराणों के काल तक लिंग शिव का सर्वमान्य और सम्मिलित प्रतीक बन गया था तथा उसकी उपासना दीर्घ काल से स्थापित हो

---

[२८] निर्णयसिन्धु पृष्ठ २२५।
[२९] काल–निर्णय पृष्ठ २६०।
[३०] निर्णय सिन्धु पृष्ठ २२५।
[३१] कृत्यकल्पतरू। पृष्ठ ४६१।
[३२] जैन एस० व्रत एवं त्योहार पृष्ठ १३८।

अनेक पुराणों में शिवरात्रि व्रत और पूजन की विधि का वर्णन प्राप्त होता है। गरूड पुराण मे लिखा गया है कि व्रत करने वाले को यह घोषित करना चाहिए हे देव! मै चतुर्दशी की रात्रि में जागरण करूँगा मैं यथाशक्ति दान, तप एवं होम करूँगा। हे शम्भु। मे चतुर्दशी को मैं भोजन नहीं करूँगा केवल दूसरे दिन खाऊँगा। हे शम्भु आनन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति के लिए आप मेरे आश्रय बनो। 'व्रती को' 'ओम् नमः 'शिवाय' का पाठ करना चाहिए। चन्दन–लेप से आरम्भ कर सभी उपचारों के साथ शिव–पूजा करनी चाहिए। और अग्नि में तिल चावल एवं घृत–युक्त भात डालना चाहिए। तदुपरान्त पूर्णाहुति करनी चाहिए और शिव –विषयक सुन्दर कथाएँ एवं गान सुनना चाहिए। व्रती को पुनः अर्धरात्रि के तीसरे प्रहर एवं चौथे प्रहर में आहुतियाँ डालनी चाहिए। सूर्योदय के समय उसे 'ओम् नमः शिवाय' का मौन पाठ करते हुए शिव–प्रार्थना करनी चाहिए कि हे देव। आपके अनुग्रह से मैने निर्विध्न पूजा की है। हे लोकेश्वर, हे शिव मुझे क्षमा करें इस दिन जो भी पुण्य मैने प्राप्त किया आपकी कृपा से ही यह व्रत पूर्ण किया है। हे दया–शील मुझ पर प्रसन्न हो और अपने निवास को जायँ। इसमें कोई सन्देह नही कि केवल आपके दर्शन मात्र से मैं पवित्र हो चुका हूँ। तत्पश्चात् शिव–भक्तों को वस्त्र, क्षत्र, भोजन आदि से सन्तुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार शिवरात्रि का व्रत करके ब्राह्मणों को खिला कर तथा दीपदान करके व्रती स्वर्ग प्राप्त कर सकता है। तिथित्व[३६], कालतत्व विवेक[३७], धर्मसिन्धु[३८] आदि में शिवरात्रि के विषय में विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। स्कन्दपुराण में वर्णित है कि त्रयोदशी के दिन एक समय भोजन कर चतुर्दशी को निराहार व्रत करे। वस्त्र, पुष्पादि से अत्यन्त भव्य एक मण्डप बनाना चाहिए।

---

[३६] तिथित्व पृष्ठ १२६।

[३७] कालतत्त्व विवेक पृष्ठ १९७–२०३।

[३८] धर्म सिन्धु १२७।

प्रथम आचार्य आदि का शिव रूप समझकर पूजन करे तत्पश्चात् उनसे प्रार्थना करे। प्रातःकाल स्नान–ध्यान आदि से निवृत्त होकर और महादेव का पूजन कर के हवन करना चाहिए और दो सौ आठ आहुतियाँ देनी चाहिए। पूर्णाहुति के पश्चात कुम्भ–सहित प्रतिमा आचार्य को देकर प्रार्थना करनी चाहिए। तत्पश्चात् आचार्य का पूजन तथा अन्य ब्राह्मणों को भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए। तदुपरान्त स्वयं भोजन करना चाहिए। स्कन्दपुराण मे ऐसा वर्णन है कि ब्रह्माण्ड के भीतर जितने भी तीर्थ हैं वे सब चतुर्दशी का पारण करके पूजित होते है।

पुराणों में ऐसा वर्णन प्राप्त है कि शिवरात्रि व्रत करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि वह फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को प्रातःकाल स्नानादि से निवृत होकर माथे पर भस्म का त्रिपुण्ड तिलक और गले में रूद्राक्ष की माला धारण करके जल चढाये और शिव का स्मरण करते हुए मौन रहे। शिवपूजा का संकल्प करे। इसके पश्चात् गन्ध, पुष्प, बिल्वपत्र, धतूरे का फल घृत मिश्रित धूप दीप, नैवेद्य और नीराजना आदि आवश्यक सामग्री रख कर रात्रि के पहले प्रहर में पहली, दूसरे में दूसरी, तीसरे में तीसरी और चौथे प्रहर में चौथी पूजा करनी चाहिए। पूजा की समाप्ति में पर नीराजना मन्त्र, पुष्पांजलि देकर परिक्रमा करे। इस दिन शिव की पूजा तथा दर्शन करना आवश्यक है। ऐसी अवधारणा है कि इस दिन उपवास एवं जागरण करने वाले व्यक्ति का पुनर्जन्म नहीं होता।

पुराणों में शिवरात्रि व्रत–पूजा महत्त्व से सम्बन्धित अनेक कथाओं का उल्लेख प्राप्त है। शिवलिंग की जो पूजा होती है उसकी पुराणोक्त कथा इस प्रकार है– दक्ष प्रजापति के यज्ञ में क्रोधित हो सती ने प्राण त्याग दिया तब शिवजी खिन्न हो गये तथा नग्न होकर पृथ्वी पर घूमने लगे और एक दिन ब्राह्मणों की बस्ती में गये। उनके नग्न रूप को देखकर स्त्रियाँ मोहित हो गयीं।

स्त्रियो की ऐसी दशा देखकर ब्राह्मणों ने शाप दिया कि इस पुरूष का लिंग अभी गिर जाय। शाप देते ही वह गिर गया और तीनो लोकों में उत्पात होने लगा। यह सब देख, ऋषि, मुनि व्याकुल हो ब्रह्मा जी के शरण मे गये। ब्रह्मा योग–बल से सब जान गये, तत्पश्चात् ब्राह्मण तथा समस्त देवताओं ने शिव से प्रार्थना की कि आप अपने लिंग को पुन· धारण कर लीजिए अन्यथा तीनों लोक नष्ट हो जायेंगे। ब्रह्मा जी की वाणी सुनकर शिव ने कहा कि यदि आज से सब हमारे लिंग की पूजा करेंगे तब हम लिंग धारण करेंगे तब सर्वप्रथम शिवलिंग बना तथा ब्रह्मा द्वारा उनका पूजन किया गया। उनके पश्चात इन्द्र आदि देवताओं, मुनि, ऋषि सभी ने अनेक द्रव्यो से शिवलिंग निर्माण कर पूजन किया। तभी से शिवलिंग पूजा का प्रचार आरम्भ हुआ।[३६]

एक बार पार्वती जी ने भगवान शिव शंकर से पूछा भगवन, इस प्रकार का कौन सा व्रत है जिसके करने से मनुष्य आपकी की प्राप्ति कर सकता है? इस पर महादेव जी ने उत्तर दिया–फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी को व्रत रहकर प्रदोष काल में मेरा पूजन करके रात्रि को जो मनुष्य जागरण करता है वह अनायास ही मेरे अनुग्रह को प्राप्त करता है। यह कह कर उन्होंने एक ब्याध की कथा कही जो प्रतिदिन जीवों की हिंसा कर अपने परिवार का पालन करता था। वह एक साहूकार का ऋणी था लेकिन उसका ऋण समय पर न चुका सका। क्रोध वश साहूकार ने शिव मन्दिर में उसे बन्द कर दिया। संयोगात् उस दिन फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी की तिथि थी। शिवालय में धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का आना जाना था और उसमें अनेक लोग शिव जी के स्तोत्रादि पढ़ रहे थे। कुछ लोग शिवरात्रि का महामात्य कह सुन रहे थे। दूसरे दिन शिवरात्रि को साहूकार ने व्याध को इस शर्त पर छोड़ दिया कि तुम जल्द से जल्द हमारा रूपया

---

* पी० गणेशन व्रतोत्सव चन्द्रिका पृष्ठ २४१।

चुकता कर देना। व्याध वहाँ से छूटकर फिर जगल की ओर गया, क्योंकि उसकी जीविका का वही साधन था। किन्तु उसे उस दिन, दिन भर घूमते रहने के बाद भी कोई शिकार नही मिला। बेचारा भूख से व्याकुल हो गया वह शिकार की तलाश में इधर–उधर घूम रहा था कि उसे एक तालाब दिखाई पडा, उसने सोचा कि पानी पीने के लिए यहाॅ कोई न कोई पशु अवश्य आयेगा, अतः इसी जगह कही छिपकर बैठा जाय। वह एक पत्तेदार बेल के वृक्ष पर चढ गया और उसी पर अपने बैठने के लिए बेल के कुछ पत्तो को नीचे गिराने लगा। बेल के ठीक नीचे शिवलिंग स्थापित था। जो बिल्वपत्र व्याध ने गिराये वे सब शिवलिंग पर ही गिरे। वे इतने अधिक थे कि शिवलिंग पूरा का पूरा ढक गया। उधर वह दिन भर उसी पेड़ पर बैठा रहा, किन्तु एक भी पशु तालाब में पानी पीने नही आया। क्योंकि शिशिर ऋतु में प्यास उतनी नही लगती। इस प्रकार व्याध का निराहार और निर्जल रूप में महाशिवरात्रि का व्रत पूरा हो गया और बेल के पत्तों के शिवलिंग पर गिराने से भी उसे प्रचुर पुण्य मिल गया। उसकी अन्तरात्मा स्वतः पवित्र हो गयी। भूख और प्यास के कारण यद्यपि वह खिन्न था, तथापि उसके हद्‌य में सहानुभूति और करूणा की अज्ञात ज्योति जल चुकी थी। दिन बीत जाने के बाद रात आयी। व्याध उसी पेड़ पर बैठा रह गया। जब रात भी एक प्रहर बीत गयी, तो एक गर्भिणी हिरणी तालाब के समीप आती हुई दिखाई पड़ी। गर्भ के भार से वह बहुत धीमे धीमे चल रही थी। व्याध हिरणी को देखकर फूला न समाया, उसने तुरन्त अपना बाण धनुष पर चढ़ाया और तत्क्षण बाण छोड़ना ही चाहता था कि हिरणी ने चिल्लाकर उसे रोकते हुए कहा–'व्याध तुम ऐसा अनर्थ क्यों कर रहे हो'?

व्याध बोला 'भला इसमें अनर्थ की क्या बात है? यह तो हमारा वंशगत कर्तव्य है।, मैं तो नित्य ही दस–पाँच पशु पक्षियों का वध करता रहता हूँ।'

हिरणी बोली - 'सो तो ठीक है, किन्तु मै गर्भवती हूँ, मेरे गर्भ का समय भी पूरा हो चुका है, मेरे साथ बच्चों की भी मृत्यु हो जायेगी। 'मै तुमसे वादा करती हूँ कि तुम मुझे अपने बच्चे को जन्म देकर उन्हें उनके पिता को सौप कर तुम्हारे पास आ जाऊँगी। इसमें तनिक भी अविश्वास मत करो। मै ऐसा अवश्य ही करूँगी।'

व्याध का चित्त सहानुभूति और करूणा से द्रवित हो गया, उसने हिरणी को छोड दिया। वह पानी पीकर अपने गन्तव्य की ओर वापस चली गयी। व्याध अब किसी दूसरे जीव के आने की प्रतीक्षा करने लगा। आधीरात बीत जाने पर एक सुवर्ण के रंगो वाली खूबसूरत और तन्दुरूस्त हिरणी फिर उसी तालाब के समीप मस्त चाल में आती हुई उधर से दिखाई पडी। व्याध ने फिर अपना वाण उठाकर धनुष पर चढाया,। किन्तु वाण चढ़ाते ही सुन्दर हिरणी आर्त–स्वर में प्रार्थना करते हुए बोल पड़ी– 'सौम्य, मेरा ऋतुकाल अभी समाप्त हुआ है। यदि मेरी मृत्यु इसी समय हो जाती है तो मैं अगले जन्मों मे भी कामुक प्रवृत्ति की बनी रहूँगी,। अत; इस समय आप मुझे छोड़ दे। मै अपने प्यारे पति के संग समागम–सुख का भोग कर आपके पास फिर आ जाऊँगी। ऐसा करने से आपको भी कोई पाप नहीं लगेगा और मेरी अभिलाषा पूरी हो जायेगी।' व्याध का हद्‌य सहानुभूति से भरा हुआ था, उसने हिरणी की प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह भी पानी पीकर अपने गन्तव्य की ओर वापिस चली गयी। इस दूसरी हिरणी के चले जाने के बाद व्याध शिव–शिव जपता हुआ उसी पेड़ पर बैठा रहा। एक प्रहर रात और बीती। बीच–बीच में वह व्यर्थ का समय बिताने के लिए बिल्वपत्र तोड़–तोड़ कर नीचे गिराता जाता था, जो सबके सब शिवलिंग पर चढ़ते जाते थे। जब एक प्रहर रात शेष रही, तो एक तीसरी हिरणी अपने तीन–चार बच्चों के साथ तालाब के पास आती हुई दिखाई पड़ी, वह फिर

अपना धनुष–वाण सहेज कर उसे मारने के लिए तैयार हो गया, किन्तु इतने मे वह हिरणी अपने करूणा–पूर्ण स्वर में उससे विनीत वाणी बोली–

'सौम्य, मैं देख चुकी हूँ कि आपने मुझसे पूर्व आने वाले दो जीवों को छोड दिया है। आपकी कल्याण और सहानुभूति की चर्चा सुनकर मैने इधर आने का दुस्साहस किया है,। आप देख रहे है कि मेरे कितने छोटे–छोटे बच्चे है। मेरे मारे जाने के बाद सब अनाथ हो जायेगे। यदि आप मुझे मारना ही चाहते हैं तो थोड़े समय के लिए मुझे छोड दें, मैं इन्हें इनके पिता के सुपुर्द करके आपके पास वापस आ जाऊँगी। तब मुझे मरियेगा।' व्याध ने तीसरी हिरणी की भी बात मान ली। पानी पीकर बच्चों के साथ अपने पति के पास चली गयी।

धीरे–धीरे प्रातःकाल समीप आ गया। वन के पक्षी बोलने लगे। शीतल–मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी। पूर्व का क्षितिज लाल हो गया। व्याध ने शिव–शिव जपते हुए बेल के कुछ पत्ते पुनः गिराये। इसी बीच एक सुन्दर बलिष्ट हिरण सरोवर की ओर मन्द गति से आता हुआ पुनः दिखाई पड़ा। व्याध ने मारने की तैयारी ज्योंही की, इसी बीच वह भी विनय भरी वाणी में प्रार्थना करता हुआ बोला सौम्य ! यदि मुझसे पहले इस सरोवर में आने वाली तीन हिरणियों की आपने हत्या की है तो लीजिए आप मुझे भी मार डालिए, क्योकि अब मेरे जीने का कोई फल नही। किन्तु यदि उन्हें नहीं मारा है तो मुझे भी न मारे। मेरे मारे जाने पर उन तीनों की प्रतिज्ञा भी न पूरी होगी क्योकि वे तीनों ही अपना–अपना भार मुझे सौप कर आपके पास आने का वचन दे गयी है।'

व्याध ने हिरण की सार्थक और मर्मभरी बातों का आदर किया। उसने हिरण को भी छोड़ दिया। इस बीच सवेरा हो चुका था। भगवान् भास्कर की लाल किरणें सरोवर के भीतर तक प्रविष्ट होकर आकाश के साथ–साथ सरोवर

और जंगल को भी प्रकाशमान करने लगी थी। व्याध शिव–शिव जपते हुए बेल के पेड के नीचे उतरा। उस समय उसका ह्रद्य अत्यन्त निर्मल एवं कोमल हो चुका था। भगवान शिव की कृपा से उसका अज्ञान दूर हो चुका था। उसने प्रतिज्ञा की कि आज से प्राणियों के वध जैसा निर्मम कार्य वह कभी नहीं करेगा। उसने मन में तय कर लिया कि वे हिरणियाँ अपने वचन की रक्षा के लिए हमारे समीप आती भी है, तो उन्हें नहीं मारूँगा।

उधर हिरण सरोवर में पानी पीकर अपने आवास को वापस गया। उसने तीनों हिरणियो को अपने वचन के रक्षा के लिए व्याध के समीप जाने की याद दिलाई। अपने–अपने मनोरथों की पूर्ति कर वे व्याध के समीप पहुँच गयी, किन्तु तब तक वह व्याध कुछ दूसरा ही बन चुका था। उसने उनके सामने ही अपने धनुष–बाण सरोवर की अगाध जल–राशि में फेंक दिये और उनसे उनके अपने आवास जाने की प्रार्थना की। महाशिवरात्रि के व्रत का सम्पूर्ण रीति से पालन होने के कारण आशुतोष शंकर जी उस व्याध पर परम प्रसन्न हुए और अब तो उसकी निर्मल और करूणापूर्ण मनोवृत्ति से वह अत्यन्त गद्‌गद्‌ हो उठे। उन्होंने व्याध को अपना लोक प्रदान किया और उसे लेने के लिए अपने एक गण को रथ के साथ भेजा। फिर तो शिव जी के उस पावन रथ पर व्याध के संग अपने वचन की रक्षा करने वाले हिरण तथा हिरणियों को भी स्थान दिया गया और वे सबके के सब शिव–सायुज्य को प्राप्त हुए।

इस कथा के अनन्तर शिव जी ने पार्वतीसे कहा जो कोई प्राणी इस शिवरात्रि के व्रत का विधिपूर्वक पालन करता है, वह अपने सम्पूर्ण पाप कर्मो से मुक्ति पाकर मेरी गति प्राप्त करता है।'

शिवरात्रि के पर्व के माहात्म्य के विषय मे कतिपय लोक–कथाएँ भी प्राप्त होती है यथा–एक व्याध एक दिन शिकार करने गया। शिकार करने के पश्चात् उसे अपने साथ शिकार लाने में थकान का अनुभव होने लगा। धीरे–धीरे अँधेरा होने लगा। इस कारण उसे वन में ही रात व्यतीत करनी पडी। वन के हिंसक पशुओ के भय से वह एक बिल्व–वृक्ष पर चढ गया और शिकार को एक दूसरी डाल पर रख दिया। उस दिन शिवरात्रि थी। व्याध दिन भर का भूखा–प्यासा था उसी वृक्ष के नीचे एक शिवलिग की प्रतिमा थी। ठण्ड़ से जब वह इधर–उधर होता, तब बिल्व की पत्तियाँ और ओस की बूँदें शिवलिंग पर गिरती। इस प्रकार अनजाने में उसने शिवरात्रि को शिवलिग की पूजा की और पूजा का फल पाया। घर आकर ठण्ड के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। यम देवता के दूत जब उसे लेने आये तब शिव के गणों ने उनसे उसे छीन लिया। यम स्वयं उसे लेने कैलाश पर्वत पहुँचे और उन्होंने कहा कि इस व्याध ने अनेक पाप किये है, अतः उसे संरक्षण न दिया जाय। तब उन्हें यह बताया गया कि उसने मृत्यु से पूर्व अनजाने में शिवरात्रि व्रत की विधि पूरी कर ली थी। अतएवं उसे इस व्रत का फल मिला है। फल स्वरूप उसे कैलाश में स्थान प्राप्त हुआ।

शिवरात्रि; नित्य एवं काम्य -

बसन्त ऋतु में पडने वाला ये पर्व यद्यपि उल्लास और मदनोत्सव का ही प्रतीक है किन्तु यह व्रत उपासना और साधना के अधिक निकट है। जिसके द्वारा शस्वत आनन्द की प्राप्ति होती है। वर्तमान समय में केवल शिवरात्रि के दिन ही नहीं पूरे सावन मास भर जल चढ़ाने की प्रथा अधिकाधिक लोकप्रिय हो गयी है। बहुत से श्रद्धालु अभिषेक का जल कंधों पर रखकर पदयात्रा करते हुए जाते है, जिन्हें 'कावरिया' कहते है। श्रावण मास में पार्थिव–पूजन का भी महत्व बताया

गया है। पार्थिव शुद्ध मृत्तिका से बने शिवलिंग को कहते है। जिसका विधि पूर्वक पूजन करके उसी दिन विसर्जित कर दिया जाता है।

स्म्पूर्ण भारत में शिवोपासना के बारह प्रमुख स्थान है द्वादश ज्योर्तिलिंग कहा जाता है (१)काशी विश्वनाथ (२) परली वैद्यनाथ (३) केदार नाथ (४) रामेश्वरम (५) ओंकारेश्वर (६) सोमनाथ (७) नागेश्वर (८) महाकलेश्वर (६) भयम्वकेश्वर (१०) भीमा शंकर (११) घृष्णेश्वर (१२) श्री शैल मल्लिकार्जुन ज्योर्तिलिंग का तात्पर्य है स्वप्रकट लिग से है। इसके अतिरिक्त नेपाल में काठमाण्डू के पशुपति नाथ का भी उतना ही महत्त्व है। इन सभी स्थानों पर शिव रात्रि पर अधिक से अधिक दर्शन और जलाभिषेक करने का प्रयास करते है। इन स्थानों के अतिरिक्त भी अनेकानेक शिवमन्दिरों में विशेषकर इस पर्व पर जनमानस की आस्था जुडी रहती है।

होलिकोत्सव

'होलिका' आनन्द एव उल्लास का एक ऐसा पर्व है जो सम्पूर्ण भारत में मनाया जाता है। यह उत्सव बहुत ही प्राचीन है। इसका आरम्भिक शब्द–रूप 'होलाक' था।[1] भारत–वर्ष के पूर्वी भागों में यह शब्द आज भी प्रचलित है। जैमिनि एवं शबर का कथन है कि "होलाक" सभी आर्यो द्वारा सम्पादित होना चाहिए। काठक गृह्मसूत्र में एक सूत्र है 'राका होलाके' जिसकी व्याख्या टीकाकार देवपाल ने इस प्रकार की है–'होला एक कर्म–विशेष है जो स्त्रियो के सौभाग्य के लिए सम्पादित किया जाता है। उस कृत्य में राका (पूर्ण–चन्द्र) देवता है।[2] अन्य टीकाकारों ने इसकी व्याख्या निम्न रूपों में की है। होलाक उन बीस क्रीडाओं मे से एक हैं जो सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है। फाल्गुन की पूर्णिमा पर लोग एक दूसरे पर रंगीन जल छोड़ते हैं और सुगन्धित चूर्ण बिखेरते हैं। 'हेमाद्रि[3] ने बृहद्यम का एक श्लोक उद्धत किया है जिसमें होलिका–पूर्णिमा को 'हुताशिनी कहा गया है। लिंग पुराण में आया है कि फाल्गुन पूर्णिमा को 'फाल्गुनिका' कहा जाता है, यह बाल क्रीड़ाओं से पूर्ण है और लोगों को ऐश्वर्य देने वाली है। वराह पुराण के अनुसार यह पटवास–विलासिनी है। 'पटवास' का अर्थ है कपड़ों को सुगन्धित करने वाला चूर्ण जिसे 'बुक्का' कहते है जो अबीर के साथ होली के दिनों मे छिड़का जाता है।

होली के दिन जिस होलिका का दहन किया जाता है, उसका आरम्भ वसन्त पंचमी की रात्रि में ही कर दिया जाता है। उसमें लकड़ी और घासफूस

---

[1] जैमिनि पृष्ठ १, ३, १५–१६।
[2] काठक गृह्मसूत्र पृष्ठ ७३, १।
[3] हेमाद्रिकालखण्ड पृष्ठ १०६।

के ढेर लगाकर होली की पहले वाली रात्रि को मंत्रो के साथ हवन किया जाता है। मन्त्रो में कहा जाता है कि बालकों की रक्षा के निमित्त मैं तुम्हारी (अग्नि की) पूजा करता हूँ। इसके पश्चात् उस लकड़ी एवं घास फूस के ढेर में आग लगा कर प्रदक्षिणा की जाती है। होलिका–दहन के बाद होली दूसरे दिन प्रातः शरीर पर धारण करनी चाहिए। होली के दिन यदि प्रदोष– व्यापिनी पूर्णिमा होती है और भद्रा रहती है तो होली–दहन निषिद्ध माना जाता है। क्योंकि इससे राष्ट्र में विप्लव होता है। उस नगर अथवा गाँव में आगामी वर्ष भर शान्ति नहीं रहती। इस कारण 'भद्रा युक्त' होली का त्याग करना चाहिए ऐसा पुराणों का मत है। कृष्ण–पक्ष की तृतीया एवं दशमी के दूसरे आधे भाग मे तथा सप्तमी और चतुर्थी के पहले आधे भाग में भद्रा नक्षत्र होती है। दिन में कभी होली प्रज्वलित नहीं करनी चाहिए। यदि पहले दिन प्रदोष के समय भद्रा से और दूसरे दिन सूर्यास्त से पहले पूर्णिमा समाप्त होती है तो भद्रा की समाप्ति की प्रतीक्षा करके सूर्योदय से पूर्व होलिका का दहन करना चाहिए।

दूसरे दिन चैत्र की प्रतिपदा पर लोगों को होलिका भस्म को प्रणाम करना चाहिए, मन्त्रोच्चारण करना चाहिए। घर के प्रांगण में वर्गाकार स्थल के मध्य में काम–पूजा करनी चाहिए। काम–प्रतिमा पर सुन्दर नारी द्वारा चन्दन लेप लगाया जाना चाहिए और पूजा करने वाले को चन्दन–लेप से मिश्रित आम्रबौर खाना चाहिए। इसके उपरान्त यथाशक्ति, ब्राह्मणों, भाटों को दान देना चाहिए। और 'काम–देवता' मुझ पर प्रसन्न हों ऐसा कहना चाहिए।[*] पुराणों के अनुसार जब शुक्ल पक्ष पन्द्रहवीं तिथि पर पतझड़ समाप्त हो जाता है और वसन्त ऋतु का आगमन होता है, तो जो व्यक्ति चन्दन–लेप के साथ आम्र मंजरी खाता है वह आनन्द से रहता है।'

---

[*] काणे पी०वी० धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ४ पृष्ठ ६०।

यह एक राग–रग का त्यौहार है और सामान्य जनता से लेकर राजमहलों तक इसका समान 'रंग' देखा जा सकता है। होलिकोत्सव मे सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमें समाज के सभी वर्गो का समान मनोरंजन होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, बालक, वृद्ध, स्त्री नवयुवक सबको यह पर्याप्त मनोरंजन और उत्साह प्रदान करता है। इस त्यौहार मे वर्णाश्रम धर्म–की किसी मर्यादा की कट्टरता नही रह जाती। कतिपय प्रदेशों में यह रंग–युक्त वातावरण एक ही दिन होता है, किन्तु अनेक स्थानों पर इसका प्रभाव कई दिनों तक रहता है। इस उत्सव के सम्पन्न होने पर जो कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं, उसका वर्णन रत्नावली[५] में इस प्रकार किया गया है। यथा घरायन्त्र से निकला हुआ पानी चारों ओर फैल रहा है। स्त्रियों के कपोलों से इतनी मात्रा में रंग गिरता है कि पेड भी रंगीन हो जाता है। इस कारण उनके पैरों में लगा हुआ कीचड भी उनको और अधिक रंगीन बना देता है।

शीत–ऋतु के समाप्त होने के बाद वसन्त ऋतु का आगमन होता है। इस अवसर पर नवीन धान,गेहूँ, जौ पककर तैयार हो जाते है। उसके दाता जगत के आधार भगवान को अर्पण करने के लिए दहकती हुई अग्नि को ईश्वर का रूप मानकर मन्त्रोच्चारण करते हुए बालियों की आहुति देकर शेष धान्य को घर में लाकर प्रतिष्ठापित किया जाता है। सम्भवतः इसी कारण होलिकादहन का त्यौहार प्रचलन में आया। अग्नि पूजन के विषय में यह भावना निहित है कि अग्नि सर्वव्यापी पदार्थ है। यह पंचमहाभूतो के शरीर में व्याप्त है। फाल्गुन मास की पूर्णिमा को राक्षसी प्रवृत्तियों एवं कुरीतियों से बचने के लिए जब अग्नि में उल्लास–पूर्ण अभिव्यक्तियों के साथ वैदिक मन्त्रों और धार्मिक अनुष्ठानों का

---

[५] रत्नावली पृष्ठ १, ८–६।

समावेश किया गया तब अग्नि पूजन की यह परम्परा होलिका–दहन की संज्ञा से विख्यात हुई।[६]

भविष्यपुराण[७] में होलिका के सदर्भ में एक आख्यानात्मक वर्णन प्राप्त होता है– युधिष्ठिर ने कृष्ण से पूछा कि फाल्गुन–पूर्णिमा को प्रत्येक गॉव एवं नगर में एक ही उत्सव क्यों होता है? घर के बच्चे क्यों क्रीडामय हो जाते है? और होलाक क्यों जलाते हैं? उसमें किस देवता की पूजा होती है? किसने इस पूजा के उत्सव का प्रचार किया? इसमें क्या होता है? और'अडाडा' क्यों कही जाती है? कृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा राजा रघु के विषय में किंवदन्ती है कि राजा रघु के पास लोग यह कहने के लिए गये कि 'ढुण्ढा' नामक राक्षसी बच्चों को दिन रात डराती रहती है। राजा द्वारा पूछे जाने पर उनके पुरोहित ने कहा कि वह मालिन की पुत्री है। एक राक्षसी है। जिसे शिव ने वरदान दिया है कि उसे देव मानव आदि नहीं मार सकते। न ही वह अस्त्र, शस्त्र जाडा, गर्मी या वर्षा से ही मर सकती है,। किन्तु शिव ने इतना कह दिया कि वह क्रीड़ायुक्त बच्चों से भय खा सकती है। पुरोहित ने यह भी बताया कि फाल्गुन की पूर्णिमा को जाड़े की ऋतु समाप्त होती है और ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है। तब लोग हँसें और आनन्द मनाये। बच्चे लकड़ी के टुकड़े लेकर बाहर प्रसन्नता पूर्वक निकल पड़ें। लकड़ियाँ एवं घास एकत्र करें। रक्षोध्न मन्त्रों के साथ उसमें आग लगाएँ। तालियाँ बजायें। अग्नि को तीन बार प्रदक्षिणा करें। हँसें और प्रचलित भाषा में भद्दे एवं अश्लील गाने गायें। इसी शोरगुल एवं अट्टहा्स से तथा होम से वह राक्षसी मरेगी। जब राजा ने यह सब किया तो वह राक्षसी मर गयी और वह दिन 'अडाडा' या होलिका कहा गया।[८]

---

[६] शर्मा एस०सी० भारत के त्योहार पृष्ठ १६१।

[७] भविष्यपुराण पृष्ठ १३२, १, ५१।

[८] काणे पी०वी० धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ४ पृष्ठ ६०।

पी०के० थामस[१] ने होलिकोच्त्सव के पीछे एक अन्य कथा का वर्णन किया है उनके अनुसार। पूतना राक्षासी मथुरा–नरेश कस की सेविका थी। कंस को आकाश वाणी हुई थी कि उसकी बहन देवकी के आठवें पुत्र (कृष्ण) द्वारा उनकी मृत्यु होगी। अतः कृष्ण का वध करने के निमित्त उसने पूतना को मथुरा यह आज्ञा देकर भेजा कि वहाँ के समस्त नवजात शिशुओं को मार डाले। चूँकि कृष्ण का पालन पोषण नन्द एवं उनकी पत्नी यशोदा द्वारा गोकुल में हो रहा था। पूतना ने वहाँ पहुँचकर सभी बालकों का वध करना चाहा। परन्तु कृष्ण द्वारा उसका ही अन्त हो गया। इसी प्रसन्नता मे नागरिको ने आनन्दोत्सव मनाया, जिसने कालान्तर में होलिका जैसे पर्व का रूप धारण किया। एक अन्य साहित्यिक परम्परा के अनुसार पूतना को जाड़े का प्रतीक मानते हैं। पूतना के वध का प्रतीकात्मक अर्थ है जाड़े का अन्त एवं हर्षोल्लास से भरा बसन्त ऋतु का आगमन।

ब्रह्मपुराण में होलिका आयोजन को लेकर एक आख्यानात्मक कथा का वर्णन है इस कथा का सारांश यह है कि। होलिका हिरण्यकश्यप की बहन थी। हिरण्यकश्यप ने भगवान शिव की घोर तपस्या करके यह वरदान प्राप्त किया कि मैं जमीन में मरूँ न आकाश में, न तो सायं काल और नहीं दिन में, न मनुष्य द्वारा मारा जा सकूँ, न पशु द्वारा। इस प्रकार का वरदान प्राप्त कर वह अपने को भगवान विष्णु से भी महान समझने लगा। लोग उसके आतंक से त्रस्त हो उठे। उसने राज्य में यह घोषणा करा दी कि कोई भी विष्णु का नाम न ले। भगवान कहीं नहीं हैं; भगवान मैं ही हूँ। किन्तु उसका एक पुत्र प्रह्लाद विष्णु का भक्त बना रहा। बालक प्रह्लाद के हृद्य में विष्णु भक्ति का ऐसा गाढ़ा रंग जम गया था, जो किसी भी उपाय से दूर नहीं हो सकता था। पुत्र राक्षस को

---

[१] थामस पी०के० फेस्टिवल एण्ड हॉलीडे आफ इण्डिया पृष्ठ ७।

भी प्यारा होता है, किन्तु जब पुत्र से ही अपने प्राणों पर संकट उपस्थित होता दिखाई दे तो भला कौन न विचलित हो जाए। नादान हिरण्यकश्यप ने प्रहलाद का जीवन ही समाप्त करने की आज्ञा दे दी किन्तु उसे सफलता नही मिली। हिरण्यकश्यप ने उसके वध के अनेक उपाय किये किन्तु भगवान विष्णु की कृपा से वे सभी असफल रहे। अन्त में निराश होकर उसने अपनी बहन होलिका को उसे जीवित जला देने की आज्ञा दी। क्योंकि होलिका को इश्वरीय वरदान था कि वह अग्नि से जल नही सकती। होलिका ने अपने भाई की आज्ञा शिरोधार्य की। वह प्रह्लाद को अपनी भुजाओं में कसकर अग्नि में बैठ गयी। उसके ऊपर काष्ठ के मोटे–मोटे टुकड़े डाल दिये गये और फिर आग लगा दी गयी। किन्तु प्रह्लाद का बाल भी बॉका न हुआ, उल्टे होलिका ही जल मरी। वह अग्नि की ज्वाला में जलते हुए अपने को बचाने के लिए चिल्लाने लगी, किन्तु दैत्यो ने उसे अनसुनी कर दिया क्योंकि वह अग्नि की भयंकर लपटों में अनेक वार घुसकर भी अक्षत रह चुकी थी। प्रह्लाद आग बुझ जाने पर दहकते हुए सुवर्ण की भॉति अतिशय देदीप्यमान होकर 'हरि–हरि' का उच्चारण करते हुए बाहर निकल आया। इसके पश्चात् हिरण्यकश्यप के वध के लिए विष्णु को नरसिंह का रूप धारण करना पड़ा, किन्तु क्रूर होलिका ने जो दुष्कर्म किया था उसका उसे फल भोगना पड़ा। उसकी स्मृति में प्रतिवर्ष होलिका के पुतले का दहन किया जाता है।

होलिका के सम्बन्ध में एक अन्य कथा 'काम–दहन' की है। उसके अनुसार दैत्यों से पीड़ित देवताओं ने तारकासुर के वध हेतु कुमार की उत्पत्ति के लिये शिव की तपस्या भंग करने के निमित्त कामदेव को भेजा और बसन्त ऋतु का सृजन किया। कामदेव का धनुष गन्ने का और उसके बाण फूलों के हैं। बसन्त ऋतु में ये और भी प्रचण्ड हो उठते हैं। कामदेव ने शिव की तपस्या

भंग करने के लिए जैसे ही अपना बाण छोडना चाहा शंकर ने अपने तीसरे नेत्र से निकली अग्नि से कामदेव को भस्मीभूत कर दिया। पुराणों में शिव द्वारा कामदेव को भस्म करना तथा उसी तिथि में उनके पुनर्जन्म की रोचक कथा का वर्णन प्राप्त होता है। इसी कथा को आधार मानकर इस पर्व का आयोजन होता है।[10] भारत वर्ष के कतिपय प्रान्तो में विशेषकर दक्षिण भारत में होलिका आयोजन के कारणों में कामदहन को मुख्य कारण मानते हैं। दक्षिण भारत में इस पर्व के पश्चात् होलिकोत्सव का आयोजन होता है।

ऐसी भी अवधारणा है कि चैत्रशुक्ल प्रतिपदा वर्ष के तीन महत्वपूर्ण तिथियों में से एक है। एक अन्य परम्परा के अनुसार होलिका संवत् की बहन थी। भाई की मृत्यु के पश्चात् उसके असीम प्रेम ने उसे भी मरने के लिए प्रेरित किया। उसका प्रेम जीत गया और भाई जीवित हो गया। उसी दिन की स्मृति में इस पर्व का आयोजन होता है।[11]

जेमिनि कृत मीमांसा सूत्रों एवं काठक गृह्मसूत्र में वर्णित होने के कारण होलिकोत्सव ईसा की कई शताब्दियो पूर्व से ही प्रचलित उत्सव माना गया है। काम सूत्र एवं भविष्यपुराण इसे बसन्त से संयुक्त करते हैं, अतः यह उत्सव पूर्णिमान्त गणना के अनुसार वर्ष के अन्त में होता था। अत; होलिका हेमन्त या पतझड़ के अन्त का सूचक है और बसन्त की काम लीलाओं की द्योतक है। इस अवसर पर लोग बाँस या धातु की पिचकारी से रंगीन जल छिड़कते है। कतिपय प्रदेशों में मस्तीभरे गाने, नृत्य एवं संगीत बसन्तागमन के उल्लासपूर्ण क्षणों के परिचायक है'। कुछ प्रदेशों में इस उत्सव के आयोजन की विधि भिन्न है। दक्षिण भारत के कुछ प्रदेशों में फाल्गुन शुक्ल नवमी को लोग इस पर्व का

---

[10] कालिका पुराण पृष्ठ १–३०।

[11] थामस पी०के० फेस्टिवल एण्ड हौंलीडे आफ इण्डिया पृष्ठ ७।

आयोजन करते हैं और होलिका के पॉचवे दिन रंग पंचमी मनायी जाती है। जब विभिन्न प्रान्तों मे होलिका का उत्सव मनाया जाता है तब बंगाल में ढोलयात्रा का उत्सव मनाया जाता है। यह उत्सव पॉच या तीन दिनों तक चलता है। पूर्णिमा के पूर्व चतुर्दशी की सन्ध्या के समय मण्डप के पूर्व मे अग्नि के सम्मान में एक उत्सव होता है। गोविन्द की प्रतिमा का निर्माण होता है। एक वेदिका पर सोलह खम्भों से युक्त मण्डप में प्रतिमा रखी जाती है। इसे पंचामृत से नहलाया जाता है और कई प्रकार के कृत्य किये जाते है। प्रतिमा को इधर–उधर डोलाया जाता है। शूल–पाणि ने इसकी तिथि–नक्षत्र–प्रहर आदि का विवेचन कर के निष्कर्ष निकाला है कि ढोलयात्रा पूर्णिमा तिथि की उपस्थिति में होनी चाहिए, चाहे उस समय उत्तरा–फाल्गुनी नक्षत्र हो या न हो। यह उत्सव भारत के अधिकांश स्थानों में नही दिखाई देता। राजवंशों में होलिका–दहन के पश्चात् पन्द्रह दिनों तक इस पर्व को मनाते हैं। इस समय विभिन्न प्रकार के उत्सव आयोजित होते हैं, जिसमें संगीत, नृत्य एवं रंगोत्सव आदि का आयोजन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कहीं–कहीं रंगों के खेल पहले से प्रारम्भ कर दिये जाते है और बहुत दिनों तक चलते रहते है किन्तु मूल रूप से है यह बसन्तोत्सव ही। कहीं–कहीं होली के एक दिन उपरान्त लोग एक दूसरे के ऊपर कीचड़ फेंकते है[१२]। कही–कही दो तीन दिनों तक मिट्टी, पंक, रंग, गान आदि से लोग मतवाले होकर हुड़दंग मचाते हैं। सडकें लाल हो जाती हैं। वास्तव में यह उत्सव प्रेम करने से सम्बन्धित है। उड़ीसा में बंगाल के समान ही ढोलोत्सव पर्व का आयोजन होता है। राजस्थान, उत्तरी भारत, मध्य प्रदेश आदि स्थानों के सभी वर्गों के लोग उक्त पर्व पर मंगलोत्सव का आनन्द लेते हैं। यह हमारे सामाजिक त्यौहारों में सर्वश्रेष्ठ तथा सर्वप्रसिद्ध है। दक्षिण भारत में इस पर्व को काम दहन का स्मारक मानते है। यह पर्व उत्तरी भारत के समान दक्षिण भारत

---

[१२] वर्ष कृत्य दीपक पृष्ठ ३०१।

प्रचलन में नहीं है। प्रचलित परम्परा के अनुसार शिव के तृतीय नेत्र से जो अग्नि निकली उससे कामदेव वही जल कर भस्मीभूत हो गयी। इस कथा को आधार मानकर ही सम्भवतः शिवमन्दिरो के समक्ष अग्नि प्रज्वलित की जाती है। उत्तरी भारत के अनेक स्थानों में फाल्गुन का सम्पूर्ण मास इस पर्व के आयोजन मे व्यतीत हो जाता है। फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन नागरिक लकड़ी एवं घास–फूस एक स्थान पर इकट्ठा करते है। रात्रि के समय विधिपूर्वक पूजा एवं परिक्रमा आदि समस्त धार्मिक कृत्यों के करने के बाद अग्नि को प्रज्वलित करता है। पूजा के इस अग्नि मे कतिपय गेहूँ की बालियो को डालते हैं। इसका कारण सम्भवतः यह है कि इस अवसर पर नये अनाज पक कर तैयार हो जाते है अतः उनको उपयोग में लाने के निमित्त अग्नि को भगवान् स्वरूप मानकर इस अग्नि में अनाज की आहुति दी जाती है। होलिका–दहन के ठीक दूसरे दिन प्रातःकाल होलिका रंग युक्त वातावरण चारों दिशाओं में फैला हुआ दिखाई पड़ता है। नागरिक इस अवसर पर गोष्ठी परिहास,नृत्य,संगीत का आयोजन एवं अबीर–गुलाल का आदान–प्रदान कर इस पर्व का आनन्द लेते है। बालको को विभिन्न देवी–देवताओं के रूपो में सजा कर वाद्य से ध्वनि करते हुए प्रधान मार्गो से निकाला जाता है। इसे देखने के लिए लोगों में बड़ी उत्सुकता रहती है। सायं काल लोग पारस्परिक द्वेष को त्याग कर एक दूसरे से मिलते हैं एवं इष्ट मित्रों के घरों में जाकर उन्हें शुभ कामनाएँ देते हैं। इस अवसर पर सम्पूर्ण वातावरण हर्षोल्लास से परिपूर्ण होता है।[13]

वस्तुतः होली 'नवान्नेष्टि' यज्ञ का परवर्ती संस्करण है। व्रत करने वाले को उसमें भाग लेना चाहिए। जिस प्रकार यज्ञ कर्मो से हमारी विचार–धारा संतुष्ट होती है, उसी तरह बालकों के हिलमिलकर खेलकूद का आनन्द लेने से

---

[13] ओमन जे०सी० व्राह्नाण थीस्ट ऐण्ड मुस्लिम आफ इण्डिया पृष्ठ २४१–२५१।

उनके स्वास्थ्य की पुष्टि होती है। यह एक आवश्यक सामजिक कर्तव्य है; जिसके बिना हमारा राष्ट्रीय जीवन हरा भरा नही रह सकेगा। एक दूसरी दृष्टि से पतझड की पत्तियों और वृक्षो की सूखी डालियों को जमा करके उनका अन्तिम संस्कार कर देने का यह महापर्व है। जिस तरह शीत ऋतु में गर्म कपड़े के स्थान पर हल्के एवं महीन परिधान से मानव शरीर परिष्कृत होता है उसी प्रकार कठोर और दबाकर रखने वाली भावनाओं को अलग करके नवीनता और कोमलता को धारण करने का संकेत पृथ्वी की ओर से हमें मिलता है। इस अवसर पर नवीन धान पक कर तैयार हो जाता है। आग की इस दहकती हुई अग्नि की पूजा करने के उपरान्त मन्त्रोच्चारण करते हुए नई बालियों की आहुति देकर शेष धान्य को घर लाया जाता है। यही होलिका–दहन का त्यौहार है।

भारत वर्ष मे चार वर्णो के लिए चार प्रकार के पर्व प्रचलित थे। ब्रह्मणों के लिए श्रावणी (रक्षाबन्धन) क्षत्रियों के लिए विजयादशमी, वैश्यो के लिए दीपोत्सव तथा शूद्रों के लिए होली। परन्तु सभी पर्वो में सभी वर्णो के लोग प्राचीन काल से ही सहयोग लेते–देते आ रहे है।* वर्णकृत्यदीपक में वर्णन मिलता है कि उत्सव सम्पन्न करने के पश्चात् सिन्दूर और कुमकुम युक्त ललाट भी धूल–धूसरित हो जाते हैं तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णो के लोग इस पर्व में एक जैसे दिखाई पड़ते हैं। यह हिन्दुओं के चातुर्वर्ण्ये विभाजन–प्रणाली में सगठन तथा एकता का अनुपम प्रतीक है। आज होली का त्यौहार समस्त देश में किसी न किसी रूप में मनाया जाता है।

यह महोत्सव लोकमानस में न केवल एक त्यौहार के रूप में मान्य था अपितु यह एक ऐसे अवसर का प्रतिफलन करता हैं जिसका आगमन समस्त

---

* काणे पी०वी० धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ४ पृष्ठ ८९–९१।

प्राणियो के लिए नवचेतना एवं नव जीवन का प्रतीक बन चुका है।[१५] इस पर्व में रंगो आदि का प्रयोग भी पारस्परिक सद्भावना की पराकष्ठा का प्रतीक है। होलिका के शब्द मे यह वर्णन प्राप्य है कि रगो आदि के प्रयोग से चारो ही वर्ण समान दृष्टि गोचर होते है जो कि समाज की एकात्मकता एव भाई चारे की भावना का घोतक है।[१६]

फाल्गुन महीने की पूर्णिमा को आयोजित होने के कारण इसे फाल्गुनिका नाम से भी अभिहित किया गया है। इसमें मदन अर्थात् कामदेव की पूजा का विधान होने के कारण इसे मदन–महोत्सव या काम–महोत्सव भी कहा गया है। राक्षसी प्रवृत्तियों एवं कुरीतियों से बचने के लिए उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति के साथ जब इसमें वैदिक पूजा और धार्मिक अनुष्ठान सम्मिलित किया गया है तब यह होलिका के रूप में विश्रुत हुआ है। आसुरी प्रवृत्तियों का दमन तथा आदर्श मानव मूल्यों का विकास इस त्यौहार का मूलाधार है। इस पर्व में रंगो का प्रयोग, प्रेम की जीवन्तता की ओर संकेत करता है।

---

[१५] कालिका–पुराण ४ पृष्ठ ४३–४४।

[१६] शर्मा एस०सी० भारत के त्योहार पृष्ठ १६०।

राम नवमी

रामनवमी शिवरात्रि के लगभग एक मास पश्चात् मनाया जाने वाला लोकप्रिय पर्व है, जिसका प्रारम्भ मध्य कालीन साहित्य में अधिक परिलक्षित होता है। रामोपासना, शिवोपासना के समान भारतीय संस्कृति मे प्राचीन काल में प्राप्त नही है। शिव का पशुपति के रूप में प्रमाण हमें सैन्धव काल से ही प्राप्त होने लगता है। क्रमशः विष्णु के स्वरूप का भी प्रसंग आता है। जब भारतीय धर्म और दर्शन में अवतार की अवधारणा को स्थान मिला, तब उसके साथ ही साथ विष्णु के दशावतार की अवधारणा के अन्तर्गत राम और कृष्ण का महत्व बढ़ा। यहॉ पर राम से सम्बन्धित व्रत, पर्व विषयक प्रसंगों को श्रृंखला बद्ध करने का प्रयास किया गया है।

वसन्त ऋतु में पड़ने वाला पर्व रामनवमी चैत्रमास के शुक्लपक्ष की नवमी को मनाया जाता है। इसी दिन पुनर्वसु नक्षत्र तथा कर्क लग्न में कौशल्या के पुत्र रूप में भगवान विष्णु प्रकट हुए और राम के नाम से प्रतिष्ठित हुए। इसीलिए इस नवमी को राम नवमी की संज्ञा दी गयी है। इसे वासन्तीय नवरात्र और चैत्रमासीय नवरात्र भी कहते हैं। यह पर्व भी व्रत और उपवास से जुड़ा हुआ है। इसलिए इस दिन व्रत करने का अनन्त फल बताया गया है।

'अगस्त्य' संहिता[1] के अनुसार राम का जन्म चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को मध्याह्न में हुआ था। उस समय पुनर्वसु नक्षत्र में चन्द्र था। चन्द्र और वृहस्पति दोनों समन्वित थे। पॉंच ग्रह अपनी उच्च अवस्था में थे। लग्न कर्क था और सूर्य मेष राशि में था। माधव के कालनिर्णय[2] में आया है कि–'जब

---

[1] अगस्त्य–संहिता हेमाद्रि व्रत भाग–१ पृष्ठ १४१

[2] काल–निर्णय पृष्ठ २२६–२३०

रामनवमी दो तिथियों में हो, तो यदि वह पहली तिथि के मध्याह्न मे पडती हो तो व्रत उसी दिन होना चाहिए। किन्तु नवमी दोनो दिनों के मध्याह्न में पड़ती हो, या जब किसी भी दिन मध्याह्न को नवमी न हो तो दशमी से युक्त नवमी में व्रत होना चाहिए, न कि अष्टमी से युक्त नवमी में। यदि नवमी पुनर्वसु से संयुक्त हो तो वह तिथि अत्यन्त पुनीत ठहरती है। यदि अष्टमी, नवमी एवं पुनर्वसु एक साथ हों, तब भी नवमी दूसरे दिन ही होनी चाहिए।

कतिपय लेखको के अनुसार यह केवल राम भक्तों के लिए नित्य (अपरिहार्य) है और अन्य लोगों के लिए जो विशिष्ट फल चाहते हैं, काम्य है। अगस्त्य संहिता १ में आया है कि–'यह सबके लिए है, यह सांसारिक आनन्द एवं मुक्ति के लिए है। वह व्यक्ति जो अशुद्ध है, पापिष्ट है, इस सर्वोत्तम व्रत को करके सबसे सम्मान पाता है। जो व्यक्ति राम नवमी के दिन भोजन करता है, वह कुम्भीपाक में घोर कष्ट पाता है। जो व्यक्ति एक भी रामनवमी व्रत कर लेता है, उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं और उसके पाप कट जाते हैं।[3] उस दिन उपवास करना चाहिए, राम की पूजा करनी चाहिए और रात्रि भर पृथ्वी पर बैठ कर जागरण करना चाहिए।

हेमादि[4], तिथितत्व[5], व्रतराज[6], व्रतार्क[7] में राम नवमी व्रत की विधि का वर्णन विस्तार पूर्वक इस प्रकार किया गया है। चैत्र मास शुक्ल पक्ष की अष्टमी के दिन व्रत करने वाले को स्नान करना चाहिए। एक ऐसे ब्राह्मण को आमन्त्रित कर सम्मानित करना चाहिए जो वेदज्ञ हो, शास्त्रज्ञ हो, राम की पूजा में भक्ति रखता हो, और राम–भक्तों की पूजा–विधि जानता हो। उससे प्रार्थना करनी

---

[3] अगस्त्य–संहिता, हेमाद्रि–व्रत भाग–१,१४१–१

[4] हेमाद्रि–व्रत भाग–१,१४१–१४६

[5] तिथितत्व पृष्ठ ५६–६२

[6] व्रतराज पृष्ठ ३१६–२६

[7] व्रतार्क १७२–१८२

चाहिए कि 'मै राम की प्रतिमा का दान करना चाहता हूँ। इसके उपरान्त शरीर में लगाने के लिए तेल देना चाहिए, उसे सात्विक भोजन देना चाहिए और स्वय भी वही खाना चाहिए तथा सदा राम का ध्यान करना चाहिए। उस दिन रात्रि में उसे एवं आचार्य को बिना भोजन किये रहना चाहिए। दिन भर राम कथाएँ सुननी चाहिए और स्वयं अपने को तथा आचार्य को पृथ्वी पर ही सुलाना चाहिए।

दूसरे दिन प्रातः काल उठकर, स्नान और सन्ध्या–वन्दना करना चाहिए चारो द्वारों वाले ध्वजा–संयुक्त मण्डप का निर्माण करना चाहिए; और तोरण, ध्वजा एवं पुष्पों से उसे अलंकृत करना चाहिए। पूर्वद्वार पर शंख, चक्र एव गरूड़, दक्षिण में धनुष एवं बाण, पश्चिम में गदा, तलवार एवं केयूर, तथा उत्तर में कमल, स्वस्तिक चिन्ह एवं नीले रत्न रखने चाहिए। मण्डप में चार अंगुल ऊँची वेदिका बनानी चाहिए, और मण्डप में पवित्र गीतों एवं नृत्यों का आयोजन करना चाहिए। उसे ब्राह्मणों से आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिए और संकल्प करना चाहिए कि "मैं राम–नवमी के दिन पूर्ण उपवास करूँगा और राम–पूजा में संलग्न होकर राम की स्वर्ण–प्रतिमा बना कर राम को प्रसन्न करने के लिए उसका दान करूँगा।" उसके उपरान्त वह कहे– "मेरे गम्भीर पापों को राम दूर करें।" राम की मूर्ति को आधार पर रखना चाहिए। इस मूर्ति के दो हाथ होने चाहिए। जानकी की मूर्ति राम–मूर्ति की दाहिनी जाँघ पर होनी चाहिए। राम की मूर्ति को प्रतिष्ठापित करके, उसे स्नान कराकर, विभिन्न प्रकार के धार्मिक कृत्य करने चाहिए। तत्पश्चात् मूलमन्त्र के साथ वेदिका में होम करना चाहिए और पुनः साधारण अग्नि में घृत और पायस की १०८ आहुतियाँ देनी चाहिए। आचार्य को दक्षिणा तथा अन्य ब्राह्मणों को सोना, गाय, वस्त्रों का जोड़ा तथा अन्न देना चाहिए और ब्राह्मणों के साथ भोजन करना चाहिए। राम–नवमी को राम–नाम

लिखने का भी बडा माहात्म्य बतलाया गया है। राम चन्द्र की धातु की प्रतिमा का दान भी महान पुण्यदायक कहा गया है।

पुराणों की मान्यता है कि जब कभी धरती पर पाप और पाखण्ड की वृद्धि हो जाती है, और धर्म की महिमा घट जाती है, पापियों का अभ्युदय होता है और पुण्यात्मा लोग कष्ट उठाने लगते है, तो धरती पर परमात्मा का अवतार होता है। श्री राम–चन्द्र जी का अवतार दशानन रावण तथा उसकी दुर्दान्त निशाचरी सेना से संत्रस्त धरती का उद्धार करने के लिए हुआ था। राजा दशरथ के चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न थे। रामचन्द्र जी जब बालक थे, तभी से उन्होंने पापियों के निर्दलन का कार्य आरम्भ कर दिया था। राक्षसों से विश्वामित्र आदि मुनियों की यज्ञ–रक्षा के लिए उन्होंने लक्ष्मण जी के साथ ऐसा रण–कौशल दिखाया कि असुर मण्डली को यह आभास हो गया कि उनका अन्त समीप आ गया है।

जनकपुरी में महादेव जी के विशाल धनुष को तोड़कर रामचन्द्र जी ने सर्वप्रथम संसार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और अयोध्या की जनता रामचन्द्र को युवराज पद पर आसीन देखना चाहने लगी। अतः अपने मन्त्रियों के सत्परामर्श से दशरथ ने राम को यौवराज्याभिषेक के मंगलमय समारोह की व्यवस्था करने का आदेश दिया। देवताओं के षड्यन्त्र से भरत की माता रानी कैकेयी की मति उलट गयी। वह कुछ दिनों पूर्व जिस राम को अपने नेत्रों का तारा समझती थी उसी राम को चौदह वर्ष के घोर बनवास के साथ–साथ उनके अपने पुत्र भरत को युवराज बनाने पर अड़ गयी। राजा दशरथ को उनके आगे झुकना पड़ा। रामचन्द्र अपने प्रिय भाई लक्ष्मण तथा प्रिय सीता के साथ चौदह वर्ष के लिए बनवास करने चले गये और उधर राजा दशरथ ने अपना शरीर त्याग दिया। आनन्द–समुद्र में निमग्न अयोध्या श्मशान

सी करूण बन गयी। किन्तु भरत की सुबुद्धि ने उस विपत्ति में पृथ्वी की रक्षा की। अपनी माता के दुराग्रह से प्राप्त राज्य को उन्होंने ठुकरा दिया और अपने उज्ज्वल भातृप्रेम का ऐसा मनोरम परिचय दिया, जिसकी तुलना संसार के इतिहास में नही मिलती। बडे भाई की आज्ञा से उन्होंने चौदह वर्षो तक साम्राज्य की रक्षा तो अवश्य की, किन्तु स्वयं को राम के अनुचर के रूप में ही रखा।

अपने चौदह वर्षो की वनवासावधि में राम ने लोकोत्तर चमत्कारी असुरों के अनेक गिरोहों को ध्वस्त करके भारत–भूमि को निष्कटंक बनाया। पापियो का समूल विनाश करके, उन्होने सदाचरण की प्रतिष्ठा की। इसके अनन्तर सीता जी का अपहरण करने वाले रावण का समूल संहार करके उसके सत्कर्मी अनुज भिभीषण को लंका का राज्य दे दिया। यह सब कार्य रामचन्द्र जी ने अपनी व्यवस्था–बुद्धि एवं रणनीति की चातुरी से इस प्रकार सम्पादित किया कि आज भी उन्हें मर्यादा– पुरूषोत्तम की पावन उपाधि से विभूषित किया जाता है। कहीं उन्होंने भारतीय मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, जिसके कारण हिन्दू जाति को संसार की सभ्य एवं समुन्नत जातियों में ऊँचा स्थान मिला है। अयोध्या लौटकर पुन: रामचन्द्र जी ने भरत से राज्यपद प्राप्त किया और बहुत दिनों तक उन्होंने इस भूमण्डल पर इस प्रकार राज्य किया कि आज भी 'राम–राज्य' की उदात्त व्यवस्था विश्वविश्रुत है।

उनके निष्कण्टक राज्य में कभी भी दु:ख–द्वन्द्ध का नाम नहीं था। चारो वर्णो एवं आश्रमों की मर्यादा सुरक्षित थी। धन–धान्य से सम्पन्न प्रजा सत्कर्मो में लीन थी, उसे न कोई आधिदैविक विपत्ति थी, न आधिभौतिक। सभी लोग स्वस्थ तथा मनस्वी थे। रामनवमी प्रतिवर्ष रामचन्द्र जी के इसी प्रेरक चरित्र का पावन–सन्देश लेकर आती है।

राम–नवमी का पर्व एक राष्ट्रीय पर्व है। यह पर्व हिन्दू–सस्कृति का स्मारक तथा हमारे विस्तृत आदर्शो का परिचायक है तथा हमारी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता को जागृत करने वाला प्रकाश–स्तम्भ है एवं हिन्दू जाति के लिए उत्साह का स्रोत है। यह भ्रातृप्रेम के अलौकिक आदर्श को उपस्थित करने वाले तथा मानव के कर्तव्यों की मर्यादा को स्थापित करने वाले महान पुरूष की जन्म–तिथि है। रामचन्द्र जी की तरह भ्रातृप्रेम, पिता की आज्ञा का पालन, एकपत्नीव्रत, सहचरों के साथ समान भाव एवं विशाल–हृदयता आदि जगत के सास्कृतिक इतिहास में दुर्लभ हैं। उनके द्वारा स्थापित आदर्शो एवं गुणों का चिन्तन–मनन करने से इस पर्व की विशेषताएँ और भी बढ जाती है।[६]

---

[६] उपाध्या गौरी शंकर, व्रत चन्द्रिका पृष्ठ ८, ६

चतुर्थ अध्याय

ग्रीष्म ऋतु के उत्सव

गंगा दशहरा

अक्षय तृतीया

रथयात्रा

गंगा दशहरा

गंगा तीर्थो की जननी है, ब्रह्मा की द्रव मूर्ति है, ज्ञान–विज्ञान की पोषिका है। सहस्त्रों वर्षो से हमारे पूर्वजों के उत्थान एवं उन्नयन में उसका योग रहा है। हमारी सभ्यता की उद्‌गमस्थली तथा पुण्य कर्मों की लीला भूमि है। गगा अनेक दृष्टियों से हमारे लिए महत्वपूर्ण है। यदि हम कहे कि हिन्दू–सभ्यता का उद्‌गम गंगा के पवित्र किनारों पर हुआ, तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। हमारे ऋषि, महर्षियो ने इसी नदी के किनारे ध्यानावस्थित होकर उपनिषदों के गूढ रहस्यों को सोचा था तथा विभिन्न दर्शनों के मर्म का उद्‌घाटन किया था। अतः गगा का सांस्कृतिक महत्त्व बहुत ही अधिक है।

ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष की दशमी को 'दशहरा' नामक व्रत किया जाता है। ब्रह्मपुराण[1] के अनुसार भी ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष की दशमी को 'दशहरा' कहते हैं, क्योकि यह दस पापों को नष्ट करती है। बाराह पुराण में लिखा है कि ज्येष्ठ शुक्ल दशमी मंगलवार हस्तनक्षत्र को गंगा जी स्वर्ग से उतरी, यह दशमी दस पापों को हरती है, इसलिए दशहरा कहलाती है। स्कन्द पुराण में दस योग कहे जाते है– ज्येष्ठमास, शुक्लपक्ष, दशमी, बुध, हस्त, व्यतीपात, गर, आनन्द, कन्या का चन्द्रमा और वृष का सूर्य। इन दस के योग में स्नान करके मनुष्य सब पापों से छूटता है। यहाँ बुधवार और मंगलवार का कथन कल्पभेद से लिया गया है। दशमी वह माननी चाहिए, जिसमें योग बहुत हो, क्योकि योगों की अधिकता में फल अधिक होता है। यदि ज्येष्ठ मलमास में हो तो उसमें दशहरा करना चाहिए। क्योंकि हेमाद्रि में ऋष्यश्रृङ्ग ने कहा है कि चारों युगादिकों और दशहरा

---

[1] ब्रह्मपुराण ६३१६५

मे उत्कर्ष (श्रेष्ठ) का नियम नहीं है। स्कन्दपुराण का कथन है कि बडी नदी में स्नान करके तिल और जल से अर्ध्य देना चाहिए। इससे मनुष्य दस पापो से मुक्त होता है। प्रारम्भिक रूप में यह व्रत दशाश्वमेध पर गंगा स्नान, पूजा एव दान से सम्बन्धित था।

इसी प्रकार सम्पूर्ण तिथियो को शुक्ल पक्ष की दशमी पर्यन्त स्नान करके मनुष्य जन्म–जन्म के पापों से मुक्ति पाता है। दशहरा के दिन काशी के दशाश्वमेधेश्वर लिंग का दर्शन कर दस जन्म के संचित पापों से मुक्त हो जाता है। भविष्योत्तर और काशी खण्ड में वर्णित है कि भक्तिपूर्वक रात्रि में जागरण और उपवास करके, पुष्प, गन्ध, नैवेद्य, दशफल, दीपक और पान से गंगा जी की पूजा, और दस बार गगा में स्नान करना चाहिए, और दस अंजलि भर काले तिल और घी, सत्तू और गुड के दस–दस पिण्ड गंगा–जल में देना चाहिए। फिर गंगा में रमणीक तट पर सोने या चाँदी की मूर्ति स्थापित कर पूजन करना चाहिए। सोना व चाँदी न रहने पर मिट्टी की मूर्ति बनायी जा सकती है। उसके बनाने में भी असमर्थ हो, तो आटा से भूमि पर लिखकर वक्ष्यमाण (जो कहेगे) मंत्र से विशेष पूजा करनी चाहिए। नारायण, शिव, ब्रह्मा, सूर्य, राजा भागीरथ और हिमवान पर्वत की भी गंध, पुष्प आदि से यथाशक्ति पूजा करनी चाहिए। दस ब्राह्मणों को दस–प्रस्थ (१६ मुट्ठी) भर तिल, दस प्रस्थ यव, और दस गौ दान करना चाहिए। मत्स्य, कच्छप, मेढ़क, मगर आदि जल के जीवों को सोने व चाँदी के बनाकर, उनके न मिलने पर आटा का बनाकर, पुष्प आदि से पूजन कर गंगा जी में फेंक देना चाहिए और घी के दीपक को भी बहाना चाहिए। पुष्प आदि से गंगा जी का इस मन्त्र से पूजा करना चाहिए "शिवा, नारायणी, दशहरा, गंगा को नमस्कार"। काशी खण्ड में इसका मन्त्र कहा गया है– 'ऊँ नमः शिवायै नारायण्यै दशहरायै गंगायै स्वाहा' यह बीस अक्षर का मन्त्र

है। इसी से पूजा, दान, तप और होम करने को कहा गया है। गंगा स्तोत्र का पाठ भी दस बार करना चाहिए। भविष्यपुराण में कहा गया है कि इस दशमी को गंगा जल में बैठ कर जो दरिद्र या धनी मनुष्य दस बार इस स्तोत्र को पढता है, वह भी अपनी भक्ति से गंगा की पूजा के फल को प्राप्त करता है।[२]

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में हस्त नक्षत्र युक्त दशमी तिथि की महिमा का वर्णन करते हुए स्कन्द पुराण[३] में कहा गया है कि इस दिन–स्त्री हो या पुरूष–उसे भक्तिभाव से गंगा जी के तट पर रात्रि में जागरण करना चाहिए, और दस प्रकार के दस–दस सुगन्धित फूल, फल, नैवेद्य, दस दीप और दशांग धूप के द्वारा बुद्धिमान पुरूष को श्रद्धा और विधि के साथ गंगा जी की पूजा करना चाहिए। गंगा जी के जल में घृतसहित तिलों की दस अंजलि डाली जाती है। फिर गुड़ और सत्तू के दस पिण्ड बनाकर उन्हें भी गंगा जी में डालनी चाहिए। यह सभी कार्य मन्त्र द्वारा होना चाहिए। इस प्रकार मन्त्रोच्चारण के साथ धूप, दीप आदि समर्पण करते हुए पूजा करके शिव का, विष्णु का, ब्रह्मा का, सूर्य का, हिमवान् पर्वत का और राजा भागीरथ का भलीभाँति पूजन करना चाहिए। दस ब्राह्मणों को आदर पूर्वक दस सेर तिल देना चाहिए। इस प्रकार विधान से पूजा सम्पन्न करके दिन भर उपवास करने वाला पुरूष निम्नांकित दस पापों से मुक्त हो जाता है। बिना दी हुई वस्तु को लेना, निषिद्ध हिंसा, परस्त्री–संगम–ये तीन प्रकार के दैहिक पाप माने गये हैं। कठोर वचन मुँह से निकालना, झूठ बोलना, अपशब्द और, चुग़ली करना– ये वाणी के होने वाले चार प्रकार के पाप हैं। दूसरे के धन को लेने का विचार करना, मन से दूसरों का बुरा सोचना और असत्य वस्तुओं में आग्रह रखना–ये तीन प्रकार के

---

[२] काल निर्णय, पृष्ठ १४१–१४४

[३] स्कन्दपुराण पृष्ठ संख्या–५८३–५८४

मानसिक पाप कहे गये है।[४] पूर्वोक्त प्रकार से दान–पूजा और व्रत करने वाला पुरुष दस जन्मों मे उपार्जित इन दस प्रकार के पापो से निःसन्देह मुक्त हो जाता है।

गंगा–दशहरा के दिन के अतिरिक्त भी गंगा तट पर किये गये कार्यों का अत्यधिक महत्व है। जो व्यक्ति तीनों लोकों में प्रवाहित होने वाली गंगा जी के तटपर जाकर एक बार भी पिण्डदान करता है, वह तिल–मिश्रित–जल के द्वारा अपने पितरों का भव–सागर से उद्धार कर देता है। सम्पूर्ण देवता और पितर गंगा जी में सदा वर्तमान रहते हैं। इसलिए वहॉ उनका आवाहन और विसर्जन नहीं होता। जो गंगा जी के तट पर टूटे फूटे घाटों का संस्कार करते हैं अथवा वहाँ के गिरे–पड़े देव मन्दिरों का जीर्णोद्धार करते हैं, वे उनके लोक में साक्षात् सुख भोगते हैं। गंगा के नाम का कीर्तन करने से पुण्य की वृद्धि और पाप का नाश होता है। दर्शन, स्पर्श, जलपान तथा उसमें स्नान करने से क्रमशः दस गुना फल प्राप्त होता है। ऋषियो द्वारा सेवित, भगवान विष्णु के चरणों से उत्पन्न अतिप्राचीन तथा परमपुण्यमयी धारा से युक्त भगवती गंगा जी को जो लोग मन से स्मरण करते है, वे ब्रह्म–धाम को प्राप्त होते हैं। गंगा संसार के जीवों को पुत्र मान कर सदा उन्हें स्वर्गलोक को पहुँचाती हैं। उत्तम ब्रह्मलोक की इच्छा रखने वाले जितेन्द्रिय पुरूषों को सदा ही गंगाजी की उपासना करनी चाहिए। जैसे ब्रह्म लोक सब लोकों में उत्तम है, उसी प्रकार गंगा समस्त सरिताओं और सरोवरो में श्रेष्ठ है। गंगा के जल में स्नान करने वाले पुरूष का समस्त पातक तत्काल नष्ट हो जाता है और उसे उसी क्षण महान् श्रेय की प्राप्ति हो जाती है।[५]

---

[४] स्कन्द पुराण, कालिका–पुराण, २७/१५२–१५४

[५] स्कन्द पुराण पृष्ठ स०–५८६

पुराणों में गंगावतरण की कथा संक्षेप में इस प्रकार है। अयोध्या के महाराज सगर की दो रानियॉ केशिनी और सुमति थीं। केशिनी को एक पुत्र असमन्जस था जिसके लडके का नाम अंशुमान था। सुमति के साठ हजार लडके थे। ये साठ हज़ार भाई राजा सगर के अश्वमेधीय अश्व को ढूंढने गये थे। इन्द्र ने अश्वमेध के उस घोडे को कपिल मुनि के आश्रम में बाँध दिया था, परन्तु ध्यानावस्थित ऋषि को इस बात की बिल्कुल खबर नहीं थी। सगर के पुत्र जब ऋषि के आश्रम में पहुँचेश तो उन्होंने ध्यानावस्थित महर्षि से घोडे के विषय में पूछा। कोई उत्तर न पाकर वे आश्रम में घोड़े को खोजने लगे। जब उन्होंने देखा कि यज्ञीय घोड़ा इसी आश्रम में बँधा है, तब वे महर्षि पर क्रोधित हुए और उन्हें अनुचित शब्द भी कहा। तपस्या में बाधा उत्पन्न होने पर मुनि ने अपनी आँखें खोली और मुनि के तेज से वे साठों हजार भाई जल कर भस्म हो गये। जब अंशुमान इस समाचार से दुखी होकर कपिल मुनि के आश्रम पर गये तब गरूड़ जी ने कहा कि अंशुमान! तुम्हारे साठ हजार चाचा अपने पापाचरण के कारण कपिल–देव के क्रोध से भस्म हो गये हैं। यदि तुम इनकी मुक्ति चाहते हो, तो स्वर्ग से गंगा को यहाँ लाओ। महाराज के देहावसान के बाद मन्त्रियों ने अंशुमान को राजा बनाया। कुछ दिनों तक राज्य करनें के बाद पुत्र दिलीप को राज्य देकर अंशुमान दारूण तपस्या करने के लिए पर्वत पर चले गये। तपस्या करते हुए वे पंचतत्व को प्राप्त हो गये। दिलीप ने भी गंगा को लाने का प्रयत्न किया किन्तु उसे भी सफलता नहीं मिली। दिलीप का पुत्र भागीरथ बड़ा ही प्रतापी तथा धर्मात्मा राजा था। उसने अपने पितरों को तारने के लिए गंगा को पृथ्वी पर लाने की प्रतिज्ञा की और राज्य छोड़कर तपस्या के लिए निकल पड़ा तथा गोकर्ण–तीर्थ पर तपस्या करने लगे।

इन्द्रियों को जीत कर पंचाग्नि के ताप से तपना, उर्ध्वबाहु रहना और मास में एक बार आहार करना—यही उनका नियम था। इस प्रकार घोर तपस्या करते हुए बहुत वर्ष बीत गये। उनकी भीषण तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा उनके पास गये और कहा राजन्! तुमने घोर तप किया है, अतः वर माँगो। भगीरथ ने कहा—भगवान! मेरे पूर्वजों के उद्धार के लिए गंगा जी को भेजिए। बिना गंगा के उनकी मुक्ति नहीं हो सकती। ब्रह्मा ने कहा—'एवमस्तु'। परन्तु गंगा की वेगवती धारा को धारण करनें की शक्ति शिव के अतिरिक्त किसी अन्य में नहीं है अतः उनको जाकर प्रसन्न करो। राजा भगीरथ शिव की आराधना एक अँगूठे पर खडे होकर करने लगे। अतः तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने यह वरदान दिया कि मैं अवश्य ही गंगा को अपने शीश पर धारण करूँगा। इस प्रकार गंगा स्वर्ग लोक से भूतल पर आयी परन्तु यहाँ आते ही भगवान शिव की जटाओं में विलीन हो गयीं। गंगा के अभिमान को तोड़ने के लिए शिव ने अपने जटाजूट को ऐसा फैलाया कि वर्षो तक खोजने पर भी गंगा को बाहर निकलने का मार्ग नही मिला। तब भगीरथ ने फिर शिव की स्तुति की। शिव ने प्रसन्न होकर गंगा को हिमालय में ब्रह्मा के द्वारा बनाये गये बिन्दुसर नामक तालाब में छोड़ दिया। तब गंगा की धारा इस पृथ्वी पर बहने लगी। राजा भगीरथ दिव्य रथ पर चढ़े आगे—आगे चलते थे और गंगा की धारा पीछे—पीछे। इस प्रकार गंगा के भूतल पर आने से अपूर्व शोभा हुई। गंगा मार्ग के अनेक स्थलों को पवित्र करती हुई उस स्थान पर पहुँचीं जहाँ सगर के साठ हजार लड़के मरे पड़े थे तथा उनके भस्म का ढेर लगा हुआ था। गंगा के जल का स्पर्श करते ही वे सब मुक्ति को प्राप्त हो गये। आज भी गंगा भागीरथ के नाम से प्रसिद्ध हैं और परम तपस्वी राजा भगीरथ के नाम को अजर तथा अमर बनाये हैं।[1]

---

[1] उपाध्याय, गौरी शंकर, व्रत—चन्द्रिका पृष्ठ २४—२६

गंगा प्राणी–मात्र को जीवन–दान ही नही देतीं अपितु गंगा मुक्ति भी देती हैं। गंगा–दशहरा को गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी तथा कावेरी आदि नदियों के किनारे स्थित स्थानों में बड़े समारोह के साथ मनाया जाता है, परन्तु विशेष तौर पर गंगा जी के किनारे स्थित शहरो–हरिद्वार, काशी, प्रयाग आदि में गंगा–दशहरा का उत्सव बड़े धूम–धाम से मनाया जाता है। काशी के गंगापुत्र अर्थात पण्डा लोग बड़ी तैयारी के साथ गंगा–दशहरा मनाते हैं। बडी–बडी नावों को फूल–पत्ती तथा झण्डियाँ लगाकर सजाया जाता है। गंगा–दशहरा के दिन रात के समय नाव में गंगा जी की मूर्ति स्थापित की जाती है और विधि–पूर्वक पूजन करके रात्रि भर जागरण करते हुए हरि कीर्तन करते हैं। जिन स्थानों में गगा जी का मन्दिर है, वहाँ गंगा जी की विशेष पूजा होती है। इस दिन गंगा की पूजा करके स्नान दान, कथा, तथा कीर्तन किया जाता है और ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है। वैसे तो गंगा–स्नान का सभी दिन माहात्म्य है, परन्तु इस दिन गंगा में स्नान करने का विशेष पुण्य माना जाता है। इस दिन जो व्यक्ति गंगा–स्नान करता है, वह सब प्रकार के पापों से मुक्त होकर सीधे स्वर्ग लोक को जाता है।

महाभारत के अनुशान पर्व में भीष्म ने युधिष्ठिर को गंगा का माहात्म्य बताते हुए कहा है– इस ससार में विविध दुखों से सन्तप्त जीवों के लिए गंगा से बढकर दूसरी कोई गति नहीं जिस प्रकार गरूड़ को देखने मात्र से ही, सभी प्रकार के सर्प विषहीन हो जाते हैं, उसी प्रकार गंगा के दर्शन से मनुष्य के समस्त पाप दूर हो जाते हैं। जिस प्रकार भूखे प्यासे बालक माता के पास दौड़ जाते हैं, उसी प्रकार इस संसार में कल्याण कारी जन गंगा की शरण में जाते हैं। दर्शन, स्पर्श, पान तथा गंगा–नाम के कीर्तन से सहस्त्रों लोग तर जाते हैं। जो भी अपने जन्म को, और अपनी विद्या को सफल बनाना चाहता है, उसे चाहिए कि गंगा में जाकर देवताओं तथा पितरों का तर्पण करें।*

---

* शास्त्री, राम प्रताप त्रिपाठी, हिन्दुओं के व्रत पर्व और त्यौहार पृष्ठ–७२

अक्षय-तृतीया

बैसाख मास में शुक्ल पक्ष की तृतीया को 'अक्षय तृतीया' कहते हैं। इस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, तर्पण आदि जो भी कर्म किये जाते हैं, वे सब अक्षय हो जाते हैं। मत्स्य पुराण[1] के अनुसार इस दिन विष्णु की पूजा अक्षत से की जानी चाहिए। विष्णु अक्षत–पूजा से विशेष प्रसन्न होते हैं और पूजा करने वाले की संतति भी अक्षय बनी रहती है। (सामान्यतया अक्षत के द्वारा विष्णुपूजन निषिद्ध है, पर केवल इस दिन अक्षत से उनकी पूजा की जाती है। अन्यत्र अक्षत के स्थान पर सफेद तिल का विधान है।) सतयुग का आरम्भ भी इसी तिथि को हुआ था, इसलिए इसे कृतयुगादि–तृतीया भी कहते हैं। यह सम्पूर्ण पापों का नाश करने वाली और सभी सुखों को प्रदान करने वाली है।

अक्षय–तृतीया से सम्बन्धित निम्नलिखित कथा भविष्य पुराण[2] में कही गयी है पूर्वकाल में प्रिय, सत्यवादी, देवता और ब्राह्मणों का पूजक 'धर्म' नामक एक धर्मात्मा वणिक् रहता था। उसने एक दिन कथा–प्रसंग में सुना कि यदि बैशाख शुक्ल की तृतीया रोहिणी नक्षत्र एवं बुधवार से युक्त हो तो उस दिन का दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। यह सुनकर उसने अक्षय–तृतीया के दिन गंगा में अपने पितरों का तर्पण किया और घर आकर जल और अन्न से पूर्ण घट, सत्तू, दही, चना, गुड़, ईख, खाँड़ और सुपर्ण श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणों को दान दिया। कुटुम्ब में आसक्त रहने वाली उसकी पत्नी उसे बार–बार रोकती थी, किन्तु वह अक्षय–तृतीया को अवश्य ही दान करता था। कुछ समय के बाद उसका देहान्त हो गया। अगले जन्म में उसका जन्म कुशावती (द्वारका) नगरी में

---

[1] मत्स्य पुराण ६५/४

[2] भविष्य–पुराण ३०–३३

हुआ और वह वहाँ का राजा बना। दान के प्रभाव से उसके एश्वर्य और धन की कोई सीमा नहीं थी। उसने पुनः बडी बड़ी दक्षिणा वाले यज्ञ किये। वह ब्राह्मणों को गौ, भूमि, सुवर्ण आदि देता रहता और दीन–दुखियो को भी संतुष्ट करता, किन्तु उसके धन का कभी ह्रास नहीं होता। वह उसके पूर्व जन्म में अक्षय–तृतीया के दिन दान देने का फल था।

इस व्रत के विधान के अनुसार रात को अन्न, शहद, ऋतु में उपयुक्त सामग्री, अन्न, गौ, भूमि, सुवर्ण, और वस्त्र जो पदार्थ अपने को प्रिय और उत्तम लगे, उन्हें ब्राह्मण को देना चाहिए। इस प्रकार इस तिथि में किये गये कर्म का क्षय नहीं होता, इस लिए मुनियों ने इसका नाम अक्षय–तृतीया रखा है। देवी पुराण में लिखा है कि बैशाख की तृतीया और रोहिणी नक्षत्र में जल के घट को पूजकर दान करने से शिव–लोक प्राप्त होता है। उसका मन्त्र इस प्रकार है–'ब्रह्मा–विष्णु–शिव–रूप यह घट मैने दिया, इसके देने से पितर और पितामह तृप्त हो'। जो गन्ध, तिल, अन्न फल से युक्त घट पितरों के लिए देता है; उनको अक्षय प्राप्त हो।[1]

वैशाख अक्षय–तृतीया को गंगा जल में स्नान करके मनुष्य सब पापों से मुक्ति पाता है। इस दिन यवों से हवन, यवों से विष्णु का पूजन करना चाहिए और ब्राह्मणों को यव का दान करना चाहिए और स्वयं भी यव का भक्षण करना चाहिए। शास्त्रों के अनुसार बहुत से शुभ व पूजनीय कार्य इसी महान दिन होते है, जिनसे मनुष्यों का जीवन धन–धान्य से सम्पन्न हो जाता है।

अक्षय–तृतीया के दिन परशुराम जयन्ती भी मनायी जाती है। यह प्रदोष व्यापिनी लेनी चाहिए। स्कन्द और भविष्य के कथनानुसार बैशाख–शुक्ल–पक्ष

---

[1] निर्णय सिन्धु पृष्ठ १३४–१३५

की तृतीया पुनर्वसु नक्षत्र मे रात्रि के पहले प्रहर में रेणुका के गर्भ से परशुराम का अवतार हुआ। उस समय छः ग्रह इकट्ठे और मिथुन का राहु था। यदि दोनों दिन प्रदोष व्यापिनी हो या किसी अंश में समान व्याप्ति हो तो दूसरी अन्यथा पहली ही ग्रहण करनी चाहिए। वह भविष्य–पुराण के अनुसार बैशाख–शुक्ल–तृतीया उपवास में वह लेनी चाहिए, जो दोनों दिन शुद्ध हो। यदि रात्रि के प्रथम प्रहर में हो तो दूसरी, अन्यथा पहली ग्रहण करनी चाहिए।

उल्लेख ऋग्वेद मे भी हुआ है।[५] सूर्य की वार्षिक पूजा के रूप में रथयात्रा का वर्णन हमें पुराणों में भी प्राप्त होता है। इसके प्रचलन की प्राचीनता का निर्धारण पॉच सौ से आठ सौ ई०पू० के मध्य किया जा सकता है।[६] रथयात्रा के लिए समान्यतः अषाढ, कार्तिक एवं माघ की पूर्णिमाऍ पवित्र मानी गयी है। सूर्य की रथयात्रा यदि वर्ष पूरा होने पर किसी कारण से सम्पन्न न हो सकी तो फिर बारहवें वर्ष में इसे सम्पादित कर देना चाहिए।[७]

विष्णु–पुराण[८] में सूर्य को जलांजलि देना गृहस्थ के कर्तव्यों के अन्तर्गत वर्णित है। उन्हें भगवान विष्णु के समान तेजस्वी, जगत् का सविता तथा कर्मो का साक्षी बताया गया है। विष्णु–पुराण में वर्णित है कि वित्तहीन मनुष्य को सूर्य से अपनी हीनता निवेदित करते हुए पितरों को तृप्त करना चाहिए।[९] याज्ञवल्क्य के सम्बन्ध मे वर्णन है कि उन्होंने यजुर्वेद को प्राप्त करने के लिए अपनी स्तुति से सूर्य को प्रसन्न किया था [१०]। इसी प्रकार उल्लेख मिलता है कि सत्राजित की स्तुति से प्रसन्न होकर सूर्य ने उनकी अभिलाषा को पूरी किया था। सूर्य–पूजा की महत्ता को व्यक्त करते हुए मत्स्य–पुराण [११]का भी निर्देश है कि विप्रों ने वाराणसी में आदित्य की उपासना कर अमरत्व की प्राप्ति किया था।

ऋग्वेद[१२] के एक छन्द में सूर्य की उपासना का उद्देश्य पाप का निवारण माना गया है। शतपथ ब्राह्मण[१३] में सूर्य की स्तुति करते हुए उनकी

---

[५] ऋग्वेद १,५०,८
[६] हाजरा, रमेशचन्द्र स्टडीज इन द उपपुराणाज
[७] साम्ब–पुराण पृष्ठ १,३४, ६६–७०
[८] विष्णु–पुराण ३,११,३६,–४०
[९] वही ३,१४,२६–३०
[१०] वही
[११] मत्स्यपुराण १८४,३१
[१२] ऋग्वेद ६,६०,१
[१३] शतपथ ब्राह्मण १,१,३,६

किरणों को पवित्रता का कारण बताया गया है। मनुस्मृति[14] के अनुसार सूर्य शरीर धारियों को शुद्ध करते है। मालती–माधव[15] मे कल्याण के लिए सूत्रधार सूर्य की वन्दना करता है। मन्दसोर के अभिलेख में सूर्य की भक्ति–प्रवण स्तुति की गयी है।

विभिन्न तीर्थो से जल लाकर प्रतिमा को स्नान कराना चाहिए। कर्ता को नैमिष, कुरूक्षेत्र, पृथदल, गगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, नर्मदा, पयोष्णी, यमुना, ताभ्रा आदि नदियों का ध्यान करना चाहिए।[16] पवित्र जल से प्रतिमा को स्नान कराकर धूप एवं अर्ध्य से उनकी पूजा कर तीन रात्रि, सात रात्रि, आधा महीना या एक महीना उसके पास शयन करना चाहिए। मत्स्यपुराण[17] के अनुसार पूजा–कार्य में सूर्य का पैर नहीं बनाना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति पैरो के साथ सूर्य की आकृति बनाकर पूजा करता है, तो वह पाप का भागी होता है। अतएव मन्दिरों एवं चित्रों में देव–देव अर्थात् सूर्य का पैर नहीं बनाना चाहिए। शतपथ–ब्राह्मण[18] में सूर्य को चरण–विहीन बताया गया है। सूर्य की अधिकांश मूर्तियों को कमल पर स्थित प्रदर्शित किया गया है, जिससे सूर्य का कमल से सम्बन्ध व्यक्त होता है।[19]

सुन्दर ढंग से बनाये गये उत्तम रथ में प्रतिमा को प्रतिष्ठापित कर श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त अश्वों को जोतना चाहिए।[20] ये अश्व रोली लगे हुए चामर से

---

[14] मनु स्मृति ५,१०५

[15] मालती माधव १,३

[16] मिश्रा, वीर मित्रोदय, सूर्य रथयात्रा विधि पृष्ठ २६३

[17] मत्स्यपुराण ११,३१–३३

[18] शतपथ ब्राह्मण ४,४,५५

[19] एन०के० भट्टशाली, आइकेनोगैफी आफ बुद्धिस्ठ ऐण्ड ब्रह्मैनिकल स्कल्पचर्स इन दि ढाका म्यूजियम पृष्ठ.१४६

[20] साम्बपुराण ३४,२२–२४

विभूषित हो। उन्हें जोतकर रथ के आचार्य को दान–दक्षिणा देनी चाहिए।[२१] इस अवसर पर ब्राह्मणों को दान देना चाहिए एवं विभिन्न प्रकार के भोजन कराने चाहिए। यह कृत्य फलदायक माना गया है।[२२] विभिन्न प्रकार के इष्ट पदार्थो एवम् अन्नों से समस्त जनवर्ग को प्रसन्न कर मन्त्रों का पाठ कर आदित्य, अश्विनी कुमार रूद्र, गरूड़, मरूत्, वसु, पन्नग, नवग्रह, असुर, रथासीन–देवगण, स्थापित दिक्पाल, लोकपाल, विघ्नविनाशक समस्त देवगण तथा भूत–गणों को सौम्य बन जाने की प्रार्थना करनी चाहिए।[२३] सूर्य मे आस्था रखने वाले भक्तों द्वारा रथ ढोया जाना चाहिए। तदनन्तर गाजे बाजे के साथ मुख्य–मुख्य मार्गो से रथ का पर्यटन वांछनीय है।[२४] इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता था कि रथ इतने सुदृढ़ हों कि टूटने का डर न हो। इनके टूटने के कई अमंगल–कारी परिणाम माने जाते हैं। रथभंग होने से ब्राह्मणों को भय रहता है, धुरी टूटनें पर क्षत्रियों को भय रहता है, तुला टूटनें पर वैश्यों को भय रहता है, शमी टूटनें पर शूद्रों को भय रहता है, पताका टूटने पर प्रजाओं को भय रहता है तथा प्रतिमा के अंग–भंग होने पर रानी की मृत्यु होती है।[२५] यहाँ पर समाज के चारों वर्णो के लिए भय के विभिन्न कारणों को दर्शा कर समाज में उनके स्तर–विन्यास की ओर संकेत किया गया है। रथ टूटने से सम्पूर्ण जनपद का अमंगल होता है। अतः प्रारम्भ में ही शान्तिकर्म कर लेना चाहिए। नियम से रहने वाले न्यायपूर्वक धन कमाये हुए एवं अहिंसक व्यक्ति के लिए ग्रह सदैव शान्त रहता है– ऐसा शास्त्रों का वचन है।[२६] ब्राह्मणों को भोजन कराकर एवं उन्हें

---

[२१] वही, १, ३४,२५–२६
[२२] मित्र मिश्रा–वीर मित्रोदय पृष्ठ २६७, मनुस्मृति १,८६,७८,२,५४,८० याज्ञवल्क्य स्मृति १,२४३–५८
[२३] साम्ब पुराण–१,३४,३०–३३
[२४] वही–१, ३४,३५
[२५] वही–१,१,३४,३७–४०
[२६] मत्स्य–पुराण २,३,२७,८

दक्षिणा देकर संतुष्ट कर देना चाहिए। ब्राह्मण एवं राजाओं द्वारा ग्रह–शन्तिकर्म सम्पन्न किये जाने पर ग्रह विशेष–रूप से अनुग्रह करते है।[२७] लेकिन अपमानित किये जाने पर ये भस्म भी कर देते हैं। शान्ति–स्थापना के पश्चात् सूर्य–रथ निर्मित कर उसकी परिक्रमा करने से पुण्यार्जन सम्भव है।[२८]

जिस प्रकार प्रक्षेपित वाण के आघात से बचने के लिए रक्षा–कवच का निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार दैवी उपघातों से बचने के निमित्त कर्म का विधान शास्त्रकारों ने निर्दिष्ट किया है। इसी कारण यज्ञ करने वाले, सत्य वचन वाले, नियमपूर्वक रहने वाले,परोपकार करने वाले, जप–होम में लगे हुए व्यक्ति को ग्रहपीड़ा से मुक्ति बतायी गयी है। शास्त्रों में ग्रहों से उत्पन्न होने वाले कष्टों के उपशमनार्थ विविध वस्तुओं की पृथक्–पृथक् दक्षिणा की व्यवस्था प्राप्य है, यथा–सूर्य की शान्ति के लिए धातु, चन्द्रमा के लिए शंख, मंगल के लिए लाल ऊन, बुध के लिए सोना, गुरू के लिए पीले वस्त्र, शुक्र के लिए श्वेत अश्व, शनि के लिए अन्न, गुरू के लिए दधि एव चावल, शुक्र के लिए दधि का भोजन एवं शनि के लिए पिसे हुए तिल का दान उत्तम बताया गया हैं।[२९]

इस प्रकार अमित ओजस्वी भगवान् भास्कर की रथयात्रा करने वाला और दूसरे से कराने वाला व्यक्ति परार्ध वर्षो (ब्रह्मजी की आधी आयु) तक सूर्य–लोक में निवास करता है। उस व्यक्ति के कुल में न कोई दरिद्र होता है, न कोई रोगी। सूर्य भगवान् के अभ्यंग के लिए समर्पण करने वाले तथा अनेक प्रकार का तिलक करने वाले व्यक्ति को सूर्य–लोक प्राप्त होता है। गंगा आदि तीर्थो से जल लाकर जो सूर्यनारायण को स्नान कराता है, वह वरूण–लोक में निवास

---

[२७] याज्ञवल्क्य स्मृति–३,२६४–२६५

[२८] साम्ब–पुराण.१, ३४,५६–६१

[२९] मत्स्य–पुराण २,६३,२८–३०

करता है। लाल रंग के भात और गुड का नैवेद्य समर्पित करने वाला व्यक्ति प्रजापति–लोक को प्राप्त करता है। भक्तिपूर्वक सूर्य नारायण को स्नान कराकर पूजन करने वाला व्यक्ति सूर्य–लोक में निवास करता है। जो व्यक्ति सूर्यदेव को रथपर चढाता है; रथ के मार्ग को पवित्र करता है, और पुष्प–तोरण–पताका आदि से अलंकृत करता है, वह वायु–लोक में निवास करता है। जो व्यक्ति नृत्य–गीत आदि के द्वारा बृहद् उत्सव मनाता है, वह सूर्य लोक को प्राप्त करता है। जब सूर्य देव रथपर विराजमान होते हैं, उस दिन जागरण करने वाला पुण्यवान् व्यक्ति निरन्तर आनन्द प्राप्त करता है। जो व्यक्ति भगवान सूर्य की सेवा आदि के लिए व्यक्ति को नियोजित करता है, वह सभी कामनाओं को प्राप्त कर सूर्य–लोक में निवास करता है। रथारूढ शिव का दर्शन करना बडे ही सौभाग्य की बात है। जब रथयात्रा उत्तर और दक्षिण दिशा की ओर होती है, उस समय दर्शन करने वाला व्यक्ति धन्य हो जाता है।[30]

आलोचित पुराणों ने सूर्य के जिस रूप का परिचिन्तन किया है; उसकी पृष्ठभूमि में वैदिक–परम्परा क्रियाशील थी। अनेक देवताओं से सूर्य की एकता स्थापित करने की प्रवृत्ति, उनके रथ आदि का वर्णन, यहाँ तक कि स्वयं सूर्योपासना वैदिक धारणा के निर्वाह को व्यक्त करती है। पर यहाँ पर निर्वाह में पुराणों में दो प्रकार की प्रवृत्ति का परिचय दिया गया है। उनका वर्णन बीज रूप में वर्तमान था। या तो यह बौद्धिक–प्रवृत्ति की परिपक्वता का द्योतक है अथवा उसमें उन्होंने परिवर्तन का पुट देकर नवीन स्वरूप प्रस्तुत करनें की चेष्टा की है। यह नवीनता उन उद्धरणों में चरम उत्कर्ष को प्राप्त होती है, जहाँ मूर्ति–पूजा के अस्पष्ट अथवा सुस्पष्ट संकेत मिलते हैं।[31]

---

[30] भविष्य–पुराण (ब्राह्मपर्व) सम्पादक राधेश्याम खेमका पृष्ठ ८३
[31] राय,एस०एन० पौराणिक धर्म एवं समाज पृष्ठ ५९–६०

जगन्नाथ पुरी की यात्रा

आषाढमास की शुक्ल द्वितीया को पुण्य नक्षत्र में इसे मनाया जाता है। यह मुख्य रूप से उडीसा में वैष्णव–धर्मावलमबियों का प्रमुख त्यौहार है। राजेन्द्रप्रसाद मित्र[३२] ने वर्तमान जगन्नाथ के मन्दिर का ऐतिहासिक समय पॉचवीं शताब्दी के उपरान्त का माना है। उनके अनुसार लगभग सातवीं शताब्दी के ताड़पत्रों पर लिखित पाण्डुलिपियों में मन्दिरो के विवरण पर्याप्त मात्रा में मिले है। उनका कथन है कि पुरी का प्राचीनतम मन्दिर अलाबुकेश्वर है जिसे भुवनेश्वर के शिखर के निर्माता लालटेन्टु केसरी ६२६–६७७ ई० ने बनवाया था। इसके पश्चात् तिथिक्रम की दृष्टि से मार्कण्डेश्वर एवं जगन्नाथपुरी के मन्दिर आते हैं। मनमोहन चक्रवर्ती[३३] ने जगन्नाथ–मन्दिर के निर्माण तिथि के विषय में चर्चा करते हुए कहा है कि गंगेश्वर ने पुरूषोत्तम के महामन्दिर का निर्माण कराया था।

शास्त्रों के अनुसार देवताओं की मूर्तियाँ केवल पत्थर की नहीं बनतीं, बल्कि लकड़ी, गोबर तथा मिट्टी आदि की भी बनती हैं। किन्तु जगन्नाथ जी की मूर्ति पत्थर या मिट्टी की न बनकर लकड़ी की बनी हुई है। जगन्नाथ जी के मन्दिर में जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा तीनों की मूर्ति विराजमान है तथा तीनों दारूमय हैं। रथयात्रा के कुछ दिन पहले इन तीनों देवताओं की मूर्तियाँ बनायी जाती हैं। जगन्नाथ जी की मूर्ति का दारूमयी होना उनकी विशेषता है। जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की बड़ी–बड़ी नासिका, गोल–गोल और बड़े–बड़े नेत्र और हाथ कटा हुआ होता है। इस प्रकार जगन्नाथ जी की मूर्ति अनेक कारणों से अद्भुत और अलौकिक है।

---

[३२] राजेन्द्रप्रसाद मित्र एण्टीक्विटीज ऑफ उड़ीसा, जिल्द २, पृष्ठ १७२

[३३] जरनल आफ दि एशियाटिक सुसाइटी आफ बंगाल जिल्द ६७, भाग–१, पृष्ठ ३२८–३३

रथ में एक मण्डप की रचना करनी चाहिए जिसमे चौकोर आकार की सुनिर्मित वेदी हो। प्रातः काल उस वेदिका के मध्यभाग में कुम्भ स्थापित करना चाहिए। इसके बाद सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से प्रतिमा को अलकृत करना चाहिए। धूप, गन्ध, माला इत्यादि से विधि–पूर्वक पूजन करके मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए। वासुदेव, बलराम, सुभद्रा के लिये पाँच–पाँच बार हवन करना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के कृत्यों को सम्पन्न कर ब्राह्मणों को दक्षिणा एवं भोजन आदि से संतुष्ट कर देना चाहिए। तदुपरान्त पुष्पवृष्टि एवं धूप आदि से सुगन्धित करके अनेक प्रकार के वाद्यों को ध्वनित करते हुए रथ को भक्तों द्वारा ढोया जाना चाहिए।[३४] भगवान रथ में बैठकर जनकपुर जाते हैं, जो तीन मील दूर है। वहाँ वे तीन दिन रहते हैं। वहाँ लक्ष्मी जी उनसे मिलने के लिए आती हैं। इसके बाद भगवान् वहॉ से लौट आते हैं और अपने पूर्व स्थान पर विराजमान हो जाते हैं। इस अवसर पर छुवाछूत का कुछ भी विचार नहीं होता और भक्त लोग भगवान के महाप्रसाद (पकाया हुआ भात) को लेकर घर लौट आते हैं। अन्य स्थानों पर भी रथयात्रा का उत्सव होता है किन्तु जगन्नाथ पुरी का उत्सव अद्वितीय होता है।

स्कन्द–पुराण [३५] में वर्णित रथ–भंग के सन्दर्भ में विविध तथ्य प्राप्त होते हैं। जिनका सामाजिक महत्त्व है–ईषा के भंग होने पर द्विजों को भय रहता है, अक्ष के टूटने पर क्षत्रियों को, तुला के टूटनें पर वैश्यों को तथा शमी के टूटने पर शूद्रों को भय रहता है। पीठ के भंग होने पर प्रजा को भय रहता है। ध्वजा के खण्डित होने पर नृप–परिवर्तन का भय रहता है। प्रतिमा के टूटने पर राजा को मृत्यु आदि की आशंका रहती है। इस प्रकार की अवधारणा में भारतीय समाज के विभिन्न अंगों के महत्त्व एवं सुरक्षा का प्रतिबिम्ब मिलता है।"

---

[३४] शर्मा वी०एन० फेस्टिवल आफ इण्डिया पृष्ठ ६५

[३५] स्कन्द–पुराण– २.२५,५६–६४

ब्रह्मपुराण[३६] में इस उत्सव से सम्बन्धित इन्द्रद्युम्न की कथा का वर्णन प्राप्त है, जिसके अनुसार इन्द्रद्युम्न वासुदेव का उपासक था। एक बार वह अपनी राजधानी में एक विशाल सेना, पुरोहित और शिल्पकार को लेकर दक्षिण समुद्र–तट पर आया और वासुदेव के क्षेत्र को देखकर वही शिविर डाल दिया। राजा इन्द्रद्युम्न ने वहाँ एक अश्वमेध यज्ञ किया और एक मन्दिर बनवाया तथा उसके लिए एक उपयुक्त प्रतिमा बनवानें का निश्चय किया। राजा के स्वप्न में वासुदेव ने उन्हे प्रातः काल समुद्र तट पर जाने और वहाँ स्थित वटवृक्ष को कुल्हाड़ी से काटनें का आदेश दिया। राजा ने जब वट–वृक्ष को काटा, तब विष्णु एवं विश्वकर्मा ब्राह्मण–वेशधारी प्रकट हुए। विष्णु ने राजा को सूचित किया कि विश्वकर्मा देव प्रतिमा का निर्माण करेंगे। वासुदेव, बलराम और सुभद्रा की प्रतिमाएँ विश्वकर्मा द्वारा निर्मित कर राजा को दी गयी। इन मूर्तियों को राजा ने पुरूषोत्तम–क्षेत्र के मन्दिर में स्थापित कराया और बड़े समारोह के साथ उनकी प्राण–प्रतिष्ठा की। इस आयोजन के अनन्तर राजा ने मूर्तियों की विधिवत् पूजा की और श्रद्धा–भक्ति समेत विनयपूर्वक प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना से प्रसन्न भगवान विष्णु ने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिये तथा उसे पूर्णायु तक सब प्रकार के सुखभोग करते हुए राज्य का वरदान दिया।

यह पुरूषोत्तम–क्षेत्र आज जगन्नाथपुरी के नाम से भी पुकारा जाता है। यहॉ की विशेषता यह है कि जगन्नाथ जी का प्रसाद वे सब लोग एक साथ ग्रहण करते हैं, जो छुवाछूत के अन्ध–समर्थक तथा रूढ़िवादी कहे जाते हैं। वहाँ पहुँच कर ब्राह्मण भी शूद्र के साथ परोसा गया प्रसाद ग्रहण कर लेता है। जो नहीं ग्रहण करता, वह पाप का भागी होता है।

---

[३६] ब्रह्मपुराण– ४३,६०,७०, एवं ४४,३०–४०

एक अन्य आख्यानात्मक वर्णन के अनुसार मथुरा–नरेश कंस ने कृष्ण और बलराम को मथुरा बुलानें के लिए अक्रूर को गोकुल भेजा। कृष्ण अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम के साथ कंस की आज्ञा का पालन कर मथुरा जाने लगे। उस दिन गोकुल वासियों ने उन्हें स्नेह एवं अश्रु भरे नेत्रो से विदा किया। उस दिन की स्मृति में इस पर्व का आयोजन प्रारम्भ हुआ।[३७]

रथ–यात्रा जगन्नाथ पुरी का पवित्र एवं महत्त्वपूर्ण पर्व है। देश के विभिन्न अंचलो से लाखों तीर्थयात्री यह यात्रा देखने के लिए यहाँ एकत्र होते हैं। जगन्नाथ जी के विशाल रथ को खींचने के लिए एवं स्पर्श करने की श्रद्धा बड़े–बडे धार्मिक लोगों को भी होती है, और वहॉ का राजा इसमें प्रमुख हाथ बटाता है।[३८] वर्तमान समय में जगन्नाथ की रथ–यात्रा अब केवल जगन्नाथ–पुरी में नहीं, बल्कि अन्य स्थानों में भी बड़े मन्दिरों, धार्मिक संस्थाओं द्वारा निकाली जाती है।

---

[३७] शर्मा वी०एन० फेस्टिवल आफ इण्डिया पृष्ठ ६५

[३८] (वर्तमान समय में भी यह प्रथा है कि वहाँ के राजपरिवार का प्रमुख व्यक्ति रथयात्रा के पूर्व सोने की झाड़ू से मार्ग साफ करता है, और सबसे पहले वह रथ खींचने के लिए आगे आता है। रथयात्रा के समय रथ को छूने मात्र से पुण्यार्जन होगा, इस धारणा से बहुत बड़ी संख्या में रथ खींचने के लिए लोग एकत्रित हो जाते है)

पंचम अध्याय

वर्षा ऋतु के उत्सव

नाग पंचमी

रक्षा बन्धन

कृष्ण जन्मोत्सव

गणेश चतुर्थी

नाग पंचमी

नागपूजा भारतीय लोकधर्म का पुराना रूप है। भारतवर्ष के सभी भागों में नागपंचमी विभिन्न प्रकार से सम्पादित होती है। वैदिक, बौद्ध, जैन प्रत्येक धर्म के साथ नाग पूजा का समन्वय हुआ है। नागमह के नाम से भी नाग देवता के उत्सव का उल्लेख मिता है। नागपूजा की परम्परा यक्ष–पूजा से भी अधिक प्राचीन प्रतीत होती है। नागों की माता 'सुरसा' पृथ्वी की ही संज्ञा है। शतपथ ब्राह्मण[१] के अनुसार नागमाता 'कद्रू' पृथ्वी का ही रूप है। विष्णु अनन्त नामक शेषनाग की शय्या पर सोते हैं–इस प्रकार के उपाख्यानों में विष्णु और नागपूजा की धारणाओं का सम्मिलन हुआ है। काशिका[२] के अनुसार चर्तुव्यूह के अनन्त भागवत धर्म के आरम्भ में संकर्षण और वासुदेव इन दोनों को नित्य जोड़ा जाता है। विष्णु के अतिरिक्त शिव के साथ भी नाग परम्परा का समन्वय प्राप्त होता है। यजुर्वेद में रूद्र को 'अहिसत्र' अर्थात् सर्प के सान्निध्य वाला कहा गया है। ऋग्वेद[३] के अनुसार इन्द्र अहि (सर्प) के शत्रु हैं। तथा एक अन्य जगह अहि–हत्या की भी चर्चा हुई है। ऋग्वेद[४] में एक स्थान पर वर्णित है कि–'देखिए फण वाले अहि को।' वृहदारण्यकोपनिषद [५] में साँप पादोदर (जिसके पाँव शरीर के भीतर होते है) केंचुल का उल्लेख है। तैत्तिरीय संहिता एवं वाजसनेयी संहिता[६] में सर्पो के नमस्कार किये जाने का उल्लेख है। अथर्ववेद[७] में तक्षक

---

[१] शतपथ ब्राह्मण– ३,६,२,२

[२] काशिका ८,१,१५

[३] ऋग्वेद (२,३०,१)), (२,१६,३)

[४] वही ६,७५,१४

[५] बृहदारण्यकोपनिषद्–४,४,७

[६] तैत्तिरीय संहिता–४,२,८३ वाजसनेयी संहिता–१३,६–८

[७] अथर्ववेद ८,१४,१३–१५

एवं धृतराष्ट्र नामक सर्पो के नाम का उल्लेख हुआ है। काठक सहिता[५] ने पितरों, सर्पो, गन्धर्वो, जलों एवं औषधियों को 'पंचजन' कहा है; किन्तु ऐतरेय ब्राह्मण[६] ने देवों मनुष्यों, गन्धर्वो अप्सराओ, सर्पो एव पितरों को पंचजन माना है। इससे स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक काल में सर्प लोग गन्धर्वो के समान एक जाति के अर्थ में लिए जाने लगे थे।

नागों के कथन में दो कथाएँ महत्वपूर्ण है। एक नाग और गरूड़ का संघर्ष और दूसरा जनमेजय का नाग–यज्ञ। पहली कथा के अनुसार गरूड सूर्य के प्रतिनिधि हैं और नाग अन्धकार से भरे हुए पाताल या पार्थिव लोकों के। गरूड और नागों के संघर्ष से गरूड़ की सबसे बडी विजय उसके द्वारा स्वर्ग से अमृत–घट ले आना है। जीवन दायी अमृत पदार्थ सूर्योपासक आर्य जाति को प्राप्त हुआ नाग जाति को नही। यह उस कथा का अर्थ है।

जनमेजय के नाग–यज्ञ की कथा के पीछे ऐतिहासिक तथ्य मालूम पडता है। कुरू–पाण्डव वंश के साथ तक्षक के देश का झगडा चला आ रहा था। उसी द्वन्द्व में परीक्षित का अन्त हुआ, जिसका बदला जनमेजय ने नागयज्ञ के रूप में लिया।

बुद्ध का भी कई नागों से सम्बन्ध बताया जाता है। जैसे ही बुद्ध का जन्म हुआ नन्द और उपनन्द नाम के नागों ने प्रकट होकर उनकी स्तुति की। नैरंजना नदी में जब बुद्ध स्नान कर चुके तो वहाँ के नागराज की दुहिता ने बोधिसत्व के बैठने के लिए रत्नजटित आसन दिया। ऐसा उल्लेख आया है कि बुद्ध ने सुजाता की दी हुई खीर खाकर उसका सोने का कटोरा नदी में फेंक

---

[५] काठक सहिता (५,६)
[६] ऐतरेय ब्राह्मण (१३,७)

दिया, जिसे वहाँ के नाग ने उठा लिया। किन्तु रूद्र ने गरूड का रूप बनाकर उसे छीन लिया और स्वर्ग में उसे ले जाकर पूजा की। नैरजना में स्नान करके जब बुद्ध (बोधिसत्व) वृक्ष की ओर चले तो नागराज कालिक ने उनकी स्तुति की और उनके बुद्धत्व के विषय में भविष्य–वाणी की।[१०]

जातकों की लोककथाओं मे नागों के आख्यान अधिक मिलते है, जिसमे नाग सम्बन्धी लोकवार्ता पर अच्छा प्रकाश पडता है। भारतीय कथा–साहित्य के अनुसार नाग क्षेत्र–देवता कहे गये हैं, अर्थात् वे भूमि के विशेष भाग की रक्षा करते हैं। उनके सम्बन्ध मे दूसरा विश्वास यह है कि जरतकारू के पुत्र आस्तीक वासुकिनाग की बहिन के पुत्र है। जन्म के बाद वासुकि ने ही आस्तीक का लालन–पालन किया। नागों के साथ अपने इस सम्बन्ध के कारण ही आस्तिक ने नागयज्ञ से नागों की रक्षा की।[११]

कृष्ण के जीवन मे भी कुछ नागो को वश में करने की महत्त्वपूर्ण घटना आती है। भगवद्गीता[१२] में भगवान श्री कृष्ण ने अपने को 'सर्पो' में वासुकि तथा नागो मे 'अनन्त' कहा है। सर्प एवं 'नाग' में क्या अन्तर किया गया है यह स्पष्ट नही हो पाता है। सम्भवतः 'सर्प' शब्द सभी रेंगने वाले जीवों तथा 'नाग' फण वाले साँपो के लिए प्रयुक्त है। पुराणों में नागों के विषय मे बहुत सी कथाएँ है। महाभारत मे नागों का बहुत उल्लेख है। अर्जुन ने जब बारह वर्ष के ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था, तो नागों के देश में गये थे और अपनी ओर आकृष्ट नागकुमारी उलूपी से विवाह किया था। आश्वमेधिक पर्व[१३] के अनुसार अश्वमेध यज्ञ अश्व की रक्षा में आये हुए अर्जुन से मणिपुर में चित्रागदा के पुत्र वभ्रुवाहन ने युद्ध किया

---

[१०] अग्रवाल, श्री वासुदेवशरण 'प्राचीन भारतीय लोक–धर्म पृष्ठ' ६६

[११] काणे पी०वी०, धर्म–शास्त्र का इतिहास भाग–४ पृष्ठ ५१–५२

[१२] भगवद्गीता १०,२८–२६

[१३] अश्वमेधिक पर्व, अध्याय ७६–८१

और अर्जुन को मार डाला, जो संजीवन रत्न से पुनर्जीवित किये गये। वे भूमि में गडे हुए धन पर बैठकर उसकी रक्षा करते हैं और उसे किसी को लेने नही देते हैं। जो व्यक्ति नाग की पूजा करके उसे प्रसन्न कर लेता है वही उस निधि को पाता है। पंचतन्त्र की एक कहानी के अनुसार क्षेत्रपाल नागदेवता क्षेत्र के स्वामी एक ब्राह्मण को उसके दूध पिलाने से प्रसन्न होकर एक स्वर्ण दीनार नित्य दिया करता था। एक दिन ब्राह्मण दूसरे गॉव गया और अपने पुत्र को यह काम सौप गया। नाग ने पुत्र को भी उसी प्रकार एक दीनार दिया, पुत्र ने समझा इसकी बाँबी दीनार से भरी है। क्यों न मैं उन्हे ले लूँ। यह सोचकर उसने अगले दिन जब नाग दूध पीने निकला तो उसके सिर पर डडा मारा। नाग ने कुपित होकर उसे डॅस लिया। जब ब्राह्मण वापस लौटा तो वह फिर दूध लेकर पहुॅचा। तब नाग ने कहा–रे मूर्ख तू धन के लोभ से आया है। मै उस डडे की वह चोट नहीं भूल सकता, और तू अपने पुत्र का शोक नहीं भूल सकता है। इस लिए मेरी और तेरी मित्रता नही हो सकती। यह कहकर उसने ब्राह्मण को एक बहुमूल्य मणि दी, और फिर न आने के लिए कहा।

इस कहानी में नाग को क्षेत्र का देवता माना गया है। वह भूमि के नीचे गडे हुए धन का रक्षक है। तीसरी विशेषता यह है कि उसके पास बहुमूल्य मणि होती है, जिसे वह प्रसन्न होकर मनुष्य को दे सकता है।

एक अन्य कथा के अनुसार मणिपुर नगर में एक किसान अपने परिवार के सहित रहता था। उसके दो पुत्र और एक कन्या थी। एक दिन जब किसान खेत में हल चला रहा था तो सॉप के तीन बच्चे हल के फाल से कुचल कर मर गये। बच्चों की माँ नागिन ने बहुत विलाप किया। उसने अपने बच्चों के मारने वाले से बदला लेने का निश्चय किया। रात्रि में नागिन ने किसान और

उसकी पत्नी तथा दोनो पुत्रों को डॅस लिया। अगले दिन नागिन किसान की कन्या को डॅसने चली तो उस कन्या ने डर कर उसके आगे दूध का कटोरा रख दिया और हाथ जोडकर क्षमा मॉगने लगी। उस दिन पचमी थी। नागिन ने इस सत्कार और विनम्रता से प्रसन्न होकर लडकी से वर मॉगने को कहा। लड़की ने वर मॉगा 'मेरे माता, पिता और भाई जीवित हो जाये और जो व्यक्ति आज के दिन नागो की पूजा करे उसे कभी भी नाग के डॅसने की बाधा न हो।' नागिन लडकी को वह वर देकर चली गयी। किसान उसकी पत्नी और दोनों पुत्र जीवित हो गये। यही तिथि 'नागपंचमी' नाम से प्रसिद्ध हुई। नाग-पंचमी के दिन नागों की पूजा की इस प्रचलित परम्परा में इस करूण एवं प्रेरक कथा का विशेष महत्व है।

नागपूजा का सबसे प्रभावशाली उदाहरण राजगृह के मणि-नाग देवता की पूजा का स्थान मणियारमठ है। जो मानव, मणिनाग का प्रसाद चखता है, उसे साँप का विष नही चढता। एक रात मणिनाग के स्थान पर निवास करना चाहिए।[१४] भीम, अर्जुन के साथ जब कृष्ण, राजगृह पहुँचे तब उन्होने राजगृह में अर्षुद, शक्रतापी, स्वास्तिक और मणिनाग इन चार नागदेवताओं के होने का उल्लेख किया है। मणियार मठ के स्थान में गुप्त युग में एक मन्दिर बनाया गया था, जो अभी तक विद्यमान है। प्राचीन काल में इस तरह के मन्दिर नाग-घर कहलाते थे।

नागों का सम्बन्ध नागपंचमी के उत्सव के रूप अभी तक मनाया जाता है। श्रावण शुक्ल पंचमी को नागपचमी का त्यौहार होता है। उस दिन घर की दीवारें पोतकर उन पर 'संउन' रखते है। किसी एक जगह बडे रूप में 'संउन'

[१४] आरण्यक ८२/९०

रखकर द्वार के दोनों ओर उनकी आकृति बनाते हैं। 'सउन' शब्द संस्कृत के 'शकुनि' से निकला है। जिससे प्राकृत में 'सअनि' और हिन्दी में 'सउन' बनता है। सउन के रूप मे पंख फैले गरूड की आकृति लिखी जाती है। सामवेद में सौपर्ण साम का उल्लेख है। ताण्ड्य ब्राह्मण[१५] में कहा गया है कि देवों का यज्ञ एक बार उनसे रूठ कर बाहर चला गया। वह सुपर्ण के रूप मे इधर–उधर घूमने लगा। देवता उसे सौपर्ण साम के गीत गाकर वापस लाये। तब यज्ञ आरम्भ हुआ। स्पष्टतः यहाँ वैदिक यज्ञ और लोक की सुपर्णपूजा का समन्वय किया गया है। गरूडरूपी महासुपर्ण के साथ नागों के सग्राम की कथा वैदिक देवासुर संग्राम की ही रूढ़ि पर ढल गयी। जिसमें सुपर्ण देवों के और नाग आसुरी या अन्धकार की शक्तियों के प्रतीक हैं। सुपर्ण और गरूड़ दोनों सूर्य की सज्ञा थी। गरूड प्रकाश के तथा नाग अन्धकार के प्रतीक थे। यही इनका शाश्वत द्वन्द्व है। नाग–पंचमी को रखा जाने वाला 'सउन' उसी गरूड–नाग संग्राम की लोक परम्परा का स्मरण दिलाते हैं।

बंगाल और दक्षिण भारत में नागपचमी के अवसर पर मनसा देवी का पूजन होता है। सर्प–भय से दूर रहने के लिए श्रावण के कृष्ण पक्ष की पंचमी को मनसा देवी का संकल्प होता है। तब गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य दिया जाता है और अनन्त एवं अन्य नागो की पूजा की जाती है। इस पूजा में प्रमुख रूप में दूध, घी का नैवेद्य चढाया जाता है। घर में नीम की पत्तियाँ रखी जाती हैं और उन्हें स्वयं व्रती भी खाता है। ब्राह्मणों को भी खिलाता है। दक्षिण भारत में श्रावण शुक्ल पंचमी को काठ की चौकी पर लाल–चन्दन से सर्प बनाये जाते है या मिट्टी के पीले या काले रंगों के साँपो की प्रतिमाएँ बनायी या खरीदी जाती हैं और उनकी पूजा दूध से की जाती है। लोग विभिन्न प्रकार के साँपों

---

[१५] ताण्ड्य ब्राह्मण १४,३,१०

को लेकर सपेरे, घूमते रहते हैं।, उन सॉपो को लोग दूध देते है और धन भी देते है।[१६]

लोकमान्यता के अनुसार नागों का सम्बन्ध प्राय. जलाशय से माना जाता है। मथुरा की नाग–मूर्तियॉ प्राय· पुष्करिणी के किनारे पर प्रतिष्ठित मिली हैं। वाण ने लिखा है कि तारापीड़ की रानी विलासवती पुत्रजन्म के लिए ऐसे मातृ–भवनों का दर्शन करती थी, जिनके चमत्कार का लोगों को प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था एवं प्रसिद्ध नागकुल के जलाशयो में जाकर स्नान करती थीं। हिन्दी साहित्य के लोकपक्ष मे प्रायः नागो की अष्टकुली का उल्लेख आता है। ये नाग शेष, वासुकि, कंबल, कर्कोटक, पदम् महापद्म, शंख और कूलिक है। एक दूसरे मत से इस सूची मे तक्षक, महापद्म, शख और कुलिक, कंबल, धृतराष्ट्र और वलाहक ये नाम हैं। भविष्य–पुराण के अनुसार पचमी तिथि को जो व्यक्ति नागों को दूध से स्नान कराता है, उसके कुल में वासुकि, तक्षक, कालिय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक तथा धनन्जय–ये सभी बडे–बड़े नाग अभय दान देते हैं। उसके कुल में सर्प का भय नही रहता। शेष नाग के सम्बन्ध मे भारतवर्ष के गाथा शास्त्र में पृथ्वी को धारण करने वाला माना गया है।

वन्य जीवों मे सर्प सबसे भयकर एव हानिकारक है। प्रतिवर्ष सहस्त्रों व्यक्तियों की इसके काटनें के कारण जीवन लीला समाप्त हो जाती है। इसका भय आज के वैज्ञानिक युग में भी है। नागों की पूजा की प्रथा मानव जाति के इसी भय के आधार पर आदि काल से प्रचलित हुई है। उस समय जब कृषि कर्म का इतना विकसित स्वरूप नहीं था, जंगल और झाड–झंखाड़ की अधिकता थी, तब सर्पो से आतंकित होना स्वभाविक था। अतः उसी भय से नागों की

---

[१६] काणे पी०वी० धर्मशास्त्र का इतिहास भग,४ –पृष्ठ ५१

पूजा–अर्चना की विधि प्रचलित हुई। नागपंचमी नागों के पूजा की वार्षिक तिथि है। उस दिन इन भयकर एवं घातक प्राणियों की मनुष्य जाति भय–मिश्रित भक्ति से पूजा करती है। आने वाले वर्ष भर में लोग उससे अभयदान की याचना करते हैं। नागपंचमी के पीछे अनेक पौराणिक एव लौकिक गाथाएँ प्रचलित है। उन सब में प्राय. करूणा को द्रवित करने वाली कहानियाँ है। हिसक प्राणी के सम्बन्ध में ऐसी करूण कथाओं का निर्माण हमारा ध्यान उन कथाओं के रचयिताओ की सूझ–बूझ और मनोवैज्ञानिकता की ओर आकृष्ट करता है। नाग–पूजा के वर्णित माहात्म्यों में नागों की भयंकरता की चर्चा न करके उनकी दयालुता, निरीहता तथा उपकारिता का ही वर्णन है। अवगुणों में भी गुणों का अन्वेषण हमारे पूर्वजों की गुणग्राहकता का परिचय देता है। नाग–पचमी का व्रत हमको अपनी विशाल ह्रदयता तथा उदारता का स्मरण कराता है। धार्मिक सहिष्णुता का भाव हमारे अन्दर इतना घर कर गया है कि हम शत्रु को भी आश्रय ही नही देते बल्कि उनकी पूजा भी करते हैं। अत· इस व्रत एवं त्यौहार से हमें उदारता और सहिष्णुता की शिक्षा लेनी चाहिए और अपने चरित्र में इन गुणो को अपनाना चाहिए।

रक्षा बन्धन

रक्षाबन्धन श्रावणी पूर्णिमा को मनाया जाने वाला प्राचीन त्यौहार है। हेमाद्रि,[1] 'निर्णयसिन्धु'[2] आदि मे रक्षा–बन्धन के बारे में वर्णन मिलता है। इसके अनुसार श्रावण पूर्णिमा के दिन सूर्योदय से पूर्व उठकर देवो, ऋषियों एवं पितरों का तर्पण करना चाहिए, इसके उपरान्त सूती पीत वस्त्र धारण कर, उसमें अक्षत, तिल रखकर गाँठ लगाकर स्वर्ण के रंग के समान हल्दी अथवा केसर से रग कर एक पात्र में रख देना चाहिए। इसके पश्चात् घर को गोबर से लिपवा कर चावलो से चौका पुरवा कर घट की स्थापना करना चाहिए। घट का पूजन शास्त्रोक्त विधि से करानी चाहिए। पूजन के पश्चात् पूरोहित द्वारा उस पोटली को अपने हाथ मे बधवाना चाहिए। इस रक्षा बन्धन को वेदपाठी ब्रह्मण के द्वारा ही वधवानी चाहिए। राजा के लिए लिखा गया है कि महल में एक वर्गाकार भूमि स्थल पर जल पात्र रखा जाना चाहिए, राजा को मन्त्रियो के साथ आसन ग्रहण करना चाहिए, गानो एवं आशीर्वचनों का तॉता लगा रहना चाहिए, देवो, ब्रह्मणों एव अस्त्र–शस्त्रों का सम्मान किया जाना चाहिए। तद्पश्चात राजपुरोहित को चाहिए कि वह इस मन्त्र के साथ 'रक्षा' बॉधे – "आपको वह रक्षा बाँधता हूँ जिसमें दानवों के राजा बलि बॉधे गये थे, हे रक्षा, तुम यहाँ से न हटो, न हटो।" सभी लोगों को (चारो वर्णो) अपने यथा शक्ति ब्राह्मणों एवं पुरोहितों को प्रसन्न करके रक्षा बधवाना चाहिए। ऐसा करने से व्यक्ति वर्ष भर प्रसन्नता के साथ रहता है।

---

[1] हेमाद्रि, व्रतभाग–२, पृष्ठ१९०–१९५

[2] निर्णय सिन्धु पृष्ठ १२१

भविष्य पुराण मे रक्षा बन्धन से सम्बन्धित प्रचलित कथा इस प्रकार है, ''एक बार युधिष्ठिर ने भगवान कृष्ण से पूछा कि 'भगवान समस्त रोग और अशुभों को नष्ट करने वाला कोई ऐसा उपाय बताइये जिसे एक ही बार कर लेने से वर्ष भर की रक्षा हो जाये।'' इस उत्तर देते हुए भगवान कृष्ण ने उनको इन्द्राणी और इन्द्र की विजय–कामना से सम्बन्धित प्राचीन इतिहास को सुनाये, जिसके अनुसार देवता और असुरों में एक बार बारह वर्ष तक युद्ध होता रहा, जिसमें असुरों ने सम्पूर्ण देवताओ के साथ इन्द्र पर विजय प्राप्त कर ली। इस महान पराजय से दुखी होकर इन्द्र ने महामंत्री तथा गुरू वृहस्पति से कहा–'आचार्य! हमारी स्थिति अब ऐसी विषम हो गयी है कि न तो अब हम यहाँ रूक सकते है, और ना ही इसे छोडना ही उचित मालूम पडता है। अतः सर्वस्व की बाजी लगाकर हमे असुरों से युद्ध करना ही होगा।' इन्द्राणी इस प्रकार दोनों लोगों के वार्तालाप को सुनकर बीच में ही बोल उठी 'पति देव, आप निर्भय रहे, मै ऐसा उपाय करती हूँ जिससे अवश्य ही आपकी विजय होगी।' दूसरे दिन प्रातः काल श्रावणी पूर्णिमा थी। इन्द्राणी ने उपर्युक्त रीति से तैयार कराये गये रक्षा की पोटली इन्द्र के दाहिने हाथ में बाँध दी। रक्षा बन्धन से सुरक्षित इन्द्र ने जब असुरो पर चढ़ाई की तब काल समान इन्द्र को देखकर सब दैत्य भाग गए और दानवेन्द्र बली बाँध लिया गया। यह सब रक्षा बन्धन का प्रभाव था। भगवान श्री कृष्ण का कथन है कि जो भी व्यक्ति उपर्युक्त रीति से श्रावण पूर्णिमा के दिन इस प्रकार रक्षा बँधवाते है, उन्हे वर्ष भर किसी प्रकार का रोग या शोक नही होता।

जैन समाज में रक्षा बन्धन के दिन जैन साधुवों की तथा मुनियों की पूजा की जाती है; उनकी कथा पढ़ी जाती है और अन्त में राखी बाँधी जाती है। रक्षा बन्धन की कथा जैन समाज में कुछ दूसरे प्रकार की है यथा–उज्जयिनी राजा

के राजा के चार मन्त्री थे। राजा यद्यपि वैदिक मतानुयायी था, परन्तु सभी धर्मो के प्रति आदर रखता था। परन्तु उसके चारो मन्त्री क्रमश· बली, वृहस्पति , नमुचि और प्रह्लाद श्रमणों के कट्टर विरोधी थे। एक बार राजा ने अपने उपवन मे ठहरे जैन मुनि अकम्पन और उनके संघ के सात सौ जैन साधुवों का दर्शन करने गये, उनके साथ उनके चारों मत्री भी थे। मन्त्रियों ने जैन साधु से शास्त्रार्थ किया। श्रुतसागर नामक जैन मुनि ने मन्त्रियो को पराजित किया, जिससे वे अत्यन्त लज्जित एवं क्षुब्ध हुए। रात्रि में उन मन्त्रियों ने मुनि की हत्या के लिए आक्रमण किया, उस समय श्रुत सागर मुनि अपने गुरू के उपदेश से ध्यान–मग्न थे। तपस्या के अमिट प्रभाव के कारण मन्त्रियों का षडयन्त्र सफल नही हुआ और उनके सशस्त्र हाथ उपर ही अकड़ गये। दूसरे दिन जब राजा को इस घटना का पता चला तो वे अत्यन्त क्रुद्ध हुए और इन चारो मन्त्रियों को अपदस्थ करके राज्य से बाहर कर दिया। मन्त्री राज–काज में कुशल एवं कुटनीतिज्ञ थे। उन्होने हस्तिनापुर के राजा श्री पद्य में यहॉ आश्रय लिया। दैव योग से आचार्य अकम्पन का संघ हस्तिनापुर में भी पहुॅचा। मन्त्रियों को अपने अपमान का बदला लेने का मौका एक बार फिर से प्राप्त हुआ, क्योंकि वहॉ का राजा इनके मुट्ठी में था। अपनी कूटनीति के सहारा लेते हुए वे राजा से सात दिनों के लिए सम्पूर्ण राज्य–व्यवस्था का भार अपने उपर ले लिया। मन्त्रियों ने आचार्य के संघ को घेर कर चारो ओर से आग लगा दी और 'पुरूष मेघ' नामक अनुष्ठान करने की घोषणा कर दी। इस अपकर्म के कारण चारों ओर हाहाकार मच गया, किन्तु राजा विवश था, क्योंकि मन्त्रियों को वह सात दिनो तक कुछ भी करने का वचन दे चुका था। आचार्य अकम्पन के संघ की इस दुरावस्था का पता मिथिलापुरी में चातुर्मास्य करने वाले एक अन्य जैन मुनि को लगा। उन्होनें अपने एक योग्य शिष्य को योगी विष्णु कुमार के समीप उनकी प्राण रक्षा के निमित्त भेजा।

योगी विष्णु कुमार को सभी सिद्धियॉ प्राप्त थी। वे राजा श्रीपद्य के बडे भाई थे। हस्तिनापुर पहुँच कर अपने छोटे भाई की विवशता सुनकर स्वयं यज्ञ स्थल पर पहुँचे।

मन्त्रिप्रवर बलि ने योगी विष्णुकुमार का स्वागत किया और उनसे महान यज्ञ मे कुछ भी दक्षिणा माँगने की प्रार्थना की। योगी विष्णुकुमार ने बलि से केवल तीन पग भूमि की मॉग की। बलि के संकल्प जल छोडते ही विष्णुकुमार ने विराट रूप धारण कर लिया। उन्होंने प्रथम पग से सुमेरू पर्वत पर्यन्त पृथ्वी को नाप लिया, दूसरे पग से मानुषोत्तर पर्वत को नाप लिया और तीसरा पग अभी बाकी ही था कि सम्पूर्ण पृथ्वी हिल गई, सर्वत्र हाहाकार मचने लगा। बलि आतंकित होकर विष्णुकुमार के चरणों पर गिर पडा और अपने अपराधो के लिए क्षमा याचना करने लगा।

विष्णु कुमार की आज्ञा से वह यज्ञ बन्द किया गया और मुनियों की विधिवत पूजा की गई। धुएँ से उनके कठ रूँध गये थे, भीषण ज्वालाओं से चमडियॉ झुलस गयी थी अतः उनकी शरीर की रक्षा के लिए विविध उपाय किये गये। वहॉ के जनता को उपदेश देते हुए आचार्य ने अपने साथियों, सहयोगियों और कुटुम्बियों की रक्षा मे तत्पर होने के लिए कहा और सबको रक्षा बाँधने की शिक्षा दी। उसी दिन से यह रक्षा बन्धन किया जाता है और ऐसा विश्वास किया जाता है कि इससे वर्ष भर कल्याण की प्राप्ति होती है और शोक एवं रोग–व्याधि का विनाश होता है।[3]

रक्षाबन्धन अथवा श्रावणी के इस परम पवित्र त्यौहार के साथ अनेक ऐतिहासिक घटनाएँ जुड़ी हुई है। ऐसे अनेक राजाओं की कथाएँ आती है जो पहले अपरिमित सैन्य बल के साथ अपने शत्रु को नष्ट कर देने के लिए तत्पर

---

[3] शास्त्री, राम त्रिपाठी, हिन्दुओ के व्रत, पर्व एवं त्यौहार, पृष्ठ ६२–६३

थे, किन्तु वही अपनी शत्रु की कन्या से राखी बधाकर अपने पिछले बैर को भूल जाते थे और उसे अपना मित्र बना लेते थे। राखी की लज्जा के लिए अनेक वीरों ने अपने प्राण सहर्ष होम कर दिये किन्तु राखी की लज्जा बचा ली।

राखी का त्यौहार प्रायः समस्त हिन्दुस्तान मे मनाया जाता है, परन्तु जिस नियम का वर्णन भविष्य पुराण और हेमाद्रि में किया गया है वैसा नही किया जाता। आजकल पोटली बॉधने की रीति नही है, उसके स्थान पर बाजारों से प्राप्त बहुत ही खूबसूरत आकार की राखियों ने ले लिया है। वर्तमान में भी प्राय ब्राह्मण लोग इस दिन प्रत्येक गृहस्थ के घर जाते है और उनके हाथ मे राखी बाँधते है तथा दक्षिणा भी प्राप्त करते है। इन ब्राह्मणो मे तो कितने ऐसे भी ब्राह्मण होते है जिन्हे राखी बॉधने का मन्त्र भी नही पता होता। कही–कही पर बहन अपने भाई के हाथ में राखी बाँधती है। बहन अपने भाई के माथे पर तिलक लगाती है, फिर राखी बॉधती है, इसके बाद मिठाई खिलाती है। भाई इस अवसर पर बहन को कुछ–न कुछ उपहार अवश्य देता है।

दक्षिण देश के किसी–किसी भाग में स्त्री अपने पति के हाथ में राखी बाँधती है। यद्यपि यह प्रथा अन्य प्रान्तो में प्रचलन में नही है, और कुछ अनोखी सी जान पड़ती है किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह जान पड़ता है कि यह प्रथा ऐतिहासिक है और इसकी परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। ज्ञातव्य है कि प्राचीन काल में इन्द्राणी ने इन्द्र के हाथ में असुरों पर विजय प्राप्त करनें के लिए रक्षा बॉधा था और फलस्वरूप इन्द्र असुरों पर विजय प्राप्त किये थे।

रक्षा बन्धन का पर्व हमे अभयदान देने वाला पुण्य दिवस है। यह हमारी शक्ति, साहस और विजय की भावना का मूल स्रोत है। जैसा कि पौराणिक

कथा से स्पष्ट है कि रक्षा बन्धन का त्यौहार लड़ाई में जाने वाले योद्धा को अभयदान देने वाला व्रत है। यह प्रतिपक्षी के उपर विजय प्राप्त करने की हमारी एकता का प्रतीक है। ऐसा विश्वास है कि रण प्रयाण के पहले माता, स्त्री या बहन योद्धा के हाथ मे यदि राखी बॉध दे तो वह अजेय हो जाता है। राजपूत–काल मे यह धारणा प्रचण्ड रूप से पायी जाती थी। जब कोई राजपूत लड़ाई पर जाता था तो उसकी स्त्री या बहन माथे पर तिलक और हाथ में शत्रु से रक्षा का बन्धन बॉध कर विदा करती थी। योद्धा इस भावना से प्रेरित हो कि मै अजेय हूँ शत्रु से पूरे जोश के साथ लड़ जाता था और विजयी होकर लौटता था। इस राखी के बन्धन ने अनेक बुजदिल पतियों के दिल में जोश की लहर पैदा कर दी थी और अनेक हिम्मत छोड चुके भाइयो के हृदय मे उत्साह की ऑधी बहाई थी। असुरों को परास्त करने के लिए तथा एकता और संगठन करने के लिए रक्षा बन्धन का त्यौहार महामन्त्र है। अतः इसे समस्त भारत वासियों को मनाना चाहिए[४]

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को श्रावणी नामक त्यौहार भी मनाया जाता है। रक्षा बन्धन प्राय· सभी लोग जानते है और मनाते भी है परन्तु श्रावणी के त्यौहार को बहुत कम लोग ही जानते है। श्रावणी का ही दूसरा नाम 'उपाकर्म'। प्राचीन काल में इस त्यौहार का बडा महत्व था, किन्तु आज इसका महत्व उतना नही है। श्रावणी का त्यौहार साल भर के समस्त कायिक, वाचिक तथा मानसिक पापों को नष्ट करने के लिए किया जाता है। प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार ऋषि, महर्षि लोग श्रावणी पूर्णिमा के दिन 'उपाकर्म' करके पढ़ाना प्रारम्भ करते थे, और माघ कृष्ण में उत्सर्जन होकर पढाई बन्द कर देते थे। बाद के बचे महीनों में अभ्यसित ज्ञान को अनुभव और क्रिया रूप में परिणत किया जाता था। इस

[४] उपाध्याय गौरीशकर, व्रत चन्द्रिका, पृष्ठ ४६–४८

प्रकार श्रावणी का दिन हमारे प्राचीन पठन–क्रम का पहला दिन होता था। इसलिए इसका अत्याधिक महत्त्व था। सामान्यतः लोगो का विचार है कि श्रावणी ब्राह्मणों का तथा होली शूद्रों का त्यौहार है। परन्तु ऐसा लगता है श्रावणी केवल ब्राह्मणों का त्यौहार न होकर उस द्विज–ब्राह्मण, क्षत्रीय तथा वैश्य का त्यौहार है जो वेद पठन के अधिकारी है। श्रावणी का प्रचार दक्षिण भारत, गुजरात आदि मे अधिक है। वर्तमान में कम लोग ही इस त्यौहार को करते है। श्रावणी को त्यौहार हमे स्वाध्याय पर प्रमाद मत करो–(स्वाध्यायात् न प्रमदितत्यम) इसकी शिक्षा देता है तथा मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध रहने का उपदेश करता है। अतः सब द्विजों को चाहिए कि इस त्यौहार को करते हुए अपने स्वाध्याय में लगे रहे।[५]

---

[५] उपाध्याय, गौरी शंकर, व्रत चन्द्रिका पृष्ठ ४२–४४

कृष्ण जन्मोत्सव

भादों कृष्ण पक्ष की अष्टमी को कृष्ण जन्माष्टमी या जन्माष्टमी व्रत एवं उत्सव कहते है, जो भारत मे सर्वत्र मनाया जाता है, और सभी व्रतों एव उत्सवों में श्रेष्ठ माना जाता है। कृष्ण जन्माष्टमी के काल निर्णय के सम्बन्ध मे बहुत मतभेद है। कुछ लोग इस दिन शुद्धा तिथि मानते है, कुछ लोग विद्धा। कृष्ण पूजा अति प्राचीन है। छान्दोग्योपनिषद[1] के अनुसार कृष्ण देवकी पुत्र ने घोर अंगिरस से शिक्षाएँ ग्रहण की। ऋग्वेद[2] के वर्णनानुसार कृष्ण नाम के एक वैदिक कवि थे जिन्होने अश्विनों से प्रार्थना की है। जैन परम्पराओं में कृष्ण २२ वें तिर्थकर नेमिनाथ के समकालीन माने गये है और जैनो के प्राक्–इतिहास के ६३ महापुरूषो के विवरण में लगभग एक–तिहाई भाग कृष्ण के सम्बन्ध मे ही है। महाभारत में कृष्ण–जीवन के बारे में विस्तृत रूप से लिखा हुआ है। महाभारत में वे यादव राजकुमार कहे गये है, वे पाण्डवों के गहरे मित्र थे, बडे भारी योद्धा थे, राजनीतिज्ञ एवं दार्शनिक थे। कतिपय स्थानो पर परमात्मा माने गये है और स्वयं विष्णु कहे गये हैं। हरिवंश, विष्णु, वायु, भागवत एव ब्रह्मवैवर्त पुराण मे कृष्ण–लीलाओं का वर्णन किया गया है, जो महाभारत में नही पाया जाता। पाणिनी[3] से स्पष्ट होता है कि इनके काल में कुछ लोग वासुदेवक एवं अर्जुनक भी थे, जिनका अर्थ है क्रम से वासुदेव तथा अर्जुन के भक्त। पतंजलि के महाभाष्य के वार्तिकों में कृष्ण सम्बन्धी व्यक्तियों एवं घटनाओं का वर्णन किया गया है– वार्तिक संहिता–६[4] में कस तथा बलि के नाम, वार्तिक संहिता–२ [5] में

---

[1] छान्दोग्योपनिषद, ३,१७,६

[2] ऋग्वेद ८,८५,३

[3] पाणिनी, ४,३,६८

[4] पाणिनी, वार्तिक स० २,३,६,१३८

'गोविन्द एवं वासुदेव एवं कृष्ण के नाम आये हैं। अधिकांश विद्वानों ने पतजलि को ई०पू० दूसरी शताब्दी का माना है। कृष्ण–कथाएँ उनसे भी पहले की है। दूसरी शताब्दी या पहली शताब्दी के घोसुण्डी अभिलेख मे कृष्ण को 'भागवत एवं सर्वेश्वर' कहा गया है। यही वर्णन नानाघाट अभिलेखो में भी है। बेस नगर के गरूड ध्वज अभिलेख मे वासुदेव को 'देव–देव' कहा गया है। ये प्रमाण यह सिद्ध करते है कि ई०पू० पाँच सौ के लगभग उत्तरी एवं मध्य भारत मे वासुदेव की पूजा प्रचलित थी।[६]

भविष्योत्तर पुराण[७] में कृष्ण ने स्वयं युधिष्ठिर से जन्माष्टमी व्रत के विषय में बताया है किं "मै स्वयं देवकी से भाद्र कृष्ण अष्टमी को उत्पन्न हुआ था, उस समय सूर्य सिह राशि में स्थित था और चन्द्र वृषभ में इस दिन रोहिणी नक्षत्र था।'

जन्माष्टमी व्रत और जयन्ती व्रत दोनो एक ही है या अलग–अलग इसमें मतभेद है। कालनिर्णय[८] ने दोनो के निमित्त (अवसर) पृथक होने के कारण तथा दोनों के नाम पृथक होने के कारण, दो अलग–अलग व्रत माना है, (प्रथम कृष्णपक्ष की अष्टमी है और दूसरी रोहिणी से सयुक्त कृष्णपक्ष की अष्टमी) और दोनो की विशेषताएँ भी पृथक है; क्योकि जन्माष्टमी व्रत में उपवास की व्यवस्था दी गयी है। इसके अतिरिक्त जन्माष्टमी व्रत नित्य है अर्थात जिसके न करने से पाप लगता है और जयन्ती व्रत नित्य एवं काम्य दोनों है, क्योंकि उसमें न करने से पाप लगता है और करने से अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। यहाँ एक ही श्लोक में दोनों के पृथक–पृथक उल्लेख है। इसके अतिरिक्त हेमाद्रि, मदनरत्न,

---

[५] पाणिनी वार्तिक सं०६–३,६,२६

[६] काणे, पी०वी० धर्म शास्त्र का इतिहास भाग–४, पृष्ठ ५३–५४

[७] भविष्योत्तर पुराण–४४/१–६६

[८] काल निर्णय पृष्ठ २०६

निर्णय सिन्धु आदि ने भी दोनो को भिन्न माना है। निर्णय सिन्धु[९] में वर्णित है कि इस काल मे लोग जन्माष्टमी व्रत ही करते है न कि जयन्ती व्रत। निर्णयसिन्धु[१०], कृत्यतत्त्व[११], तिथितत्त्व[१२], समयमयूख[१३] एवं काल निर्णय[१४] इत्यादि मे जन्माष्टमी व्रत के सम्पादन की तिथि एवं काल (समय) के विषय मे विस्तृत विवेचन किया गया है। इन सभी पुराणो एव जन्माष्टमी–सम्बन्धी ग्रन्थों से स्पष्ट होता है कि कृष्ण जन्माष्टमी का प्रमुख समय श्रावण कृष्ण पक्ष की अष्टमी की अर्धरात्रि है। (यदि पूर्णिमान्त होता है तो भाद्रपद मास में किया जाता है)। यह तिथि दो प्रकार की है–(१) बिना रोहिणी नक्षत्र की तथा (२) रोहिणी नक्षत्र वाली। तिथितत्त्व[१५] के अनुसार यदि जयन्ती (रोहिणी युक्त अष्टमी) एक दिन वाली है तो उसी दिन उपवास करनी चाहिए; यदि जयन्ती न हो तो उपवास रोहिणी युक्त अष्टमी को होना चाहिए, यदि रोहिणी से युक्त दो दिन हो तो उपवास दूसरे दिन किया जाना चाहिए, यदि रोहिणी नक्षत्र न हो तो उपवास अर्धरात्रि मे अवस्थित अष्टमी को होना चाहिए या अष्टमी अर्धरात्रि में दो दिनों वाली हो या यदि अर्धरात्रि में न हो तो उपवास दूसरे दिन किया जाना चाहिए। यदि जयन्ती बुध या मंगल को हो तो उपवास महापुण्यकारी होता है। और करोडों व्रतों से उत्तम माना जाता है।

जन्माष्टमी व्रत के विधि–विधान पर तिथितत्त्व[१६], समयमयूख[१७], कालतत्व विवेक[१८], व्रतराज[१९], धर्मसिन्धु[२०] आदि में भविष्योत्तर पुराण (अध्याय ५५) के आधार पर प्रकाश पडता है।

---

[९] निर्णय सिन्धु पृष्ठ १२६
[१०] निर्णय सिन्धु पृष्ठ १२८–१३०
[११] कृत्यतत्त्व पृष्ठ ४३८–४४४
[१२] तिथितत्त्व पृष्ठ ४७–५१
[१३] समयमयूख पृष्ठ ५०–५१
[१४] काल निर्णय पृष्ठ २१५–२२४
[१५] तिथित्तत्त्व पृष्ठ ५४
[१६] तिथितत्त्व–पृष्ठ ४२–४७

व्रत वाले दिन व्रत करने वाले को सूर्य, चन्द, यम काल दोनो सन्ध्याओ (प्रातः एवं साय), पचभूतों, दिन पवन, दिक्पालों, भूमि, आकाश, खचरो (वायु–दिशाओं के निवासियो) एवं देवो का आह्वान करना चाहिए, जिससे वे उपस्थित रहें।[२१] अपने हाथ में जल से भरा ताम्र पत्र लेकर उसमे कुछ फल, फूल, पुष्प, अक्षत लेकर संकल्प करना चाहिए कि–'मैं कृष्ण जन्माष्टमी व्रत कुछ विशिष्ट फल आदि तथा अपने पापों से छुटकारा पाने के लिए करूँगा। गोकुल की भॉति, गोप, गोपी, घण्टा, मृदङ्ग शंख और मांगल्य–कलश आदि से समन्वित तथा अलंकृत सूतिका–गृह के द्वार पर रक्षा के लिए खड्ग, कृष्ण छाग, मुशल आदि रखना चाहिए। दिवालों पर स्वास्तिक आदि मांगलिक चिन्ह बना देना चाहिए। देवों एवं गन्धर्वो के चित्र बनाने चाहिए (जिनके हाथ जुडे हुए हो) तथा वसुदेव (हाथ में तलवार से युक्त) देवकी, नन्द, यशोदा, गोपियां, कंस,–रक्षकों, यमुना नदी, कालिय नाग तथा गोकुल की घटनाओं से सम्बन्धित चित्र भी बनाने चाहिए। कंस के पहरेदारों को सूतिका गृह के आस–पास निद्रावस्था में चित्रित करना चाहिए। इस प्रकार अत्यन्त रमणीय नवसूतिका–गृह में देवी देवकी का स्थापन कर भक्ति से गन्ध, पुष्प, अक्षत धूप नारियल, दाडिम, ककडी, सुपारी, नारंगी आदि जो फल उस देश में उस समय प्राप्त हो उन सबसे पूजन करना चाहिए। व्रत करने वाले को मन्त्र के साथ देवकी व उनके शिशु श्री कृष्ण का ध्यान करना चाहिए तथा वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, बलदेव एवं चण्डिका की पूजा स्नान, धूप, गन्ध, नैवेद्य आदि के साथ एवं मन्त्रो के साथ करनी चाहिए। इसके बाद प्रतीकात्मक ढंग से जातकर्म, नाभिछेदन, षष्ठीपूजा एवं नामकरण

---

[१७] समयमयूख–पृष्ठ ५२–५७

[१८] कालतत्व विवेक पृष्ठ ५२–५६

[१९] व्रतराज पृष्ठ २७४–२७७

[२०] धर्म सिन्धु पृष्ठ ६८–६९

[२१] तिथित्व पृष्ठ ४५ एव समयमयूख पृष्ठ ५२ समययमूख पृष्ठ ५४ एव तिथित्व पृष्ठ ४५

आदि संस्कार करने चाहिए। अर्धरात्रि के थोडी देर बाद चन्द्रोदय के समय रोहिणी से युक्त चन्द्र को अर्ध्य मे शख से जल अर्पण होता है यह सब मन्त्र के साथ होता है। इस पश्चात व्रत करने वाले को चन्द्र को नमन करना चाहिए और दण्डवत झुक जाना चाहिए तथा वासुदेव के विभिन्न नामो वाले श्लोकों का पाठ करना चाहिए, और अन्त में प्रार्थनाएँ करनी चाहिए।[२२]

भविष्य पुराण [२३] के अनुसार आधी रात को घी और गुड़ से वसोर्धारा की आहुति देकर षष्ठी देवी की पूजन करना चाहिए। नवमी के दिन प्रात. काल भगवती का भी उत्सव करना चाहिए। इसके बाद ब्राह्मणों को भोजन कराकर उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिए और यह मन्त्र पढना चाहिए– यं देवं देवकी देवी वासुदेवादजीजनत्। भौमस्य ब्राह्मणों गुप्त्यै ब्रह्मात्मने नमः।।

इसके बाद पारण करके व्रत को समाप्त करना चाहिए। इस प्रकार जो भी देवी देवकी के इस महोत्सव को धूम–धाम से तथा पवित्र मन से करता है वह पुत्र, सन्तान, अरोग्य, धन–धान्य, सद्गृह, दीर्घ आयुष्य और राज्य तथा सभी मनोरथों को प्राप्त करता है। जिस देश में यह उत्सव सम्पादित किया जाता है वहॉ जन्म–मरण, आवागमन की व्याधि, अवृष्टि तथा इति–निति आदि का कभी भय नहीं रहता है। जिस घर में यह व्रत किया जाता है, वहॉ अकाल मृत्यु नहीं होती और न गर्भपात होता है तथा नही वैधव्य, दुर्भाभाग्य एव कलह नहीं होता। जो एक बार भी इस व्रत को करता है, वह विष्णु लोक को प्राप्त होता है। इस व्रत के करने वाले संसार के सभी सुखों को भोगकर अन्त में विष्णु लोक में निवास करते है।[२४]

---

[२२] दण्डवत प्रणाम करते समय यह मन्त्र है– शरण तु प्रमद्येह सर्वकार्थसिद्ध ये प्रणमामि सदा देव वासदेवं जगत्पतिम्।।

[२३] भविष्यपुराण पृष्ठ २२६–३२७

[२४] भविष्य पुराण, अध्याय ५५

भगवान श्री कृष्ण के जन्म की कथा भविष्य पुराण में इस प्रकार दी गई है——

यदुवश मे वसुदेव नाम से विख्यात एक क्षत्रिय थे, जो शूरसेन के पुत्र थे। उसी समय भोजकुल में देवक की एक पुत्री थी, जिसका नाम देवकी था। वसुदेव देवकी से विवाह करके अपने रथ से निवास स्थान को प्रस्थान किये, उस समय कंस जो कि देवकी का भाई था सारथी बन कर रथ हॉक रहा था। इतने में ही आकाश वाणी हुई कि 'शत्रु दमन कस'। जिस देवकी को तुमने लिये जा रहे हो, उसका ऑठवा गर्भ तुम्हारा घातक होगा।' यह दिव्यवाणी सुनकर कस ने तलवार खीच ली और बहन देवकी को मारने के लिए उद्दत हुआ। यह देख वसुदेव ने कहा' कंस' इससे जो सन्तानें पैदा होगी, उन सबको मै तुम्हे दे दुंगा। यह तुम्हारी बहन है, इसको मत मारो। इससे तो तुम्हे कोई भय नही है।' यह सुनकर कंस ने बहन और बहनोई को मारने का विचार छोड दिया और उनके पैरों मे बेडियॉ डालकर कारागार में बन्द कर दिया। इसके पश्चात बहुत समय बीतने पर देवकी ने क्रमश· छः पुत्रों को जन्म दिया और कस ने उनका वध कर डाला। सातवें पुत्र के रूप मे साक्षात भगवान शेष ने देवकी के गर्भ में आये। उस समय भगवान विष्णु की आज्ञा से माया देवी ने उस गर्भ को रोहिणी के उदर मे स्थापित कर दिया। रोहिणी उन दिनों नन्द गोप के घर में निवास करती थी। लोगो में यह विश्वास फैल गयी कि देवकी का सातवाँ गर्भ गिर गया। इसके पश्चात् स्वय विष्णु ने आठवाँ गर्भ होकर देवकी की कुच्छि में प्रवेश किया। दस महीने बीत जानें पर अविनाशी श्री हरि देवकी के उदर से प्रकट हुए, जो कृष्ण नाम से विख्यात हुए। जन्म के समय वे शंख, चक्र, गदा और खड्ग से सुशोभित चतुर्भुज में दृष्टिगोचर हुए। सर्वेश्वर भगवान् श्री हरि के देखकर वसुदेव जी ने इस प्रकार उनका स्तवन किया।

"प्रभो! आप हीं सम्पूर्ण विश्व के रूप मे विराजमान है। आप ही इस विश्व के पालक है, इसकी उत्पत्ति के स्थान भी आप ही है, यह सम्पूर्ण विश्व आप मे ही स्थित है। भगवन्! आप ही प्रवृत्ति, महतत्त्व, विराट्, स्वराट् और सम्राट सब कुछ है। इस प्रकार आप का तेज सम्पूर्ण जगत का कारण भूत है, आपके पराक्रम कोई सीमा नही है। आप साक्षात् नारायण है। आपको नमस्कार है। शार्ङ्ग धनुष, सुदर्शन चक्र, नन्दक खड्ग और कौमोदकी गदा धारण करनें वाले हैं, आपको नमस्कार है। अत्यन्त मनोरम रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार हैं।''

इस प्रकार स्तुति करने वाले वसुदेव और देवकी को भी प्रसन्न करते हुए भगवान श्री हरि ने कहा 'माता और पिता जी आप दोनो भयभीत न हो, मै कंस का वध करूगाँ। नन्द गोप की पत्नी यशोदा ने एक पुत्री को जन्म दिया है। वह सब लोकों को मोहने वाली मेरी माया ही है। आप मुझे ले जा कर यशोदा की शैय्या पर सुला दें और उनकी पुत्री को लाकर देवकी की शैय्या पर सुलाढें' अतः वसुदेव ने वैसा ही किया। देवकी की शैय्या पर सोते ही मायावती पुत्री रोने लगी। बालक की आवाज सुनकर कृष्ण सूतिकागृह में घुसकर उस कन्या को ले लिया। उसके मन में थोडा भी लज्जा और दया नही थी, उसने उस बालिका को पत्थर पर पटक दिया। उसके हाथ से छूटते ही बालिका आठ बडी–बड़ी भुजाओं वाली, अस्त्र–शस्त्रों से युक्त महादेवी के रूप में प्रकट हुई, और अत्यन्त कुपित होकर बोली–'अरे पापात्मा कंस! और दुर्बुद्धे! रे मूर्ख! तेरे प्राणो को हरने वाला शत्रु कहीं न कहीं उत्पन्न हो गया है। अव तू अपनी उस मृत्यु रूप उस शत्रु की खोज करता रह।' यह कह कर देवी दिव्य स्थानों में चली गयी। देवी का वचन सुनकर कंस अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसने अपने शत्रु को खत्म करने के लिए अन्य बालकों को भी सताया, उसने उन्हें खत्म

करने के लिए पूतना आदि बालग्रहो को भिन्न–भिन्न स्थानों मे भेजा। वे सभी बाल ग्रह जब नन्द के गोकुल में गये तब श्री कृष्ण के द्वारा मारे गये। कंस अपने कार्य मे कामयाब नही हो सका। समय बीतता गया, कृष्ण और बलभद्र गोकुल में बढ़कर सयाने हो गये। उन्होने अनेक प्रकार की बाल क्रिडाएँ की। कुछ काल तक दोनो भाई बाँसुरी बजाते हुए गॉए चराते रहे। उस समय वे वन में गुंजा और तपिच्छ के आभूषण धारण करते थे। इस प्रकार बलराम और श्री कृष्ण दिर्घ–काल तक नाना प्रकार की लालाएँ करते रहे।

एक समय कंस ने अक्रूर को भेजकर बलराम और कृष्ण को मथुरा बुलाया। बलराम और श्री कृष्ण को लाकर अक्रूर जी पुरी में गये और कंस से मिलकर सब समाचार बताया। इसके बाद दूसरे दिन कृष्ण और बलराम मथुरापुरी मे आये। कृष्ण ने बलराम के साथ धनुषशाला में जाकर दृढ़ प्रत्यंचावाले बडे भारी धनुष को देखा और रक्षकों को दूर भगा कर लीलापूर्वक उस धनुष को हाथ में ले लिया। जब धनुष की प्रत्यनचा चढाये तो धनुष टूट कर दो टुकडे में हो गयी। धनुष टूटनें की आवाज सुनकर आये हुए रक्षकों को कृष्ण और बलराम ने मार गिराया। तत्पश्चात् रंगशाला के द्वार पर खड़े हुए कुवलयापीड नामक हाथी को मारकर महान बल और पराक्रम से युक्त बलराम तथा श्री कृष्ण ने उसके दोनों दाँत उखाड लिए। उन दोनों ने चाणूर, मुष्टिक, बल तथा दूसरे प्रमुख पहलवानों को मारकर परमधाम को पहुँचा दिया। इसके पश्चात वे कस के ऊँचे आसन के सामनें इस प्रकार उपस्थित हुए जैसे दो सिंह किसी तुच्छ मृग के पास खडे हो गये हो। तदन्तर कृष्ण ने कंस के पैर पकड़ कर बड़े वेग से आकाश में घुमाया जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इस प्रकार कंस को मारकर कृष्ण ने अत्यन्त दुख भोगने वाले अपने माता–पिता को कारागार से मुक्त किया तथा मथुरा के राज्य पर उग्रसेन को स्थापित किया।

श्री कृष्ण द्वारा कंस के मारे जाने की खबर सुनकर वसुदेव के अन्य बन्धु–बाधव, जो पहले कंस द्वारा पीडित होकर अन्यन्त्र चले गये थे, मथुरापुरी मे लौट आये।[२५]

श्री कृष्ण ने धरती के अनेक दुष्ट आत्माओं को खत्म किया। शिशुपाल जरासंध आदि कस के मित्रों को मारकर उन्होने मथुरावासियों को अत्यन्त सुखी कर दिया। कृष्ण ने युधिष्ठिर की सहायता कर दुर्योधनादि अत्याचारी राजाओं का नाश किया जिसका वर्णन महाभारत में विस्तृत रूप से मिलता है। जिसके अनुसार अत्याचारी कौरवों को पराजित कर धर्म–संस्थापन के कार्य का वर्णन है। इस प्रकार उनका सारा जीवन परोपकार, प्रजारंजन, प्रजारंक्षण और धर्म संस्थान मे ही व्यतीत हुआ। महाभारत मे कृष्ण एक आदर्श दूत और प्रचण्ड कूटनीतिज्ञ के रूप मे दिखलाये गये है। जब अर्जुन को अपने सगे सम्बन्धियो को शत्रु के स्थान पर देखकर मोह हुआ था तब श्री कृष्ण ने गीता का उपदेश देकर उनका मोह दूर किया था और उन्हे लडने के लिए तैयार किया था। बाद में जयद्रथ वध या द्रोडा चार्य के वध के लिए तथा कर्ण को पराजित करने के लिए श्री कृष्ण ने जिस अद्‌भूत चातुरी तथा कूटनीति से काम लिया यह महाभारत में सुन्दर ढंग से वर्णित है। महाभारत में पाण्डुओं को विजयश्री श्रीकृष्ण की ही बुद्धिमानी और राजनीति–पटुता का फल है। अपने जीवन के अन्तिम समय में श्री कृष्ण मथुरा छोडकर द्वारका चले गये और वही द्वारावती नामक नगरी बसायीं। यहीं पर उनके बाल–सखा सुदामा उनसे मिले जिन्हे उन्होंने प्रचुर धन–धान्य देकर उनकी चिरकालिक दरिद्रता को सदा के लिए दूर कर दिया। इस प्रकार कृष्ण का जीवन चरित्र अद्‌भूत और अलौकिक है। भगवान कृष्ण को कभी हम माखन और रोटी के लिए 'आरि' करते हुए पाते हैं, तो कभी ग्वालो के साथ गाय चराते हुए कभी गोपियों के साथ रास लीला करते

---

[२५] स्कन्द पुराण–पृष्ठ ४२३–४२४

हुए तो कभी यमुना के तीर पर वंशी बजाते हुए। कभी वे गोपी–चीर हरैया के रूप मे दिखाई पडते है, तो कभी नाग–नथैया के रूप में। कभी हम उन्हें दुर्योधन से सन्धि करने के लिए युधिष्ठिर का अग्रदूत बन जाते हुए देखते है तो कभी समर–भूमि में विमनस्क अर्जुन को भगवद्गीता का उपदेश देते हुए एक दार्शनिक के रूप में भी पाते है। जयद्रथ वध के समय सूर्य को अपने सुदर्शन चक्र छिपाते हुए उन्हे हम चतुर पुरूष के रूप में पाते है तो कभी द्रोणाचार्य के वध के लिए उपाय बताते हुए कुटिल राजनीतिज्ञ के रूप में सामने आते है। कभी कंस का वधकर दुष्टों के दमन–कर्ता तो कभी गोवर्धन पर्वत को उँगली पर उठाकर लोक रक्षक के रूप मे सामने आते है। कभी वे अर्जुन के रथ पर बैठे चतुर सारथी के रूप में, तो कभी सुदर्शन चक्र को धारण करने वाले महायोद्धा के वेश में। इस प्रकार कृष्ण के जीवन में हमें वह अलौकिकता दिखाई पडती है जो अन्य किसी में उपलब्ध नहीं है।[२६]

कृष्ण जन्माष्टमी का त्यौहार हमारा पुण्य पर्व है। यह भगवान श्री कृष्ण के जन्म की पवित्र तिथि है। यह त्यौहार वर्तमान समय में भी बड़े धूम–धाम से मनाया जाता है। मन्दिरों में श्री कृष्ण की सुन्दर झाँकी सजाई जाती है। दिन भर लोग उपवास रहते है, परन्तु कुछ लोग फलाहार भी करते है। रात्रि को मन्दिर में एक बडा खीरा रख दिया जाता है, और जब रात्रि के बारह बजते है तो समझ लिया जाता है कि कृष्ण का जन्म हो गया और तब शंख, घंट आदि बजाकर भगवान के जन्मोत्सव को मनाते है। इसके पश्चात् फल, पंजीरी, पंचामृत आदि का प्रसाद लेते है और भगवान का दर्शन कर अपने घर जाते है। मथुरा तथा वृन्दावन में जन्माष्टमी का त्यौहार बड़ें ही धूम–धाम से मनाया जाता है। यहाँ के मन्दिरो में श्री कृष्ण की अपूर्व झाकियाँ इस समय दर्शन करने को मिलती है जो अन्य दिनों दुर्लभ है।

---

[२६] उपाध्याय गौरी शंकर, व्रत–चन्द्रिका, पृष्ठ–५१–५८

गणेश चतुर्थी

भाद्रपक्ष के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को गणेश चतुर्थी का उत्सव किया जाता है। गणेश हिन्दुओ के आदिम देवता हैं। यद्यपि ये भगवान शकर और पार्वती के पुत्र कहे जाते हैं, तथापि गणेश की पूजा एवं प्रतिष्ठा सबसे पुरानी है। सनातन धर्मानुयायी स्मार्तो के पंचदेवताओ मे गणेश प्रमुख है। गणेश, विष्णु, शकर, सूर्य और भगवती देवी—ये पच देव कहे गये हैं। इनमे सबसे प्रथम गणेश जी की पूजा की जाती है। हिन्दुओं के घर में चाहे जैसा भी उत्सव, पूजा, क्रिया—कर्म हो, सर्वप्रथम गणेश का आवाहन् और पूजन किया जाता है, तदनन्तर अन्य देवी—देवताओ का।

कालनिर्णय[1] एवं निर्णय सिन्धु[2] मे आया है कि इसका सम्पादन मध्याह्न में होता है। यदि चतुर्थी तिथि तृतीया और पचमी से संयुक्त हो, तब मध्याह्न में। चतुर्थी हो तो तृतीया से संयुक्त चतुर्थी मान्य होती है। यदि मध्याह्न मे चतुर्थी न हो, किन्तु दूसरे दिन पंचमी—संयुक्त मध्याह्न मे हो, तो परविद्धा (आने वाली पंचमी से युक्त) को ही उत्सव होता है।

गणेश विघ्नों को दूर करने वाले देवता है। इनका मुख हाथी का है, उदर लम्बा है तथा शेष शरीर मनुष्य के समान है। भूतप्रेत—गण इनके सेवक हैं। मोदक इन्हें विशेष प्रिय है और भक्तों के विशुद्ध हृदय की प्रार्थना पर वे द्रवित हो उठते है।

सोने, चॉदी, तॉबे अथवा मिट्टी की रंगी हुई एक प्रतिमा ली जाती है। उसमें गणेश की प्राण—प्रतिष्ठा की जाती है। सोलह उपचारों के साथ विनायक की पूजा होती है। चन्दन से युक्त दो दूर्वादल प्रत्येक दस नामों से समर्पित

---

[1] काल—निर्णय पृष्ठ १८१

[2] निर्णय—सिन्धु पृष्ठ १३३

किये जाते है। इस प्रकार कुल बीस दूर्वादलो का प्रयोग होता है। उसके उपरान्त दसों नामों को एक साथ लेकर इक्कीसवॉ दूर्वादल समर्पित होता है। ये दस नाम इस प्रकार है—गणाधिप, उमापुत्र, विघ्नाशक, विनायक, ईशपुत्र, सर्वसिद्धि दाता, एक—दन्त, इभवक्त्र, मूषक—वाहन तथा कुमार गुरू। एक दूर्वा नैवेद्य रूप मे, दस ब्राह्मणों को तथा दस को स्वयं व्रती या उसका कुटुम्ब खाता है। यदि भाद्रपद के कृष्णपक्ष की चतुर्थी रविवार या मगलवार को पडती है, तो उसे 'महती' चतुर्थी कहते है।[३]

ध्यान के लिए गणेश जी का जो स्वरूप निर्धारित है, वह इस प्रकार है— उन सिद्धिविनायक का ध्यान रखना चाहिए जो एक दॉत वाले हैं। जिनके कर्ण सूप के समान है। जो नाग का जनेऊ धारण करते है और हाथो में पाश एव अंकुश धारण करते है।[४]

पूजन चतुर्थी के मध्याह्न मे करना चाहिए। फिर सन्ध्या के समय जब चन्द्रमा का उदय हो जाय, तो बिना चन्द्र का दर्शन किये ही चन्द्रमा का यथाविधि पूजन करना चाहिए। वर्तमान में ऐसी मान्यता है कि जो कोई इस गणेश—चतुर्थी को चन्द्र का दर्शन कर लेता है, उस पर चोरी आदि का झूठा अभियोग लग जाता है। यदि कोई त्रुटि—वश चन्द्र—दर्शन कर लेता है, तो उसे इस अभियोग के प्रतिफलों से छुटकारा पाने के लिए उसे उस पद्य का पाठ करना चाहिए जो एक दाई द्वारा बच्चे से कहा गया था— "एक सिंह ने प्रसेनजित् को मारा। सिंह को जामवन्त ने मार डाला। मत रोओ हे कुमार ! यह तुम्हारी स्यमन्तक मणि है।" इसका वर्णन हेमाद्रि[५], कालनिर्णय[६], हरिवंश[७],

---

[३] धर्म सिन्धु—पृष्ठ ७२
[४] निर्णय सिन्धु पृष्ठ १३३ एव स्मृति कौ० पृष्ठ २१०
[५] हेमाद्रि व्रत भाग—१,पृष्ठ ५२६—५३०
[६] काल निर्णय पृष्ठ ६८१

गणेश जी का पूजन करने से बुद्धि और ऋद्धि–सिद्धि की प्राप्ति होती है। विघ्न बाधाओं का भी समूल नाश हो जाता है। इस सम्बन्ध में प्रचलित कथा इस प्रकार है–

एक बार महादेव जी स्नान करने के लिए भोगावती गये। उनके जाने के पश्चात् पार्वती ने इस विचार से कि कोई पर पुरूष आश्रम मे न आ जाय अपने शरीर की मैल से एक पुतला बनाया और उसे अमृत–सिचित जल मे डालकर सजीव बना लिया। उसका नाम गणेश रखा। पार्वती ने उससे कहा हे पुत्र, तुम एक मुग्दर लेकर द्वार पर बैठ जाओ, मै भीतर स्नान कर रही हूँ। जब तक मै स्नान न कर लूॅ, तब तक तुम किसी भी पुरूष को भीतर मत आने देना।

भोगावती मे स्नान करने के बाद भगवान शकर आये तो गणेश जी ने उन्हें द्वार पर ही रोक दिया। इसे शंकर जी ने अपना अपमान समझा और क्रोधित होकर उनका सिर धड से अलग कर के भीतर चले गये। पार्वती जी ने उन्हे नाराज देखकर समझा कि भोजन में विलम्ब होने के कारण महादेव जी नाराज़ है। इस लिए उन्होने तत्काल दो थालियों में भोजन परोसकर शिव जी को बुलाया। तब दूसरा थाल देखकर तनिक आश्चर्य चकित होकर शिव जी ने पूछा– यह दूसरा थाल किसके लिए है?

पर्वती बोली "पुत्र गणेश के लिए जो बाहर द्वार पर पहरा दे रहा है।" यह सुनकर शिव जी अधिक आश्चर्य चकित हुए, कि तुम्हारा पुत्र पहरा दे रहा है?

"हाँ नाथ, क्या आपने उसे देखा नही?" शिवजी ने कहा देखा तो था किन्तु मैनें तो अपने रोके जाने पर उसे कोई उद्दण्ड बालक समझ कर उसका सिर काट दिया। यह सुनकर पार्वती जी बहुत दुखी हुईं। वे विलाप करने लगीं

तब पार्वती जी को प्रसन्न करने के लिए भगवान शिव ने एक हाथी के बच्चे का सिर काटकर बालक के धड़ से जोड दिया। पार्वती जी इस प्रकार पुत्र गणेश को पाकर बहुत प्रसन्न हुई। उन्होने पति व पुत्र को प्रीति पूर्वक भोजन कराकर बाद मे स्वयं भोजन किया। इस दिन भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी थी। इस लिए इस तिथि को गणेश चौथ के नाम से भी मनाया जाता है।

पौराणिक कथाओं में गणेश के जन्म और विभिन्न भंगिमाओ का भिन्न–भिन्न प्रकार का वर्णन मिलता है। एक पौराणिक कथानुसार पार्वती का शिव के विवाहोपरान्त सम्बन्ध निष्फल होने के कारण एक पुत्र की चाह से उन्होंने भगवान विष्णु की। पूजा की फलस्वरूप विष्णु ने सभी देवताओं से भिन्न स्तर के देवता–स्वरूप पार्वती के पुत्र के रूप में जन्म लिया। पार्वती पुत्र के जन्म के पश्चात् स्वर्ग के सभी देवताओ को प्रीतिभोज में आमन्त्रित किया, लेकिन शनि देवता ने न तो बच्चे को देखा और न ही मॉ को बधाई दी। शनि को चिन्तित देखकर पार्वती ने पूछा ऐसा क्यो? शनि अपनी पत्नी के शाप से विकलांग हो गये थे। वह जिसको देखकर खुश होते थे, वह वस्तु टुकड़े में बिखर जाती थी। इस पर पार्वती ने कहा मेरा बच्चा स्वयं विष्णु है, इसको देखें। शनि की आखों का प्रकाश पडते ही सुन्दर अद्‌भुत बच्चे का सिर आकाश में उड गया। जिससे कुपित पार्वती ने शनि को भयंकर दानव होने का शाप दिया। देवताओं ने हर दिशा में सिर को खोजा किन्तु वह नही मिला। पार्वती निर्जीव शिशु को जीवित करने के लिए विलाप करने लगी। तभी एक हाथी के सिर को काट कर पार्वती के पास लाया गया और जब इसको निर्जीव शरीर पर रखा गया तो बच्चा जी उठा। बच्चे के सजीव होने के बाद भी पार्वती खुश नहीं हुई। इस पर शिव ने इसको महान बनाने के लिए अपनी सेना का प्रतिनिधित्व दिया, जिससे पार्वती संतुष्ट हुई, और बच्चे का नाम गणेश (गणों का ईश) रखा।

गणेश समृद्धि के देवता है। विघ्न बाधाओ को दूर करने के कारण हर–वर्ष उन्नति हेतु सभी धार्मिक हिन्दुओं द्वारा गणेश की पूजा गणेश–चतुर्थी के दिन, फल, दूध, मेवा, पकवान आदि द्वारा की जाती है।[१३]

शिव जी ने पुत्र का नाम गजानन, रखा। सब देवताओ और मुनियों ने मिलकर गणेश जी का स्तवन किया। देवता बोले भगवान आपको नमस्कार है। आप देवताओं के ईश्वर तथा गणो के स्वामी है। अपको नमस्कार है। गजानन! आप महादेवजी के भी अधि देवता है। आपको नमस्कार है। गणाध्यक्ष! आप भक्तिप्रिय देवता है, आपको नमस्कार। इन शुभ स्त्रोत्रों द्वारा स्तुति करने पर गणों के स्वामी गणेश जी अत्यन्त प्रसन्न होकर इस प्रकार बोले–देवताओं! मै तुम से बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम कोई मनोवाछित वस्तु माँगो। मै तुम्हे देता हूॅ। देवता बोले महाभाग! आप यहीं रहकर हमारा कार्य–साधन करें। धर्मारण्य मे रहने वाले ब्राह्मण, वैश्यजन, धार्मिक पुरूष तथा वर्णाश्रम से भिन्न मनुष्यों को भी आप सदा सरक्षण दें। आपके प्रसाद से यहॉ के ब्राह्मण और महाबली वैश्य सदा धन और सुख से सम्पन्न हो। जब तक सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी रहे, तब तक आप यहीं रहकर सबकी रक्षा करते रहें। गणेश जी 'एवमस्तु' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लिए। तब देवताओ ने हर्ष में भरकर गणेश जी का पूजन किया। संसार के दूसरे लोगो ने भी विघ्न–निवारण के लिए उनकी पूजा की। इसलिए गणेश जी विवाह, उत्सव और यज्ञ में पहले पूजित होते है। धर्मारण्य में रहने वाले लोगों पर वे सर्वदा प्रसन्न रहते है।[१४]

गणेश चतुर्थी तीन प्रकार की होती है– शिवा, शान्ता और युघा। भाद्रपद मास की शुक्ल चतुर्थी 'शिवा' है। इस दिन जो स्नान, दान, उपासना, जप आदि

---

[१३] थामस, पी०फेस्टिवल ऐण्ड बी हॉलिडे आफ इण्डिया पृष्ठ–६–१०

[१४] गरूड़पुराण (सम्पादक हनुमान पोद्दार, चिम्मन लाल गोस्वामी, एम्०ए०शास्त्री) गीता प्रेस, गोरखपुर पृष्ठ स०–४७२–४७३

सत्कर्म किया जाता हैं, वह गणपति के प्रसाद से सौ गुना हो जाता है। इस चतुर्थी को गुण, लवंग अदि का दान करना चाहिए, यह शुभकर माना गया है और गुण के अपूपों (मालपूआ) से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए तथा उनकी पूजा करनी चाहिए।

माध मास के शुक्ला चतुर्थी को 'शान्ता' कहते है। यह शान्ता तिथि नित्य शान्ति प्रदान करने के कारण 'शान्ता' कही गयी है। इस दिन किये हुए स्नान–दानादि सत्कर्म गणेश जी की कृपा से हजार गुना फल दायक हो जाते है। इस शान्ता नामक चतुर्थी तिथि को उपवास कर गणेश जी का पूजन तथा हवन करना चाहिए, और लवण, गुड, शाक तथा गुड के पुए ब्राह्मणों को दान में देना चाहिए। इस व्रत के करने से अखण्ड सौभाग्य की प्राप्ति होती है, समस्त विघ्न दूर होते हैं और गणेश जी की कृपा प्राप्त होती है।

किसी भी महीने के भौमवार युक्त शुक्ल पक्षीय चतुर्थी को 'सूखा' कहते है। यह व्रत स्त्रियों को सौभाग्य, उत्तम रूप, और सुख देने वाला है। भगवान शंकर एंव माता पार्वती के संयुक्त तेज से भूमि द्वारा रक्त वर्ण के मंगल की उत्पत्ति हुई। भूमिका पुत्र होने से वह भौम कहलाया और कुज रक्त, वीर आदि नामों से प्रसिद्ध हुआ। वह शरीर की रक्षा करने वाला तथा सौभाग्य आदि देने वाला है, इसी लिए अंगारक कहलाया। जो पुरूष अथवा स्त्री भौमवार युक्त शुक्ला चतुर्थी को उपवास करके भक्तिपूर्वक प्रथम गणेश जी का तदनन्तर रक्त चन्दन, रक्त पुष्प आदि से भौम का पूजन करते है, उन्हे सौभाग्य और उत्तम रूप–सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।[१]

गणेश हमारे बहुत ही प्राचीन देवता है। जिस प्रकार हम लोग किसी शुभ कार्य में पहले गणेश जी की पूजा करते है उसी प्रकार वैदिक आर्य भी किया

करते थे। वेदो में इनका 'ब्रह्मणस्पति' के नाम से वर्णन आता है। वहाँ वे गणों के पति के रूप में दिखलाये गये हैं। उपनिषदों मे'दन्ती' के रूप मे स्मरण किये गये है। और इनको वक्र तुण्ड (टेढी सूंड वाला) कहा गया है।

गणेश अर्थात् सब देवताओं के अग्रणी या नेता। अतः उनकी पूजा सर्वप्रथम होनी स्वाभाविक ही है। महाराष्ट्र में गणपति उत्सव आज भी बहुत भव्य रूप मे मनाया जाता है। महाराष्ट्र में गणेश –उत्सव एक राष्ट्रीय पर्व के रूप में प्रतिष्ठित है। गणेश जी बुद्धि के देवता है और वह भी रचनात्मक बुद्धि के। गणपति की पूजा केवल मनुष्य मात्र तक सीमित नही है। वह ऐसे देव है, जिनकी पूजा अनादि काल से होती आयी है। गणेश जी ऐसे देव है जिनकी पूजा करने का लोभ देवता भी नहीं छोड सकते। भगवान शंकर जी और पार्वती जी का विवाह सस्कार भी गणेश जी की पूजा के साथ ही सम्पन्न हुआ था। वही गणेश कालान्तर मे उनके पुत्र बने। ऐसे कौन से देव है जिसने ऐसे महान कार्य किये हो, पहले जिसकी पूजा हुई हो और बाद में वही उनका पुत्र बन गया हो। ऐसी मान्यता है कि शिव और पार्वती के विवाह संस्कार में गणेश जी की पूजा के विधान से ही विवाह संस्कारों मे गणेश जी की पूजा होने लगी। एक बार नारद ने ब्रह्म से प्रश्न किया कि क्या ऐसा सम्भव है कि पुत्र के जन्म से पहले ही उसकी आराधना होने लगे? ब्रह्मा जी बोले हे नारद! गणेश जी विष्णु भगवान के ही समान हैं। वे अलग–अलग पाँच देवताओं में बैठे हुए है। जितने भी ग्रह,नक्षत्र और राशियाँ है, सब गणेश जी के ही अंश है। गणेश जी की पूजा मानस पूजा है। मन, वचन और कर्म से पवित्र होकर अनुष्ठान करने से गणेश की असीम अनुकम्पा होती है। गणेश जी बुद्धि के देवता है और वह भी विवेचनात्मक बुद्धि के। वर्तमान समय में अन्धविश्वास, पुरानी रूढ़ियाँ, एवं कुत्सित परम्पराएँ चारो तरफ फैली हुई हैं। अतः विवेचनात्मक बुद्धि तथा विचारशीलता का सहारा लेकर इन को दूर करना चाहिए। अतः वर्तमान में गणेश जी का व्रत एवं पूजन करना अत्यन्त आवश्यक है।

षष्ठ अध्याय

शरद ऋतु एवं शिशिर ऋतु के उत्सव

नवरात्र (दुर्गोत्सव)

विजयादशमी (दशहरा)

दीपावली

मकर संक्रान्ति

नवरात्र (दुर्गोत्सव)

नवरात्र–महोत्सव आसुरी शक्ति पर दैवी शक्ति के विजय का प्रतीक है। हमारे देश में नवरात्र के समान दीर्घकालव्यापी एवं आध्यात्मिक, भौतिक तथा नैतिक शक्तियों को जागृत करने की एक समान प्रेरणा देने वाला पर्व, कोई अन्य नहीं है। नवरात्र शक्ति की अधिष्ठात्री देवी दुर्गा के नवरूपों की पूजा के नव दिनो अर्थात् नवरात्रियों के समूह को कहते है। पौराणिक काल से पूर्व विधिवत् रूप से महादेवी की विद्‌यमानता–विषयक समुचित प्रमाण दिखाई देते हैं। मातृदेवी की उपासना से सम्बन्धित संकेत वैदिक साहित्य से ही प्राप्त होते हैं।

सम्पूर्ण भारत मे आश्विनशुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि से लेकर नवमी तक दुर्गापूजा का उत्सव जिसे 'नवरात्र' भी कहते हैं, किसी न किसी रूप में मनाया जाता है। कुछ ग्रन्थो में व्यवस्था दी गयी है– दुर्गोत्सव शरद् (आश्विन शुक्ल) एवं वसन्त (चैत्र शुक्ल) दोनों मास में अवश्य किया जाना चाहिए। परन्तु आश्विन का दुर्गोत्सव ही अधिक उत्साह एव उमंग के साथ आयोजित होता है। नवरात्र में दुर्गा पूजा के विषय में कई विकल्प प्राप्त हैं यथा –

(१) पूर्णिमान्त आश्विन के कृष्णपक्ष की नवमी से लेकर अश्विन शुक्ल की नवमी तक।
(२) आश्विन शुक्ल की प्रथमा से नवमी तक
(३) षष्ठी से नवमी तक
(४) सप्तमी से नवमी तक
(५) महाष्टमी से नवमी तक
(६) महाष्टमी के अवसर पर
(७) महानवमी के अवसर पर[१]

[१] काणे पी.वी धर्मशास्त्र का इतिहास भाग ४, पृष्ठ ६३

आधुनिक भारत मे नवरात्र की दुर्गापूजा अश्विन प्रतिपक्ष से प्रारम्भ हो कर नवमी तक होती है। दशमी को देवी का विसर्जन होता है।[2]

प्रचलित परम्परा के अनुसार देवताओं का एक दिन मनुष्य के एक साल के बराबर होता है। जिस समय सूर्य उत्तरायण रहता है, उस समय देवताओ का दिन तथा जिस समय सूर्य दक्षिणायन रहते हैं उस समय देवताओं की रात्रि रहती है। इस कारण आश्विन एव कार्तिक महीने मे जब शरद् ऋतु का आगमन होता है उस समय देवताओ की रात्रि होती है। ऐसे मे स्तुति का उचित समय मध्य–रात्रि मे वर्जित है। इसके अतिरिक्त जिस देवता की हम स्तुति करने जा रहे होते है वह निन्द्रा में रहते हैं। ऐसे असुविधा–जनक समय मे देवताओं की आराधना करने से पहले उन्हे जगाया जाय। इस जगाने की प्रक्रिया को बोधना कहते हैं।[3]

इस अवसर पर वर्षा ऋतु समाप्त हो जाती है। बाड़ों का पानी थम जाता है एवं धान्य कोष्ठागार में रख दिये जाते हैं। सम्भवतः प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए इस व्रत के पर्व का आयोजन किया जाता है। कतिपय लोगों ने इसे कृषि का उत्सव माना है। भारतवर्ष के अनेक भागों में नये आगमन के उपलक्ष्य में विविध प्रकार के कृत्य आयोजित किये जाते हैं।

यह पूजा नित्य एवं काम्य दोनों है। कालिकापुराण[4] में व्यवस्था दी गयी है कि जो प्रमाद, छल, भत्सर या मूर्खता के वश में आकर दुर्गोत्सव नही करता, उसकी सभी आकाँक्षाएँ क्रुद्ध देवी द्वारा नष्ट हो जाती हैं। यह काम्य भी है, क्योंकि दुर्गोत्सव करने से फलों की प्राप्ति भी होती है। देवी पुराण[5] में आया है कि 'यह एक महान एवं पवित्र व्रत है, जो महान सिद्धियॉ देता है। सभी शत्रुओं

---

[2] जैन एस.व्रत और त्योहार पृष्ठ ७०

[3] शास्त्री ए.एन.दुर्गापूजा भाग–१० पृष्ठ ६४

[4] कालिका पुराण पृष्ठ ६३,१२

[5] देवी–पुराण (हेमाद्रि व्रत, भाग–१, पृष्ठ ९०१

को नष्ट करता है, सभी लोगो का उपचार करता है। विशेषतः वह पुनीत यज्ञो के लिए ब्राह्मणों द्वारा, भूमिपालन हेतु क्षीत्रयों, गोधन के लिए वैश्यो, पुत्रों एव सुखो के लिए शूद्रो, सौभाग्य के लिए नारियो, अधिक धन के लिए धनिकों द्वारा सम्पादित होता है।

यह दुर्गापूजा सभी लोगों द्वारा सम्पादित की जा सकती है। दुर्गापूजा का सामूहिक रूप भी है। यह केवल धार्मिक व्रत ही नही इसका सामाजिक महत्व भी है।

हिन्दू–धर्म मे देवी–पूजा अत्यन्त प्राचीन काल से प्रचलित है। ऋग्वेद के दशम मण्डल का एक पूरा सूक्त ही शक्ति की उपासना में विवृत है। मै ही रूद्र का धनुष, ब्रह्मा के द्वेषियों को मारने के लिए चढाती हूँ तथा पृथ्वी और आकाश सर्वत्र व्याप्त हूँ।[६] वह अन्यत्र कहती है– मै सम्पूर्ण जगत की अधिाश्वरी हूँ, अपने भक्तो को धन प्रदान करने वाली देवी–देवताओं में प्रधान हूँ। सम्पूर्ण भूतों में मेरा प्रवेश है, सभी स्थानो में रहने वाले जहॉ कही कुछ करते हैं, वह मेरे लिए करते है।[७] शतपथ ब्रह्मण[८] मे भी इसे रूद्र की वहन के नाम से अभिव्यक्त किया गया है। वासनेयी संहिता[९] में देवी की उपासना का वर्णन है।' जिसमे उसे रूद्र की बहन स्वतः ही बताया गया है। यह जगज्जननी के रूप में तीनो लोकों को प्रकाशित करती थी। ऐसा उद्धरण ब्रह्माण्ड–पुराण[१०] में आया है। विष्णु–पुराण[११] में भी तमस् रूपी असुरों का सहार करने वाली देवी को दुर्गा के रूप मे व्यक्त किया गया है।

---

[६] ऋग्वेद पृष्ठ १०,१२५
[७] वही पृष्ठ १०,१२५,३
[८] शतपथ ब्राह्मण पृष्ठ २,६,२,६
[९] वाजसनेयी सहिता पृष्ठ ३,५७
[१०] ब्रह्माण्डपुराण पृष्ठ ५,१,८६
[११] विष्णुपुराण पृष्ठ ५,१८६

महाभारत[१२] के अनुसार इस समय तक यह देवी एक स्वतन्त्र देवी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थी, जिनका वर्णन हमे विराटपर्व मे मिलता है। मार्कण्डेय–पुराण[१३] में देवी दुर्गा से सम्बन्धित अश 'दुर्गासप्तशती' के रूप मे प्राप्त है, जिसका पाठ नवरात्र में किया जाता है।

स्कन्दपुराण[१४] एवं भविष्य पुराण में वर्णित है कि चन्द्रिका–पूजा के तीन प्रकार है—–सात्विकी,राजसीएवं तामसी। सात्विकी पूजा में जप होता है, नेवैद्य दिया जाता है किन्तु मांस का प्रयोग नही होता है। राजसी मे बलि एवं नेवैद्य होता है और मांस का प्रयोग होता है। किन्तु तामसी में सुरा एवं मांस दोनों का प्रयोग होता है, और जप एवं मन्त्रों का प्रयोग नहीं होता है। इस अन्तिम प्रकार का सम्पादन किरातों एवं वनवासी जातियों आदि द्वारा होता है।

नवरात्र मे नवदिवसों की पूजा आश्विन शुक्ल पक्ष की पतिपदा को प्रारम्भ किया जा सकता है। इस अवसर पर प्रतिपदा के दिन घट की स्थापना तथा जौ बोने की क्रिया सम्पादित की जाती है। घट में जल, आम्रपल्लव एवं अन्य वृक्षों की टहनियॉ डाल दी जाती है। इसके उपरान्त चन्दन–लेप और केशो को धोने के लिए त्रिफला एवं कंघी चढ़ाई जाती है। द्वितीय तिथि को केशों को ठीक स्थान पर रखने के लिए रेशम की पट्‌टी दी जाती है। तृतीया को पैरों को रॅगने के लिए आलक्तक, सिर के लिए सिन्दूर, देखने के लिए दर्पण दिया जाता है। चतुर्थी तिथि–को मधु पर्क दिया जाता है, मस्तक पर तिलक के लिए चॉदी का टुकड़ा तथा आखों के लिए अंजन दिया जाता है। पंचमी तिथि को अपनी सामर्थ्य के अनुसार आभूषण दिये जाते है। यदि पूजा प्रतिपदा को प्रारम्भ की

---

[१२] महाभारत, भीष्मपर्व ६,८६–८७

[१३] मार्कण्डेय–पुराण पृष्ठ ७३,४२–४२

[१४] स्कन्द–पुराण ति ति. पृष्ठ ६८

गयी हो तो व्रती को बेल वृक्ष के पास सायं काल जाना चाहिए और देवी को बोधन–मन्त्र के साथ जगाना चाहिए। 'रावण के नाश के लिए एव राम पर अनुग्रह करने के लिए ब्रह्म ने तुम्हे अकाल में जगाया, अतः मैं भी तुम्हे आश्विन की षष्ठी की सन्ध्या में जगा रहा हूँ।'' दुर्गा–बोधन के उपरान्त व्रती को चाहिए कि वह बेल वृक्ष से यह कहे कि "हे बेल वृक्ष, तुमने श्रीशैल पर जन्म लिया है, और तुम लक्ष्मी के निवास हो। तुम्हे ले चलना है, चलो, तुम्हारी पूजा दुर्गा के समान करनी है।" इसके उपरान्त व्रती बेल वृक्ष पर मिट्टी, गंध, शिला, धान्य, दूर्वा, पुष्प, फल, दही, घृत, सिन्दूर आदि को प्रत्येक के साथ मन्त्र का उच्चारण करके रखता है और उसे दुर्गा के शुभ निवास के योग्य बनाता है। इसके उपरान्तव्रती दुर्गा–पूजा के मण्डल मे आता है, और आचमन करता है और अपराजितालता को या नौ पौधो की पत्तियों को एक में गूँधता है। प्रत्येक के साथ विशिष्ट–मन्त्र का पाठ होता है। इसी दिन दुर्गा की मिट्टी की प्रतिमा विल्व की शाखा के साथ घर में लायी जाती है और पूजित होती है।

सप्तमी तिथि को व्रती को स्नान करके विल्व वृक्ष के पास जाकर पूजन आदि कार्य सम्पन्न करने के बाद दक्षिण–पश्चिम दिशा या उत्तर–पश्चिम दिशा छोड़कर कहीं से कोई शाखा काट लेनी चाहिए। काटते समय मन्त्र का पाठ होता है।[१५] इसके बाद उस शाखा को व्रती पूजा मण्डप में लाकर एक पीढ़े पर रख देता है। अष्टमी तिथि को कुमारी कन्याओ एवं ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए तथा उन्हें दक्षिणा भी देनी चाहिए। देवी होम, जप, दान से उतनी प्रसन्न नहीं होतीं, जितनी कुमारी कन्याओं के दान देने से प्रसन्न होती हैं। नवमी के दिन पशुओं की बलि अधिक मात्रा में दी जाती है। कालिकापुराण[१६] मे दुर्गा एवं

---

[१५] दुर्गार्चन–पद्धति पृष्ठ ६६५

[१६] कालिका–पुराण ७१,३–५ एव ६५–६६

भैरव के सम्मान मे बलि दिये जाने वाले जीवों का उल्लेख है—-पक्षी, कच्छप, मानव, व्रती का रक्त परन्तु इसमें मादा जीवो का निषेध है और पशुओं के कान कटे हुए नही होने चाहिए। विन्ध्याचल की देवी पुष्प, धूप, विलेपन तथा अन्य पशुओं की बलि से उतना प्रसन्न नही होती जितना कि भैसों एवं भेडो की बलि से—(हेमाद्रि[१७])। कालिका—पुराण[१८] में अज, महिष एवं नर क्रमशः बलि, महाबलि एव अतिबलि घोषित हैं। कालिका—पुराण में वर्णित है कि मन्त्र के साथ चढाया हुआ शोणित (रक्त) एवं शार्ष (सिर) अमृत कहे गये है। द्वशमी तिथि को आचमन के उपरान्त पूजा आदि कृत्य किये जाते है। मूर्ति से विभिन्न वस्तुओं को हटाकर किसी नदी अथवा तालाब में संगीत, गान, नृत्यादि के उपरान्त प्रतिमा को प्रवाहित कर देना चाहिए और प्रार्थना करनी चाहिए कि हे माता! आप अपने स्थान पर चली जाएँ और एक वर्ष बाद फिर आये। इसके उपरान्त शवरोत्सव होता है। दशमी तिथि को सबको एक साथ मिलकर आनन्दोत्सव मनाना चाहिए। दशमी तिथि को देवी—प्रतिमा के जल प्रवाह के उपरान्त शबरों (बनवासी, भीलो आदि) से सम्बन्धित कृत्य किये जाने चाहिए। काल—विवेक में आया है कि लोग विसर्जन के उपरान्त शबरों की भाँति देह को ढंक कर कीचड़ आदि से शरीर को पोतकर नृत्य, गान एव संगीत में प्रवृत्त हो कर आनन्दातिरेक से प्रभावित हो जायँ।[१९]

नवरात्रि की अधिष्ठात्री नवदेवियाँ और उनका पूजन

नवरात्रि की दुर्गा जी के नौ स्वरूप माने गये हैं। प्रातःकाल पाठ करने के पश्चात् दिन में क्रम से दुर्गा जी का निम्नलिखित प्रकार से दर्शन करना

---

[१७] हेमाद्रि—व्रत भाग—१ पृष्ठ ६०६

[१८] कालिका—पुराण पृष्ठ ५३

[१९] कालिका—पुराण पृष्ठ ७१,२०—२२

चाहिए–पहले दिन शैलपुत्री का दूसरे दिन ब्रह्मचारिणी का, तीसरे दिन चन्द्रघंटा का, चौथेदिन कूष्माण्डा का, पॉचवे दिन स्कन्दमाता का, छठें दिन कात्यायनी का, सातवें दिन कालरात्रि का, आठवें दिन महागौरी और नवें दिन सिद्वि दात्री का दर्शन करें। शक्ति की पूजा के लिए शुक्लपक्ष की रात्रि का समय नियत करना स्वभाविक ही है। अतएवं रात्रि के नाम पर ही नवरात्र की प्रसिद्धि है। शक्ति की अधिष्ठाभी देवी के अर्चन–पूजन एवं भजन के लिए इन रात्रियों का महत्व हमारे देश में परम प्राचीन काल से प्रचलित है।

प्रथम शैलपुत्री––ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवों द्वारा सृष्टि का सचालन होता है। जिसमें ब्रह्मा सृष्टि का सृजन करते हैं, विष्णु पालन तथा महेश सहार करते हैं। सृष्टि के सृजन–कर्ता ब्रह्मा का कथन है कि जो प्राणी देवी की नौ मूर्तियों का पूजन करता है, वह सभी भौतिक व आध्यात्मिक सुख प्राप्त करता है। ये नवमूर्तियॉ हैं, नव दुर्गा की। जिसमें प्रथम नाम 'शैलपुत्री' है। ये अधीश्वरी हैं, गिरिराज हिमालय की पुत्री हैं। हिमालय ने तपस्या करके पुत्री के रूप में भगवती को प्राप्त किया था। कुमारी–पूजा आवश्यक है। प्रथम दिन दो वर्ष की सुन्दर नीरोगी कन्या का पूजन शैलपुत्री के रूप में किया जाता है।

द्वितीय ब्रह्मचारिणी–दूसरी दुर्गा शक्ति ब्रह्मचारिणी है। ब्रह्म अर्थात तप की चारिणी आचरण करने वाली। ये देवी ज्योतिर्मयी भव्यमूर्ति है। इसके दाहिने हाथ में जप की माला, बांये हाथ मे कमण्डल है। ये आनन्द से परिपूर्ण हैं। इनके विषय मे यह कथानक प्रसिद्ध है कि ये पूर्व जन्म में भी हिमवान की पुत्री पार्वती–हेमवती थीं। एक बार अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा में रत थीं। उस समय इधर–उधर घुमते हुए नारद जी पहँचे और उनकी हस्त रेखाओं को देखकर बोले–तुम्हारा तो विवाह नग–धड़ंग भगवान शिव अर्थात भोले बाबा से

होगा जिनके साथ पूर्व जन्म मे भी तुम दक्ष की कन्या सती के रूप में थी, किन्तु इसके लिए तुम्हे तपस्या करनी पडेगी, नारद जी के चले जाने के बाद पार्वती जी ने अपनी माता मेनका से कहा—यदि मैं विवाह करूँगी तो भोले बाबा से ही करूँगी अन्यथा कुमारी ही रहूँगी। इतना कह कर वे तप करने लगी। इस लिए इंनका 'ब्रह्मचारिणी' नाम प्रसिद्ध हो गया।

तृतीय चन्द्रघंटा—– भगवती की तृतीय शक्ति का नाम चन्द्रघंटा है। इनकी उपासना तृतीय दिन होती है। इनके मस्तक पर घण्टे के आकार का अर्द्धचन्द्र है। शरीर स्वर्ण के समान है। दसो हाथों में खड्ग आदि शस्त्र तथा वज्रादि अस्त्र है। इनके घंटे की भयानक चंडध्वनि से दानव, दैत्य, राक्षस सदैव भयभीत रहते हैं। भगवती का वाहन सिंह है। इस दिन आराधना करने से भगवती अलौकिक शक्ति प्रदान करती हैं।

चतुर्थ कूष्माण्डा—– त्रिविध ताप युक्त संसार जिनके उदर मे स्थित है, वे भगवती कूष्मांडा कहलाती हैं। इनका निवास सूर्य—मण्डल के आन्तरिक लोक में है। इनके शरीर की कान्ति सूर्य के समान देदीप्यमान है। इनकी आठ भुजाएँ हैं, जिस कारण इन्हे अष्टभुजा भगवती भी कहते है। इनके हाथों मे क्रमश. कमण्डल, धनुष, वाण कमल का फूल, अमृत—कलश, चक्र तथा गदा और आठवे हाथ में सिद्धिदात्री माला है। इनका वाहन सिंह है। भगवती की आराधना से समस्त रोगों का विनाश होता है, आयु धन और ऐश्वर्य की वृद्धि होती है। इस दिन पाँच वर्ष की सुन्दर और निरोग कन्या का पूजन करना चाहिए।

पंचम स्कन्दमाता—– भगवती के नौ रूपों में पाँचवॉ रूप स्कन्दमाता का है। छान्दोग्यश्रुति के अनुसार भगवती की शक्ति से उत्पन्न सनत्—कुमार का नाम स्कन्द है। स्कन्द की माता होने के कारण इस रूप को स्कन्दमाता कहा

गया है। जो साधक देवी के इस रूप की साधना करते है उन्हें दैविक, दैहिक, कष्ट कभी नही होते। देवी का स्वरूप गोद मे भगवान स्कन्द को बाल रूप में लिए हुए है। माँ की चार भुजाएँ है। ऊपर की दाहिनी भुजा मे भगवान स्कन्द को गोद में पकडे हुए है। नीचे की दाहिनी भुजा मे जो उपर उठी हुई है, उसमें कमल पुष्प है। बॉयी तरफ की उपर वाली भुजा वरमुद्रा में, नीचे वाली भुजा जो उपर उठी है, उसमें कमल–पुष्प है। सिंह इनका वाहन है। कुमारी पूजन के लिए इस दिन छः वर्ष की सुन्दर व नीरोग कन्या का पूजन करना चाहिए।

कात्यायनी–– कात्यायनी 'कत' नाम के महर्षि थे। उनके पुत्र ऋषि कात्यायन हुए। उन्होंने भगवती की घोर साधना की। देवी ने प्रसन्न होकर ऋषि कात्यायन के यहॉ पुत्री रूप में जन्म लिया। देवी कात्यायनी चार भुजाओं की देवी हैं। दाहिनी तरफ का ऊपर का भाग अभय मुद्रा मे है। नीचे वाला वर–मुद्रा में। बांयी तरफ से ऊपर वाले हाथ में तलवार तथा नीचे वाले हाथ में कमल–पुष्प है। इनका वाहन सिह है। इनके व्रत में सात वर्ष की कन्या का पूजन किया जाता है।

काल-रात्रि–– भगवती के इस स्वरूप में संहार करने की शक्ति है। मृत्यु अर्थात् काल का विनाश करने की शक्ति भगवती में होने के कारण इनको कालरात्रि के नाम से पूजा गया है। साधक तीन नेत्रों वाली भगवती दुर्गा का ध्यान करता है। उनके श्री अंगों की प्रभा बिजली के समान है। वे सिंह के कंधे पर बैठी हुई भयकर प्रतीत होती है। वे अपने हाथ में तलवार, ढाल, चक्र, गदा, वाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए हैं। उनका स्वरूप अग्निमय तथा वे माथे पर चन्द्रमा का मुकुट धारण करती हैं। भगवती शुभ–फल ही प्रदान करती हैं। परन्तु उनका स्वरूप भयानक है। इस दिन आठ वर्ष की कन्या का पूजन किया जाना चाहिए।

महागौरी——नवदुर्गा के आठवे स्वरूप मे भगवती महागौरी के पूजन का विधान है। यह पूजा दुर्गा–अष्टमी के दिन किया जाता है। भगवती का सौम्य, सुन्दर, व मोहक रूप महागौरी में है। ये देवी अपनी चार भुजाओं मे शंख, चक्र, धनुष और बाण धारण किये तीन नेत्रो से सुशोभित है। जो भिन्न अंगो में वाजूबन्द, हार, ककण, खनखनाती हुई करधनी और झुन–झुन करते नूपुरो से विभूषित है।

देवी सिद्धिदात्री—— सिद्धिदात्री नवी दुर्गा शक्ति हैं। नवरात्र के नवें दिन भगवती का सिद्धिदात्री के रूप में पूजन किया जाता है। मार्कण्डेय पुराण में, अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, ईशित्व, प्राप्ति, प्राकाम्य और वशित्व–ये आठ सिद्धियॉ बतायी गयी हैं। इन सबको देने वाली ये महाशक्ति है। यह देवी सिंह वाहिनी तथा चतुर्भज और सर्वदा प्रसन्नवदना है। दुर्गा के इस स्वरूप को देव, ऋषि, मुनि, सिद्धि, योगी, साधक, और भक्त सभी सर्वश्रेय की प्राप्ति के लिए आराधना या उपासना करते हैं।

दुर्गा सप्तशती की कथा के अनुसार एक बार देवताओं के स्वामी इन्द्र तथा दैत्यों के स्वामी महिषासुर मे सौ वर्षो तक घोर युद्ध हुआ। इन्द्र अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मा, विष्णु महेश के पास गये। इन्द्र सहित त्रिदेवों ने आदि–शक्ति भगवती का ध्यान किया। उसी क्षण, विष्णु के मुख से तथा ब्रह्मा, शिव, इन्द्र आदि के शरीर से दशों दिशाऍ देदीप्यमान हो गयी। उस तेज से संतप्त होकर देवताओं ने शक्ति की स्तुति करते हुए यह प्रार्थना की कि हम लोग आप का तेज सहन नहीं कर सकते। इस कारण कृपा करके आप मूर्ति–रूप धारण कीजिए। तदुपरान्त यही तेज एक देवी के रूप में परिवर्तित हो गयी, जिनके तीन नेत्र एवं आठ भुजाएँ थीं। इसके बाद सभी देवताओं ने उस मूर्ति की पूजा

की। विष्णु ने अपना सुदर्शन चक्र, शिव ने त्रिशूल, इन्द्र ने वज्र, वरूण ने शक्ति, यमराज ने तलवार और अग्निबाण दिये। लक्ष्मी ने समस्त श्रृंगार प्रदान किये और वाहन के लिए हिमालय ने सिंह भेजा। तद्पश्चात् देवी ने उच्च्य स्वर मे अट्टहास–युक्त गगन–भेदी गर्जना की, जिससे सम्पूर्ण विश्व में हलचल मच गयी। समुद्र कॉपने लगे, पृथ्वी डोलने लगी, और पर्वत हिलने लगे। देवताओ ने प्रसन्नता से कहा "देवी तुम्हारी जय हो"। देवी की ऐसी गर्जना सुनकर महिषासुर चौकन्ना हुआ तथा दैत्य–सेना का व्यूह बनाकर इस सिंहनाद की ओर दौडा। देवी की प्रभा से तीनो लोक आलोकित हो रहे थे। उनके चरणों के भार से पृथ्वी दबी जा रही थी तथा वे अपने धनुष की टंकार से सातो पातालों को क्षुब्ध किये देती थीं। तदनन्तर उनके साथ दैत्यों का युद्ध छिड गया। महिषासुर ने अपना समस्त बल, दल और ह्रद्य लगा दिया। भगवती ने सम्पूर्ण माया–जाल को छिन्न–भिन्न करते हुए उसे काल पाश में लपेट कर पृथ्वी पर पटक दिया और उसकी गर्दन पर पैर रखकर चमकती तलवार से उसका सिर काट डाला। इस प्रकार देवताओ को कष्ट देने वाले महिषासुर का वध करके भगवती ने देवताओं को अभयदान दिया। तभी से वह 'महिषासुर–मर्दिनी' के नाम से प्रसिद्ध हो गयीं। देवी अपने सौम्य रूप मे भगवती गौरी के नाम से तथा भयंकर रूप में दुर्गा, काली या चण्डी के नाम से विख्यात हैं।

देवताओं एवं मनुष्यों के विविध कार्यो एवं संकल्पों को सिद्ध करने वाली देवी के अनेक पर्याय रूपों की परिकल्पना की गयी है। तैत्तिरीय आरण्यक में शिव को अम्बिका या उमा का पति कहा गया है। वनपर्व में दुर्गा को वासुदेव की बहिन कहा गया है, साथ ही काली–महाकाली एवं दुर्गा की संज्ञा से विभूषित किया गया है। साहित्यिक ग्रन्थों एवं सिक्को में उन्हे दुर्गा की संज्ञा से

विभूषित किया गया हैं।[२०] रघुवंश[२१] मे पार्वती द्वारा देवदारू वृक्ष की रक्षा के निमित्त सिंह का उल्लेख मिलता है। मालती–माधव[२२] में चामुण्डा को नरबलि देने का उल्लेख प्राप्त है। मृच्छकाटिक[२३] मे शुम्भ, निशुम्भ का दुर्गा द्वारा मारा जाना उल्लिखित है। कुमार–सम्भव[२४] में शिव का अर्धनारीश्वर रूप भी उल्लिखित है, जिसमें वे अपनी शक्ति पार्वती के साथ सम्पृक्त है। इस ग्रन्थ मे काली मुण्डमाल का आभूषण धारण किए हुए उल्लिखित है।

आजकल नवरात्र में सब लोग देवी पूजा करते है। जो लोग किसी विशेष उद्देश्य से पाठ करते हैं, वे कीक तथा कवच के साथ पढ़ते है और अन्तिम दिन हवन आदि करके उसकी समाप्ति करते है। मिर्जापुर जिले के विन्ध्याचल में स्थित विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर में इन दिनों अपार भीड होती है। यहॉ हजारो यात्री आते हैं और मन्दिर में बैठकर पाठ करते हैं। कलकत्ते में काली जी के मन्दिर में और आसाम में कामाख्या देवी के मन्दिर में इन दिनों अपार भीड़ होती है। दुर्गा–पूजा प्रत्येक प्रान्त में होती है, लेकिन बंगाल और आसाम में इसका प्रचुर प्रचार है। अत· वहॉ दुर्गा की पूजा विशिष्ट रूप में होती है। बंगाली लोग नव दिनो तक दुर्गा की जिस मूर्ति की पूजा करते है उसे दसवें दिन विसर्जन करने के लिए बडी धूम–धाम से जुलूस में चलते है। आगे–आगे करवाल–धारिणी दुर्गा, महिषासुर–मर्दिनी भगवती काली की मूर्ति होती है और पीछे–पीछे जय–घोष करता हुआ अपार जनसमूह चलता है। यह दृश्य बहुत ही खूबसूरत और देखने योग्य होता है। बाद में दुर्गा की मूर्ति को नाव पर ले जाकर गंगा के बीच विसर्जित कर दिया जाता है। दुर्गा अत्याचार को दमन

---

[२०] काणे पी वी धर्मशास्त्र का इतिहास–४ पृष्ठ ६६

[२१] रघुवंश २,२६

[२२] मालती माधव–५,१६

[२३] मृच्छकटिक ६,२७

[२४] कुमार सम्भव ७,६५,८४,२८

करने वाली शक्ति की देवी है। नवरात्र में देवी पूजन का अधिकार सब मनुष्यों को है, इसमे जाति–पॉति का विचार नही है।

देवियॉ भारतीय दर्शन की आत्मा है। ब्रह्म वह सत्ता है, जो मनुष्य सहित समस्त चराचर जगत का सृजन, पालन और संहार करता है। लेकिन वह हमसे दूर नहीं है, वह हमारे अन्दर है। सृजन, पालन, संहार के रूप में ब्रह्मा, विष्णु और महेश सामने आते हैं। निर्गुण ब्रह्म की सत्ता में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सत्ता भी शान्त रूप में है, ज्ञान रूप में है। उसकी क्रियाशक्ति पहले भगवती बाद में महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली या दुर्गा के रूप में व्यक्त होती है। महासरस्वती ब्रह्मा की, महालक्ष्मी विष्णु की और महाकाली या दुर्गा महेश की क्रिया शक्ति है। आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो ब्रह्म–सत्ता प्रकृति के नियमों की शात–प्रशांत ज्ञान–सत्ता है और प्रकृति के नियम भगवती की क्रिया–शक्ति। इन्ही से वे सृष्टि का निर्माण करते हैं, पालन करते हैं, सहार करते है। इस दृष्टि से विभिन्न देवी–देवता इस ब्रह्म–सत्ता के ही अनन्य स्वभाव है, प्रकृति के नियमो के अधिष्ठाता है और उनके सगुणरूप हैं।

विजया दशमी (दशहरा)

आश्विन के शुक्ल–पक्ष की दशमी को 'दशहरा' नामक उत्सव कहा जाता है। ब्रह्माण्ड पुराण[1] मे आया है कि आश्विन शुक्ल–पक्ष की दशमी को 'दशहरा' कहते है क्योकि यह तिथी दस पापो को नष्ट करती है। मनु[2] ने दस पापों को तीन श्रेणियों में बॉटा है यथा कायिक, वाचिक, मानसिक। 'राजमार्तण्ड' ने इस व्रत का विस्तृत वर्णन किया है।

भगवान राम चन्द्र जी ने इसी दिन लंका पर चढ़ाई की थी एवं रावण का वध कर उस पर विजय प्राप्त की थी। तभी से यह पावन तिथि 'विजया' के नाम से विख्यात हुई और इस दिन विजययात्रा का पर्व मनाया जाने लगा। ज्योतिष–शास्त्र के अनुसार विजयादशमी को विजय–यात्रा का सुन्दर मुहुर्त रहता है। ज्योतिष–निबन्ध नामक ग्रन्थ में लिखा है कि आश्विन पक्ष की शुक्ल पक्ष की दशमी को तारा उदय होने के समय विजय नामक काल का करण होता है। यह समस्त कार्यो मे सिद्धि देने वाला होता है। कालनिर्णय[3] के मत से शुक्ल पक्ष की जो तिथि सूर्योदय के समय उपस्थित रहती है, उसे कृत्यों के सम्पादन के लिए उचित समझना चाहिए और यही बात कृष्ण–पक्ष की उन तिथियो के विषय में भी मानी जाती है, जो सूर्यास्त के समय उपस्थित रहती हैं। हेमाद्रि[4] ने विद्धा दशमी के तिथि–निर्धारण में दो नियम प्रचलित किये हैं––(१) वह तिथि जिसमें श्रवण–नक्षत्र पाया जाता है, (२) वह दशमी जो नवमी से संयुक्त हो स्वीकार्य है, और किन्तु कतिपय आचार्यों के अनुसार यदि दशमी

---

[1] ब्रह्मपुराण पृष्ठ ६३–६५

[2] मनु पृष्ठ १२,५,७

[3] कालनिर्णय पृष्ठ २३१–२३३

[4] हेमाद्रि व्रत भाग–१ पृष्ठ ६३–६५

नवमी अथवा एकादशी से संयुक्त हो, तो ऐसी दशा में विजयादशमी नवमी को सम्पादित होना चाहिए।

स्कन्दपुराण मे वर्णित है कि जब नवमी दशमी से सयुक्त है तो अपराजिता देवी की पूजा दशमी को उत्तर पूर्व दिशा मे अपराह्न में होनी चाहिए। उस दिन कल्याण एवं विजय के लिए अपराजिता पूजा वॉछनीय है। निर्णयसिन्धु[5] के अनुसार—दशमी का उचित काल अपराह्न है। यदि दशमी दो दिनों तक चली गयी हो, तो इसे प्रथम नवमी से संयुक्त स्वीकृत होना चाहिए। यदि दशमी प्रदोष—काल में (किन्तु अपराह्न मे नही), दो दिनो तक विस्तृत हो, तब एकादशी से सयुक्त दशमी स्वीकृत होती है। दोनो दिन अपराह्न काल में दशमी न अवस्थित हो तब नवमी से संयुक्त दशमी मान ली जाती है, किन्तु ऐसी दशा में जब दूसरे दिन श्रवण—नक्षत्र हो तब एकादशी से संयुक्त दशमी ही मान्य है।

विजयादशमी पर्व की तीन अत्यन्त शुभ—तिथियों मे से एक है आश्विन शुक्ल—पक्ष की दशमी अन्य दो हैं—चैत्र शुक्ल एवं कार्तिक शुक्ल की प्रतिपदा। इसलिए इस दिन बालक अक्षरारम्भ करते हैं। 'सरस्वती—पूजा' तथा अन्य नये कार्यो को प्रारम्भ करने के लिए यही तिथि वाछनीय है। श्रवण नक्षत्र में राजा शत्रु पर आक्रमण करते है तथा अपराजिता—पूजा, शमीपूजन, सीमोल्लंघन, घर को पुनः लौट आना एवं घर की नारियों द्वारा घोड़ो, हाथियों एवं सैनिको का नीराजन तथा परिक्रमा कराना।

अपराजिता एवं शमी पूजा का महत्व— धर्म सिन्धु [6]के अनुसार—"अपराह्न में गॉव की उत्तर—पूर्व दिशा में जाना चाहिए। एक स्वच्छ स्थान को गोबर से लीप देना चाहिए। चन्दन से आठ कोणों का एक चिन्ह

---

[5] निर्णय सिन्धु—२ पृष्ठ १२६

[6] धर्म सिन्धु पृष्ठ ६३

बनाना चाहिए और सोलह उपचारों के साथ उनकी पूजा करनी चाहिए।" राजा को विजय के लिए इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए कि "वह अपराजिता, जिसने कण्ठाहार पहन रखा है, जिसने चमकदार सोने की मेखला (करधनी) पहन रखी है, जो अच्छा करने की इच्छा रखती है, मुझे विजय दे।" इसके उपरान्त उसे उपर्युक्त प्रार्थना करके विसर्जन करना चाहिए। तब सबको गॉव के बाहर उत्तर–पूर्व मे उसे शमी वृक्ष की ओर जाना चाहिए और उसकी पूजा करनी चाहिए। शमी की पूजा के पूर्व या उपरान्त लोगों को सीमोल्लंघन करना चाहिए। विजयाभिलाषी राजा को विजयादशमी के दिन हाथी, घोडा, रथ, सैन्य–बल को सुसज्जित करके अपनी सीमा का उल्लंघन करना चाहिए अपनी सीमा के बाहर जाकर पूर्वाभिमुख होकर शमी–वृक्ष को विधिवत मन्त्रों के साथ पूजन करना चाहिए। इसके पश्चात् शमी–वृक्ष के पत्ते तोड़कर पूजा–स्थान की थोडी सी मिट्टी, ताम्बुल तथा एक सुपारी रखकर कपड़े में बॉधना चाहिए और कार्य–सिद्धि की कामना के लिए उसे अपने पास रखना चाहिए। फिर आचार्य एव पुरोहित का आशीर्वाद ग्रहण करना चाहिए और वहीं पूर्व दिशा में स्थित भगवान विष्णु की परिक्रमा करके अपने मन में शत्रु की मूर्ति का स्मरण करके उसी बाण से उसके कर्म–स्थल का भेदन करना चाहिए। फिर हाथ से तलवार लेकर दक्षिण दिशा में आरम्भ करके वृक्ष के चारों ओर दिशाओं में जाकर सभी शत्रुओं का कृत्रिम सूलोच्छेदन करे और हद्‌य में यह विश्वास करे कि अपने समस्त शत्रुओं को जीत लिया। इसके बाद राजोजित सम्मान एवं अभिनन्दन से पूजित होकर अपने राज–महल मे प्रवेश करना चाहिए।

आख्यानात्मक कथा के अनुसार–एक बार पार्वती जी ने दशहरे के त्यौहार के फल के विषय के बारे में शंकर जी से प्रश्न किया। तब शिव जी ने विजय–काल की चर्चा करते हुए बताया शत्रु पर विजय पाने के लिए राजा को

इसी समय प्रस्थान करना चाहिए। इस दिन श्रवण नक्षत्र का योग और भी अधिक शुभ माना जाता है। महाराज राम–चन्द्र जी ने इसी विजयकाल में लका पर चढाई की थी। शत्रु से युद्ध करने का प्रसंग न होने पर भी इस काल में राजाओ को सीमा का उल्लघन करना चाहिए। इसी काल मे शमी–वृक्ष ने अर्जुन का धनुष धारण किया था, तथा रामचन्द्र जी से प्रिय वाणी कही थी।

पार्वती जी ने पूछा "शमी–वृक्ष ने अर्जुन का धनुष कब धारण किया था और राम–चन्द्र जी से कैसे प्रिय वाणी कही थी।" शिव जी ने जवाब दिया "दुर्योधन ने पाण्डवो को जुए में पराजित करके बारह वर्ष के वनवास के साथ तेरहवें वर्ष अज्ञात वास की शर्त रखी थी। तेरहवें वर्ष यदि उनका पता लग जाता तो उन्हें पुनः बारह वर्ष का वनवास भोगना पड़ता। इसी अज्ञात वास में अर्जुन ने अपना गाण्डीव एक शमी–वृक्ष पर रखा था तथा स्वयं बृहन्नला के वेश में राजा विराट् के पास नौकरी कर ली थी। जब गौरक्षा के लिए विराट के पुत्र अर्जुन को अपने साथ लिया तब अर्जुन ने शमी वृक्ष से अपने हथियार उठाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। विजयादशमी के दिन रामचन्द्र जी ने विजय की यात्रा की थी। इस लिए विजय–काल में शमी–वृक्ष की पूजन होता है।

एक बार कृष्ण ने युधिष्ठिर को बताया 'राजन्! विजयादशमी के दिन राजा को स्वयं अलंकृत होकर अपने दासों और हाथी–घोड़ो का शृंगार करना चाहिए। वाद्य–यन्त्रों सहित मंगलाचार करना चाहिए। वहॉ वास्तु, अष्टदिग्पाल तथा पार्थदेवता की वैदिक मन्त्रों के उच्चारण सहित पूजा करनी चाहिए। शत्रु की मूर्ति बनाकर उसकी छाती में वाण मारना चाहिए। ब्राह्मणों की पूजा करके हाथी,घोड़ा, अस्त्रों–शस्त्रो का निरीक्षण करना चाहिए। तब कही अपने महल में लौटना चाहिए। जो राजा प्रतिवर्ष इस प्रकार का विजय करता है, उसकी शत्रु पर सदैव विजय होती है।

प्राचीन कालो मे घोडो, हाथियो, सैनिकों एवं स्वय का नीराजन–उत्सव राजा लोग करते थे। रघुवंश[७] में वर्णित है कि शरद् ऋतु के आगमन के समय रघु ने 'वाजिनी–राजना' नामक शान्ति–कृत्य सम्पन्न किया था। निर्णय–सिन्धु[८] ने सेना के नीराजन के समय के मन्त्रों का उल्लेख इस प्रकार किया है– हे सब पर शासन करने वाली देवी! मेरी वह सेना जो चार भागों–हाथी, रथ, अश्व, एव पदाति में विभाजित है, शत्रु–विहीन हो जाये और आप के अनुग्रह से मुझे सभी स्थानो में विजय–प्राप्ति हो। नीराजना करके राजा को खंजन पक्षियों को देखना चाहिए।

विजयादशमी का सांस्कृतिक महत्व एवं विशेषताएँ--

विजयादशमी का पर्व समस्त हिन्दू जाति के हृद्य पर गहरा प्रभाव छोड जाता है। गाँव–गॉव और नगर–नगर में होने वाली पावन रामलीला का प्रेरणापद वातावरण सबका हित साधन करता है। रामचन्द्र जी ने अपने जीवन में जिन उज्ज्वल मर्यादाओ की रक्षा की है, प्रतिवर्ष इसके द्वारा उनकी ओर सामान्य जनता का भी ध्यान आकर्षित होता है। खरदूषण, त्रिशिरा, बालि, कुम्भकर्ण, रावण, मेघनाद, प्रभृति आतताइयों को मारकर राम चन्द्र जी ने मानव चरित्र की जिस उच्च मर्यादा की स्थापना की थी, वह आर्य–संस्कृति में अनुपम महत्त्व रखती है। पिता, माता, भाई, स्त्री, मित्रादि के साथ राम–चन्द्र जी ने जो व्यवहार किया, उसकी प्रतिष्ठा भारतीय जीवन में सदा रहेगी। नारी जाति के सम्मान को अक्षुण बनाये रखने के लिए उन्होने जो संकट उठाये, वे आर्य संस्कृति में उच्च उदाहरण है। इस पर्व से हमें यह ज्ञात होता है कि प्राचीन आर्य हिन्दू अपनी स्त्रियो का कितना सम्मान करते थे। उनके हृदय में अपनी

---

[७] रघुवंश पृष्ठ ४,२५

[८] निर्णय–सिन्धु २,१६०

पत्नियो के लिए कितना उच्च स्थान था। दुष्ट रावण ने सीता का अपहरण किया था, इस अपमान को मनस्वी राम कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने अनेक कठिनाइयों का सामना किया, बन्दरों एव भालुओ की सेना एकत्र की और अन्त में रावण की राजधानी लका पर चढाई कर दी। सोने की बनी हुई लंका को उन्होने धूल मे मिला दिया और लडाई के मैदान मे रावण के साथ उसके परिवार को भी यमलोक पहुँचा दिया। यह था एक आर्य स्त्री को चुराने का फल जिसे रावण ने अकेले ही नही वरन् पुत्र एवं पौत्रों के साथ भुगता। रावण ने देवताओ पर अनेक अत्याचार किया था अतः राम ने आततायी रावण का समूल नाश कर इस लोक में न्याय और धर्म की स्थापना की[१]।

विजयादशमी हिन्दुओं का एक महत्त्वपूर्ण पर्व है। राजघराने में तथा सामन्तो के परिवारों में आज के दिन अस्त्र, शास्त्र, हाथी, घोड़े, सुवर्ण आदि का पूजन किया जाता है। इस दिन राज्य वृद्धि की भावना एवं विजय प्राप्ति की कामना करने वाले राजा विजय काल में प्रस्थान करते है। तारा उदय होने का काल विजय–काल होता है, जो सब कार्यो को सिद्ध करता है। इस दिन राजाओं द्वारा शमी–पूजन का विशेष महत्त्व है। पुराणों की एक कथा के अनुसार भगवान रामचन्द्र जी ने भी अपनी विजय यात्रा में शमी का पूजन किया था। आश्विन शुक्ल की दशमी को दशहरा और अपराजिता दशमी भी कहते है। इस दिन भगवान राम ने रावण का वध करके लका पर विजय प्राप्त की थी, इस वृक्ष के महत्व का उल्लेख करते हुए महाभारत में भी वर्णन आया है कि पाण्डव वनवास काल में अर्जुन ने अपना अस्त्र इसी वृक्ष पर छिपा रखा था। विजयादशमी के दिन "दुर्गापूजा" व"नवरात्र" की पूर्णआहुति होती है। देवी दुर्गा उस दिन असुरों का नाश करने के पश्चात् विजय यात्रा पर जाती हैं। कन्या

---

[१] उपाध्याय गौरी शंकर व्रत चन्द्रिका पृष्ठ ८६

रूपी दुर्गा उस दिन मायके से विदा होकर पत्नी रूप मे अपने भगवान शिव के पास जाती है।

विजयादशमी के दिन खजन और नीलकण्ठ पक्षियो का दर्शन बडा ही शुभ माना जाता है और शुभ मुहूर्त के न होते हुए भी यह पवित्र फलदायी है। राजा को अपनी प्रजा को शन्ति प्रदान करके जल या गोशाला के समीप खंजन को देखना चाहिए। इस दिन प्रत्येक परिवार के लोग नवीन वस्त्र धारण करते हैं। अस्त्रों की पूजा की जाती है। आश्विन शुक्ल–प्रतिपदा को देवी का कलश स्थापित किया जाता है एव दुर्गापाठ होता है। दुर्गा की सिह–वाहिनी एवं महिषासुर–मर्दिनी के रूप मे मूर्ति प्रतिष्ठापित की जाती है। उनके अगल–बगल में लक्ष्मी को बैठाया जाता है। गणेश और कार्तिकेय क्रमशः अपने वाहन चूहे और मोर पर आसीन रहते हैं। उनके दोनो तरफ लक्ष्मी एव सरस्वती को स्थापित किया जाता है। ऊपर शिव का स्वरूप होता है। मण्डप में देवी की प्राण–प्रतिष्ठा की जाती है। उस दिन राम–कथा, राम लीला से सम्बन्धित अनेक प्रकार के आयोजन किये जाते है। सभी भक्ति भावना से ओतप्रोत रहते है। इस पर्व से पूर्णतया स्पष्ट है कि यह न केवल शक्ति की उपासना की गयी है अपितु भारतीय बाङ्मय मे अवतरित एवं मर्यादा पुरूषोत्तम समझे जाने वाले भगवान श्री राम की महिमा को मण्डित किया गया है।

दीपावली

दीपावली हमारे देश का प्रमुख त्योहार है। इसका सामाजिक एवं धार्मिक– दोनो दृष्टियों से विशेष महत्त्व है। इसका आयोजन कार्तिक के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी से ही आरम्भ हो जाता है। किसी देव या देवी के सम्मान में किया गया यह केवल उत्सव ही नहीं है, यह चार या पाँच दिनों तक चलता है और इसमें कई पृथक्–पृथक् कृत्य हैं। इसे अधिकांश ग्रन्थों मे दीपावली और कहीं–कहीं दीपमालिका की संज्ञा दी गयी है। इसके अतिरिक्त 'सुखरात्रि'[१] 'यक्षरात्रि'[२], 'सुखसुप्तिका'[३] आदि सज्ञाएँ भी प्राप्त हैं। पी०के० गोडे[४] ने इसकी प्राचीनता पर विद्ववत्तापूर्ण प्रकाश डाला है। यह धनपूजा, नरकासुर पर विष्णु की विजय का उत्सव, लक्ष्मी पूजन, बलि पर विष्णु की विजय का उत्सव, द्यूत–दिवस, एवं भाई–बहन के प्रतीकात्मक प्यार के आदान–प्रदान का उत्सव है। दीपावली से ही कई पर्व हैं जिनका विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

धन-तेरस

कार्तिक मास की कृष्ण त्रयोदशी का नाम 'धनतेरस' है। आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक अथवा अधिदेवता धन्वन्तरि की जयन्ती का पर्व भी चिकित्सक लोग इसे मानते हैं। इस दिन धन्वन्तरि के पूजन का विधान है। यह व्रत यमराज से भी सम्बन्ध रखता है। यम के उद्देश्य से एक दीपक जलाकर मुख्य द्वार पर रखा जाता है; और इस प्रकार दीपावली महापर्व का आरम्भ किया जाता है। 'धनतेरस' के दिन लोग नये बर्तन खरीदते हैं। धनतेरस के दिन यमुना–स्नान

---

[१]राजमार्तण्ड १३४६–१३४८ एवं काल–विवेक पृष्ठ २३२,४०३,–४०४

[२] वात्स्यायन काम–सूत्र–१/२–४२

[३] हेमाद्रि–व्रत खण्ड–२ पृष्ठ ३४८–३४६

[४] भारतीय विद्या १९४६ पृष्ठ ५३–६६

कर यमराज और धन्वन्तरि पूजन, तथा उनकी मूर्तियों के दर्शन का भी विशेष महत्त्व है।

धनतेरस की व्रत कथा - एक बार यमराज ने अपने दूतों से प्रश्न किया; "क्या प्राणियों के प्राण हरते समय तुम्हें किसी पर दया भी आती है"? यमदूत सकोच में पड़ गये, बोले "नहीं महाराज, हम तो आपकी आज्ञा का पालन करते हैं। हमे दया भाव से क्या प्रयोजन?"

यमराज ने सोचा ये शायद किसी संकोच वश ऐसा कह रहे हो। अतः उन्हें निर्भय करते हुए बोले "संकोच मत करो, यदि कहीं तुम्हारा मन पसीजा हो तो निडर होकर कह डालो।"

तब यमदूतों ने डरते–डरते बताया, सचमुच ऐसी एक घटना घटी थी महाराज। जब हमारा हृदय कॉप उठा था। ऐसी क्या घटना थीं, उत्सुकतावश यमराज ने पूछा।

महाराज हंस नाम का राजा एक दिन शिकार के लिए निकला। वह जगल मे अपने साथियों से बिछुड गया और दूसरे राज्य की सीमा में चला गया। वहॉ के शासक हेमा ने राजा हंस का बडा सत्कार किया। उसी दिन राजा हेमा की पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया था। ज्योतिषियों ने नक्षत्र गणना करके बताया कि यह बालक विवाह के चार दिन बाद मर जायेगा। राजा के आदेश से उस बालक को यमुना के तटपर एक गुफा में ब्रह्मचारी के रूप में रखा गया। उस तक स्त्रियों की छाया तक न पहुँचने दी गयी। किन्तु विधि का विधान तो अडिग होता है। समय बीतता गया। संयोग से एक दिन राजा हंस की युवा बेटी यमुना के तट पर निकल गयी और उसने उस ब्रह्मचारी बालक से गन्धर्व–विवाह कर लिया। चौथा दिन आया और राजकुमार मृत्यु को प्राप्त हुआ।

उस नवपरिणीता का करूण विलाप सुनकर हमारा हद्य कॉप गया। ऐसी सुन्दर जोड़ी हमने कभी नहीं देखी थी। वे कामदेव तथा रति से कम नहीं थे। यमराज ने द्रवित होकर कहा "क्या किया जाय? विधि के विधान की मर्यादा–हेतु हमें ऐसा अप्रिय कार्य भी करना पडता है।"

यमराज से एकाएक एक दूत ने पूछा "क्या अकाल–मृत्यु से बचने के लिए कोई उपाय नहीं है?" यमराज ने अकाल–मृत्यु से बचने के लिए उपाय बताते हुए कहा "धनतेरस के पूजन एव दीपदान को विधिपूर्वक पूर्ण करने से अकाल–मृत्यु से छुटकारा मिलता है। तभी से धनतेरस के दिन धन्वन्तरि पूजन के साथ यम दीपदान की यह प्रथा चली आ रही है।

धन्वन्तरि की कथा-

प्राचीन काल मे जब देवताओं और असुरों ने मिलकर समुद्र का मन्थन किया था, उसमें से चौदह दुर्लभ रत्न निकले थे। उन चौदह रत्नों में से एक धन्वन्तरि भी थे। जिस समय वह समुद्र के तल से ऊपर प्रकट हुए, उनके हाथों में अमृत का कलश था। प्रकट होने के अनन्तर धन्वन्तरि ने रत्नों के वितरणकर्ता भगवान् विष्णु से प्रार्थना की कि 'प्रमो! आप कृपा करके हमारे निवास की व्यवस्था के साथ–साथ यज्ञों मे भाग प्राप्त करने का अधिकार भी हमें प्रदान करें। भगवान् विष्णु ने धन्वन्तरि से असमर्थता प्रकट करते हुए कहाः–'सौम्य! यज्ञ–भाग की प्राप्ति का अधिकार तो जिन्हें देना था, सबको दिया जा चुका है। इस लिए अब तो कुछ नहीं हो सकता। तुम देव–पुत्र हो। तुम्हें द्वितीय जन्म में जीवन की सार्थकता प्राप्त होगी। तुम्हें अक्षय यश मिलेगा और जब तक यह धरती रहेगी तब तक तुम्हारा धरती पर नाम रहेगा। तुम्हारे द्वारा आयुर्वेद का प्रचार और प्रसार होगा। तुम उसी शरीर से देवत्व की प्राप्ति

करोगे।' तद्नुसार द्वितीय जन्म में धन्वन्तरि काशी–नरेश दिवोदास के रूप में धरती पर प्रकट हुए और कहा जाता है कि उन्होने पार्थिव शरीर से ही देवत्व की प्राप्ति की थी।

कार्तिक चतुर्दशी (नरक-चतुर्दशी)

कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को 'नरक चतुर्दशी' भी कहते हैं। इस दिन अभ्यंग स्नान (तेल मालिश), यमतर्पण, और नरक के लिए दीपदान रात्रि में करना चाहिए। नरक से बचने के लिए यम को प्रसन्न करना पडता है। आगे चलकर प्राग्ज्योतिष नगरी (कामरूप) के राजा नरकासुर के कृष्ण द्वारा वध की कथा भी इसमें संयुक्त हो गयी। विष्णु पुराण[५] एवं भागवत पुराण[६] में नरकासुर के उपद्रवों का वर्णन आता है। उसने देवताओ की माता अदिति के आभूषण छीन लिये। वरूण को छत्र से वंचित कर दिया। मणि–पर्वत के शिखर को छीन लिया। देवताओं, सिद्धो एवं राजाओं की सोलह हजार एक सौ कन्याये हर ली तथा उन्हें प्रासाद में बन्दी बना लिया। उस अततायी का भगवान् कृष्ण ने अन्त कर दिया। कतिपय विद्वानों के अनुसार नरकासुर का सम्बन्ध वर्षा ऋतु में धान एवं ज्वार की फसल कट जाने पर एकत्र हो जाने वाली गन्दगी से है। गन्दगी के प्रतीक नरकासुर का अन्त करके फसल के रूप में आयी हुई धन–सम्पत्ति के उपलक्ष्य मे सम्भवतः इस पर्व का आयोजन किया जाता है।[७]

कार्तिक के कृष्ण–पक्ष की चतुर्दशी को दिनोंदय में नरक से बचने के लिए तेल मालिश कर के स्नान करना चाहिए। सिर पर अपामार्ग की टहनीयों को घुमाना चाहिए। इसके उपरान्त तिल युक्त जल का तर्पण यम को किया

---

[५] विष्णु पुराण ५,१६

[६] भागवत पुराण १६५६

[७] जैन–एस व्रत और त्योहार पृष्ठ ८४–८५

जाता है और उसके सात नाम लिए जाते है।[8] पुराणों के अनुसार नरक से बचने के लिए दीप जलाने चाहिए। उसी सन्ध्या को ब्रह्मा, विष्णु, और शिव आदि के मन्दिरो, तथा मठों, अस्त्रागारों, चैत्यो, सभाभवनों, नदियो, भवन–प्राकारों, उद्यानों, कूपो, राजपथो एवं अत:पुरों और अश्वो एव हाथियों की शालाओं में दीप जलाने चाहिए। भविष्य– पुराण [9] के अनुसार तैल–स्नान अरूणोदय के समय होना चाहिए। किन्तु यदि ऐसा किसी कारण नही हो पाता तो सूर्योदय के उपरान्त भी हो सकता है। धर्मसिन्धु[10] के अनुसार इस अवसर पर यतियों को भी तेल लगाना चाहिए। नरक–चतुदर्शी के दिन मनुष्य को अपने पूज्य पितरों के उद्देश्य से तर्पण और श्रद्धांजलि देनी चाहिए। अपने हाथों में मशाल लेकर अपने पितरों को दिखाना चाहिए। मन्त्र का पाठ इस भावना के साथ करना चाहिए कि 'मेरे कुटुम्ब के वे पितर लोग जिनका दाह–संस्कार हो गया हो, और जिनका दाह संस्कार नही हुआ है और जिनका दाह–संस्कार बिना कृत्य के हुआ है, परमगति को प्राप्ति हों ऐसे पितर लोग जो श्राद्ध पर आये हों, उन्हे उल्काओं से मार्ग–दर्शन प्राप्त हो और वे (अपने लोकों में) पहॅुच जायॅ।'

एक पौराणिक कथा के अनुसार आज के ही दिन श्री कृष्ण ने नरकासुर का सहार किया था। उसके कारागार मे बन्दिनी सहस्त्रो राजकुल की स्त्रियों और राजाओं को मुक्त किया था। श्री कृष्ण ने बडी युक्ति से इस आततायी का वध किया था। इसके कारागार से मुक्त होकर देश भर के राजाओं ने अपने अपने राज्य में उत्सव किया था और तभी से इसका नाम नरक–चतुदर्शी पड़ा है।

---

[8] पद्मपुराण ६,१२४,१३–१४
[9] भविष्य–पुराण–१४०,१५–१७
[10] धर्म–सिन्धु–पृष्ठ १०४

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा वर्ष की तीन अत्यन्त प्रमुख तिथियों मे परिगणित होती है। इस तिथि पर सबसे महत्वपूर्ण कृत्य है 'बलिपूजन'। भविष्योत्तर पुराण[११] मे वर्णित है कि–रात्रि में पॉच प्रकार के रंगीन चूर्णो से खचित भूमि पर दो हाथो वाले बलि की आकृति बनायी जानी चाहिए। आकृति पर सभी आभूषण हों, उनके पास विन्ध्याबलि (बलि की पत्नी) भी हो और चारो ओर कूष्माण्ड, वाण, मुर आदि असुर घेरे हुए हो। मूर्ति या आकृति पर मुकुट एवं कर्णाभूषण हो। राजा को अपने मंत्रियों एवं भाइयों के साथ प्रासाद के मध्य में भॉति–भॉति के कमलों से पूजा करनी चाहिए। चन्दन, धूप, नैवेद्य (मांस एवं मदिरा से युक्त) भोजन देना चाहिए। और यह मन्त्र उच्चारित करना चाहिए––"बलिराज! नमस्तुभ्य विरोचन–सुत! प्रभो। भविष्येन्द्र सुराराते बलिःरेषा प्रतिगृह्यताम्।" अर्थात 'विरोचन के पुत्र राजा बलि, तुम्हे प्रणाम, हे भविष्य के इन्द्र, यह पूजा ग्रहण करो। " इसके उपरान्त उसे क्षत्रियो की गाथाओं पर आधारित नृत्यो, गानों, नाटकों आदिका अवलोकन कर रात्रि भर जागना चाहिए। इस अवसर का दान अक्षय होता है और विष्णु को प्रसन्न करता है। कृत्यतत्त्व [१२] मे वर्णित है कि इस अवसर पर तीन पुष्पांजलियॉ दी जानी चाहिए। कालनिर्णय[१३] में उल्लिखित है कि यदि प्रतिपदा अमावस्या या द्वितीया से संयुक्त हो तो बलि–पूजा जिसका समय रात्रि है, अमावस्या से सम्पृक्त प्रतिपदा में होनी चाहिए।

बलि कथा-- बलि विष्णुभक्त प्रहलाद के पुत्र विरोचन का पुत्र था। शान्तिपर्व [१४] में उल्लिखित है कि बलि ने ब्राह्मणों से ईर्श्या की। वह बहुत शक्तिशाली था, उसने देवों का तेज छीन लिया। बलि ने अश्वमेघ यज्ञ किया।

---

[११] भविष्योत्तर पुराण–४०,४७–७३
[१२] कृत्यतत्व–४५३
[१३] काल निर्णय–२६
[१४] शान्ति पर्व पृष्ठ २२५,१३

विष्णु ने वामन रूप धारण कर किया और बलि से तीन पग भूमि मॉगी। यद्यपि शुक्र ने बलि को सचेत कर दिया था कि वामन और कोई नही बल्कि साक्षात् विष्णु है, तथापि बलि ने तीन पग भूमि देने की प्रतिज्ञा की। वामन ने अपना रूप बढाया और दो पगों से स्वर्ग एव भूमि लोक नाप लिया। जब वामन ने तीसरे पग के लिए जमीन मॉगी तब बलि ने अपनी गर्दन झुका दी और इस प्रकार बलि पातालोक में दबा दिया गया। विष्णु ने प्रसन्न होकर बलि को पाताल लोक का अधिपति बना दिया और उसे भविष्य में होने वाले इन्द्र की स्थिति प्रदान की। यह कथा अति प्राचीन है। महाभाष्य [१५] के अनुसार जब कोई बलि–बन्धन की कथा कहता है या रंगमच पर उसे खेलता है तो यह उच्चारण किया जाता है कि 'बलिं वन्धयति' जबकि बलि बहुत पहले बन्दी हुआ था।

बलि प्रदापदा को वामन–पुराण मे वीरप्रदा और द्यूत प्रतिपदा भी कहा गया है। पुराणों मे आया है कि उस दिन पार्वती ने द्यूतक्रीड़ा में शकर को हराया था जिससे शकर दुखी एवं पार्वती प्रसन्न हुई। उस दिन की हार से वर्ष भर धन की हानि होती है, और विजय से वर्ष कल्याण–कारी होता है। द्यूत–क्रीडा का उद्देश्य भाग्य–परीक्षा है। जिन घरों मे द्यूत–क्रीड़ा में रूचि नही है, वे लोग भी सोलह कौडियों का पूजन करके तीन बार फेंकते है और उसी के आधार पर वर्ष फल का अनुमान लगाते हैं। विष्णुपुराण में इस विषय में आख्यानात्मक वर्णन मिलता है––एक बार शंकर–पार्वती से द्यूत में हार गये। दुखी मन से वे गंगा किनारे एकान्त वास करने लगे। पुत्र कार्तिकेय को जब सम्पूर्ण बातों का पता लगा तब वे माता जी के पास वापस आए और उनसे द्यूत के लिए कहा, संयोगवश पार्वती हार गयी। तब पार्वती जी को अधिक चिन्ता हुई, क्योकि वे द्यूत में हार भी गयी और शंकरजी भी चले गये। गणेश पार्वती

---

[१५] महामाष्य ३,१,२६

को विशेष प्रिय थे। उन्होने अपने मन की व्यथा उनसे प्रकट की। गणेश जी ने कार्तिकेय से द्यूत क्रीड़ा कर उन्हें हरा दिया और सब सामग्री लेकर अपनी माता के पास गये। पार्वती जी प्रसन्न हुई। किन्तु उन्होंने कहा–'तुम्हे अपने पिता को भी अपने साथ लिवा लाना था। गणेश जी उल्टे पाँव वापस लौट पडे। पुनः शकर पार्वती जब क्रीडा पर बैठे तब पार्वती सभी वस्तुए हार गयी। तत्पश्चात् गणेश ने पार्वती को सूचित किया की विष्णु के माया के कारण उनकी हार हुई है। नारद ने कुपित पार्वती का मनोरंजन कर उन्हें प्रसन्न किया। पार्वती ने प्रसन्न होकर सबको वरदान दिया। शंकर ने वरदान मॉगा कि आज के दिन द्यूत क्रीड़ा में जो विजयी होगा, वह वर्ष भर विजयी रहेगा। गणेश जी ने सबसे प्रथम पूजा प्राप्त करने की याचना की। कार्तिकेय ने विषय वासनाओं से मुक्ति और विष्णु ने सम्पूर्ण कार्यो में सफलता की तथा नारद ने देवर्षि होने की अभिलाषा प्रकट की।

अमावस्या-

यह एक महत्त्वपूर्ण तिथि है। इसमें निर्धनता एवं दरिद्रता को दूर करने के लिए लक्ष्मी–पूजा की जानी चाहिए। पीपल, उदुम्बर, प्लक्ष, आम्र एव वट की छाल को पानी मे उबाल कर स्नान करना चाहिए और स्त्रियो द्वारा अपने सामने दीप–दान कराना चाहिए। सनत्कुमार–संहिता मे इस विषय में आख्यानात्मक वर्णन प्राप्त होता है, यथा–राजा बलि के कारागार में लक्ष्मी समस्त देवताओं के साथ बन्धन में पडी हुई थी। इसी दिन विष्णु ने सबको कैद से छुड़ाया था। समस्त देवता–गण एवं लक्ष्मी बन्धन मुक्त होते ही क्षीर–सागर में जाकर सो गये। अतः लक्ष्मी के साथ उनके शयन का ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए, जिससे वे क्षीर–सागर में न जाकर सुन्दर स्थान पाकर वहीं सो जाय। अतः रेशमी तोशक

में सुन्दर मोतियो की झालर लगानी चाहिए। उसके ऊपर अत्यन्त स्वच्छ चादर तथा मुलायम तकिया होना चाहिए। उसके ऊपर कमल पुष्पों का मण्डप बनाना चाहिए, क्योंकि कमल लक्ष्मी का निवास–स्थान है। जो लोग लक्ष्मी की इस तरह पूजा करते हैं उन्हे छोडकर अन्यत्र कही नही जाती।

यह दिन वैश्यों एवं व्यापारियों के द्वारा विशेष रूप से मनाया जाता है। वे अपने खातों की पूजा करते है। अपने मित्रों, व्यापारियों, क्रेताओ को निमन्त्रित करते हैं एवं उनका ताम्बूल एवं मिठाइयों से स्वागत करते हैं। पुराने खाते बन्द किये जाते हैं और नये खोल दिये जाते है। इस अवसर पर लक्ष्मी–पूजा के साथ–साथ कुबेर की पूजा भी होती है, जिससे सुख मिले। इससे इस रात्रि को 'सुख–रात्रि' भी कहते है। भविष्योत्तर पुराण[१६] के अनुसार अमावस्या को प्रातःकाल अभ्यंग स्नान, देव–पितरों की पूजा, दही, दूध, घृत से श्राद्ध, भॉति–भाँति के व्यजनों से ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए अपराह्ण में राजा को अपनी राजधानी मे घोषणा करानी चाहिए कि बलि का आधिपत्य है। हे लोगो! आनन्द मनाओ। लोगों को अपने घरो मे नृत्य एवं संगीत का आयोजन करना चाहिए। एक दूसरे को ताम्बूल देना चाहिए। कुमकुम लगाना चाहिए, सुन्दर कुमरियों को इधर–उधर चावल बिखेरने चाहिए और विजय के लिए नीराजना (दीप घुमाना) करनी चाहिए।

दीपावली हमारे देश का प्रमुख त्योहार है। इसका सामाजिक एवं धार्मिक दोनों दृष्टियों से विशेष महत्व है। दीपावली के एक दो दिन पूर्व से ही दीपों की मालिका सजाई जाती है। ब्राह्मण से लेकर शूद्र और अस्पृश्य कहे जाने वाले तक सभी इसका समान रूप से अगवानी करते हैं, और अपनी–अपनी स्थिति

---

[१६] भविष्योत्तर–पुराण–१४०,१४–२६

तथा मर्यादा के अनुसार इसके सर्वव्यापी आनन्द में भाग लेते हैं। इसके साथ दीपावली का सबसे अधिक आकर्षण इसका सामाजिक महत्त्व है। वह यह कि इस दिन गरीब–अमीर दोनों अपने पुरूषार्थ से प्रसन्न होने वाली लक्ष्मी की पूजा, आराधना कर उनकी प्रसन्नता की एक समान आशा करते हैं। दीपावली चिर काल से वर्ण एव आश्रम की मर्यादाओ से बाहर पहुँच कर सबको समान रूप से आनन्द–वितरण करती आ रही है। शास्त्रो का कथन है कि जो व्यक्ति दीपावली के दिन को रात जागरण करके लक्ष्मी की पूजा करता है, उसके घर में लक्ष्मी का निवास होता है। तथा जो आलस्य और निंद्रा में पड़ा रहता है, उसके घर से लक्ष्मी रूठ कर चली जाती है। इस दिन और रात के जागरण का तात्पर्य है, अपने उत्कृष्ट पुरूषार्थ पर अवलंबित होना। पुरूषार्थ से लक्ष्मी–प्राप्ति अनिवार्य है।

लक्ष्मी पूजा विधि एवं महत्त्व-कार्तिक कृष्ण अमावस्या (दीपावली) के दिन पवित्र मन और विचार की आवश्यकता अनिवार्य है। इस दिन प्रातःकाल उठकर स्नानादि से निवृत्त होकर पितृगण और देवताओं का पूजन करना चाहिए तथा दूध, दही, घृत आदि से पितरों का पावन श्राद्ध करे। सध्या के समय घर, द्वार, बगीचे, मन्दिर, चौराहा इत्यादि स्थानों पर तेल का दीपक जलाना चाहिए। पूज्य स्थानो पर घृत के दीपक जलाने का विधान है। दीपावली सजा लेने के बाद लक्ष्मी–पूजन के साथ गणेश आदि देवताओं की षोडशोपचार के साथ पूजा करें तथा विभिन्न प्रकार के मिष्ठानो का तथा फलों का भोग लगाएं। तदनन्तर पवित्र वेदी बनाकर अक्षत एवं कुमकुम आदि से अष्टदल कमल बनाये और उस पर लक्ष्मी की मूर्ति स्थापित करके पूजा और प्रार्थना करनी चाहिए। व्यवसायी तथा व्यापारी वर्ग के लोग दीपावली के दिन लक्ष्मी पूजन के समय बही–खाता, लेखनी, दावात आदि का भी पूजन करते है। कही–कही रूढ़ि के अनुसार

द्यूत–क्रीडा भी की जाती है। इस दिन के द्यूत की हार जीत के परिणाम को लोग वर्ष भर के लाभ–हानि की सूचना मानते हैं।

लक्ष्मी भगवान विष्णु की अर्धांगिनी तथा धन–सम्पत्ति की अधिष्ठात्री देवी है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन त्रिदेवो के समान ही सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वती इन तीनो देवियों की भी हिन्दू–जाति में सनातन काल से परम प्रतिष्ठा है। इस दिन धन सम्पत्ति एवं शोभा–सौन्दर्य की अधिष्ठात्री लक्ष्मी की आराधना की जाती है। दीपावली भगवती लक्ष्मी का पावन–पर्व है। लक्ष्मी को ही हम शोभा, समृद्धि,सुरूचि, एवं सम्पन्नता का पर्याय मानते हैं। धन सम्पत्ति की अधिष्ठात्री लक्ष्मी के रूप में हम सदा से इन्हीं वस्तुओ की मगल कामना करते आ रहे हैं।

पुराणों की मान्यता है कि कार्तिक की इस आमावस्या की रात्रि में विष्णु–प्रिया लक्ष्मी सद्गृहों के घर मे विचरण करके यह देखती हैं कि हमारे निवास के योग्य कौन सा घर है। और जहॉ कही अपने निवास की अनुकूलता दिखाई पडती है, वहीं रम जाती हैं। अतएवं इस रात्रि को प्रत्येक गृहस्थ को भगवती लक्ष्मी के निवास के सर्वथा योग्य अपना घर बनाना चाहिए। कतिपय पुराणो में बताया गया है कि घर की स्वच्छता, सुन्दरता और शोभा तो लक्ष्मी के निवास के लिए पहली वस्तु अवश्य है किन्तु, इन वाह्य उपकरणों के अलावा अन्य बाते भी हैं जो पुराण कर्ताओं की वाणी में वह स्वयं कहती हैं–'मै उन पुरूषो के घरों में निवास करती हूॅ जो स्वरूपवान, चरित्रवान, कर्म–कुशल तथा तत्परता से अपने कार्य को पूरा करने वाले होते है। धर्म का महत्त्व स्वीकार करते हैं। अपने गुरूजनो की सेवा–शुश्रूषा में निरत होते है। सदैव विषम परिस्थितियों मे भी अपने को काबू में रख सकते हो। जो आत्मविश्वासी होते हैं, क्षमाशील और सर्व–समर्थ होते हैं। इसी प्रकार उन स्त्रियों का घर मुझे पसन्द

जाता है। इस दिन मित्र–गण आपस में मिलते हैं तथा अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए एक दूसरे के घर मिठाइयाँ भिजवाते है। इस अवसर पर सबसे दूषित–प्रथा जुवा खेलना है। अतः कितने ही आदमी सब कुछ खोकर दरिद्र बन जाते हैं। धार्मिक जनता रात्रि में लक्ष्मी की पूजा कर जागरण करती हुई इस त्योहार को मनाती है।

गोवर्धन-पूजा (अन्न-कूट)

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा अर्थात् दीपावली के दूसरे दिन प्रभात के समय गोवर्धन पूजा होती है। गोवर्धन–पूजा, वे लोग जो गोवर्धन–पर्वत के पास रहते हैं, वहीं जाकर करते हैं। किन्तु जो लोग दूर रहते हैं, वे गोबर से या भोज्यान्न से गोवर्धन बना लेते हैं, और उसी गोवर्धन एवं कृष्ण की पूजा करते हैं। साथ ही मन्त्रो का पाठ करते हैं। उन मन्त्रों में इन्द्र–द्वारा की गयी अतिवृष्टि से गोकुल को कृष्ण द्वारा बचाये जाने की घटना की ओर संकेत है। 'स्मृतिकौस्तुभ'[१७] के अनुसार गोवर्धन पूजा को अन्नकूट (भोजन का टीला या शिखर) भी कहा गया है।

प्राचीन–काल में जनता राजा इन्द्र की पूजा किया करती थी और इन्द्र को भोग लगाने के लिए विभिन्न प्रकार के पकवान एवं मिष्ठान्न बनाती थी। वे इसको ग्रहण करते तथा प्रसन्न होकर कल्याण करते थे। यद्यपि अब इन्द्र की पूजा न होकर, गोवर्धन की पूजा होती है, परन्तु अन्नकूट की वही परम्परा अक्षुण रीति से चली आ रही है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को स्नानादि से निवृत्त होकर कृष्ण के उदात्त जीवन–चरित्र का श्रवण करने के पश्चात्–मन्दिर में गोवर्धन पर्वत के प्रतीक, गाय के पवित्र गोबर से गोवर्धन–पर्वत निर्मित किया जाता है।

---

[१७] स्मृति–कौस्तुभ पृष्ठ १७४

इस पर्व का विशेष रूप से आयोजन विष्णु–मन्दिरो एवं व्रज–भूमि में देखा जाता है। अन्नकूट पूजा इन्द्र के लिए होती थी जो कालान्तर में गोवर्धन पूजा के नाम से प्रसिद्ध हुई। वैदिक काल में कार्तिक के महीने की अमावस्या अथवा पूर्णमासी को नये चावलों से आग्रायणेष्टि यज्ञ किया जाता था। तत्पश्चात अन्न–ग्रहण किया जाता था। इस यज्ञ के प्रमुख देवता इन्द्र थे। कालान्तर मे यह यज्ञ इन्द्र–यज्ञ में परिणत हो गया।

इस प्रकार दीपावली के दूसरे दिन गोवर्धन पूजा होती है। सर्वत्र गोबर के गोवर्धन बनाकर उसका पूजन होता है। इस तिथि में गाय, बैल की भी पूजा होती है। गायो को दुहा नहीं जाता, बैलों को वाहन नहीं बनाया जाता। इसमें चन्द्र–दर्शन अशुभ माना जाता है। यदि प्रतिपदा में द्वितीया हो तो अन्नकूट अमावस्या को मनाया जाता है। इस दिन लोग गाय–बैल आदि पशुओं को स्नान कराते हैं। उनके पैर धोते है तथा फलफूल, माला, धूप, चन्दन आदि से उनका पूजन किया जाता है। इस तिथि में गायों की पूजा से प्रजा, समृद्धिशाली होती है।

गोवर्धन–पूजा और अन्नकूट दोनो एक ही उत्सव हैं। इसमें नैवेद्य के नित्य पदार्थो के अतिरिक्त छप्पन प्रकार के व्यंजन होने चाहिए। प्राचीन काल में व्रज के सम्पूर्ण नर–नारी विभिन्न प्रकार से इन्द्र–पूजन करते थे। किन्तु कृष्ण ने अपनी बाल्य –अवस्था में ही इन्द्र की पूजा का निषेध कर गोवर्धन की पूजा करायी एवं स्वयं गोवर्धन बनकर अर्पित की गयी समस्त सामग्री का भोग लगाया। यह देखकर इन्द्र ने व्रज में प्रलयंकारी वर्षा की, किन्तु कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उँगली पर उठाकर व्रजवासियों की रक्षा की। गोवर्धन–पूजा इसी घटना के पुण्य स्मरण के लिए की जाती है।[१८]

---

[१८] जैन एस.व्रत और त्योहार पृष्ठ ६६–१०३

कथा— गोवर्धन–पूजा का एक पौराणिक आख्यानात्मक वर्णन इस प्रकार है–एक बार वह अपने बालमित्र ग्वालों के साथ वृन्दावन में विचरण कर रहे थे, तो उन्होने व्रज के सहस्त्रों गोप–गोपिकाओं मण्डप बनाने और पूजा सामग्री जुटाने में निरत देखा। उन्होने गोपों से इस सामूहिक तैयारी का कारण पूछा। गोपों ने बताया–'आज व्रजभूमि में देवराज इन्द्र की पूजा की जायेगी, क्योंकि उन्हीं की कृपा से व्रज भूमि मे समय–समय पर वर्षा होती है। और दुर्भिक्ष दूर रहता है। ऐसे उपकारी देवराज की पूजा हम लोग बड़ी तैयारी और निष्ठा के साथ करते है।' कृष्ण ने बताया कि इस संसार मे रजोगुण से प्रेरित होकर मेघ वर्षा करते हैं, हम लोग गोप हैं, गोवर्धन पर्वत से ही हमारा सम्बन्ध है। अतः इसकी पूजा आवश्यक है। यही व्रजभूमि की शोभा एवं समृद्धि को देने वाला है। कृष्ण के इस वचन को सुनकर गोपों ने उन्ही के नेतृत्व मे गोवर्धन की पूजा करने का दृढ़ निश्चय किया। उन्होने भगवान कृष्ण के निर्देशानुसार सभी प्रकार के पकवानों और मिष्ठानों द्वारा गिरिराज गोवर्धन को भोग लगाया और उनकी सब प्रकार से पूजा और अर्चना की। कृष्ण ने अपने आधिदैविक रूप से पर्वत में प्रवेश किया और व्रजवासियो के द्वारा चढ़ाये गये सब पदार्थो का भक्षण किया। यह सुनकर इन्द्र अत्यन्त क्रोधित हुए, उन्होंने कृष्ण का मान–मर्दन करने तथा व्रज–भूमि को विनष्ट करने का निश्चय किया, प्रलयकाल की तरह लगातार वृष्टि करने लगे। अत्यधिक वृष्टि से व्रज–वासी व्याकुल हो उठे। ग्वालों के घर–द्वार नष्ट हो गये, समूची कृषि विनष्ट हो गयी, कितने पशु मर गये। जब व्रजवासियों ने इन्द्र की यह विनाश–लीला देखी तो घबराए और भगवान् कृष्ण की शरण में पहुँच कर अपनी रक्षा की गुहार लगायी।

भगवान् कृष्ण स्वयं चिंतित थे। उन्होंने सबके साथ जाकर अपनी उँगली पर गोवर्धन पर्वत को धारण कर लिया और समस्त व्रजवासियों को उसी पर्वत

के नीचे शरण दिया। यह देख कर श्री कृष्ण को अवतार रूप जानकर इन्द्र स्वय वहाँ आये एवं कृष्ण से क्षमा–याचना की।[१९] इस प्रकार कृष्ण ने गोवर्धन की पूजा कर इन्द्र के गर्व को समाप्त किया। इसी घटना के पुण्य–स्मरण में गोवर्धन–पूजा आज भी अन्नकूट के रूप मे कृष्ण मन्दिर में मनायी जाती है।

इस उत्सव के वर्णन में तीन तत्व हैं–एक तो समाज के उत्सव का रूप, दूसरे गिरि या पर्वत की पूजा और तीसरे गोपो द्वारा अपने गोधन की पूजा या सार–सम्भाल। इसमे पहला तत्त्व अर्थात् किसी पर्वत पर जाकर उत्सव का आयोजन और दूसरा तत्त्व पर्वत की पूजा।[२०]

ब्रज–मंण्डल विशेषकर गोवर्धन में यह उत्सव अत्यन्त समारोह के साथ सम्पादित होता है। उस दिन विभिन्न प्रकार के मिष्ठान से गोवर्धन को भोग लगाया जाता है। मथुरा, वृन्दावन, नाथद्वारा, द्वारिका, काशी के अन्नपूर्णा आदि मन्दिरो मे अन्नकूट की झांकी देखने वाले तथा भोग चढाने वाले सहस्त्रों तीर्थ–यात्री दूर–दूर से आकर भाग लेते हैं। यह दृश्य अत्यन्त शोभनीय होता है। इसी दिन अन्नपूर्णा का नाम सार्थक होता है।

मार्ग पाली बन्धन

अपराह्ण में ही इस प्रतिपदा को मार्गपाली–बन्धन कृत्य किया जाता है। अपने घर में आचार के अनुसार कुश या काश की रस्सी बनायी जाती है और पूर्व दिशा में स्थित किसी वृक्ष या लम्बे स्तम्भ से उसे बॉधा जाता है। उसका नमन करना होता है, और मन्त्र के साथ प्रार्थना की जाती है। उस रस्सी के नीचे से सभी–राजा, ब्राह्मण आदि गौओं, हाथियो के साथ निकलते हैं। इसी

---

[१९] निर्णय सिन्धु पृष्ठ ४०७

[२०] अग्रवाल श्री वासुदेव शरण, प्राचीन भारतीय लोक धर्म–पृष्ठ २५

प्रकार उसी ढंग की रस्सी में रस्साकशी की जाती है। एक ओर राजकुमार लोग और दूसरी ओर निम्न जाति के लोग होते हैं। यह कृत्य किसी मन्दिर के समक्ष या महल में या चौराहे पर किया जाता है, और समान संख्या में लोग दोनो ओर लग जाते है। यदि निम्न जाति के लोग जीत जाते है तो समझा जाता है कि राजा उस वर्ष विजयी होगा।[२१]

आदित्य–पुराण मे 'बलि–पूजा' को 'मार्गपाली' कहा गया है। इस दिन सायं– काल के समय कुश या कांश का रस्सा बनाकर उस पर अशोक के पत्ते गूँथकर राजप्रासाद के प्रवेश–द्वार पर बॉधकर गंध–पुष्प आदि से पूजन किया जाता है। रात मे राजा–बलि का पूजन किया जाता है।[२२]

कौमुदी महोत्सव

यदि प्रतिपदा द्वितीया से युक्त हो तो प्रात. काल नारियो द्वारा 'नीराजना–उत्सव' किया जाता है। यदि प्रतिपदा थोड़ी देर रहने वाली हो तो द्वितीया की सध्या में 'मंगल–मालिका' का कृत्य होता है। कौजागरी सम्भवत 'कौमुदी–जागर' का प्रतीकात्मक रूप है। आश्विन शुक्ल चतुर्थी सहित इन तीनों को 'कौमुदी महोत्सव' की संज्ञा मिली है। भविष्योत्तर एवं पद्मपुराण में इसका अर्थ है–जिसमें लोग इस पृथ्वी पर आपस में प्रसन्नता की प्राप्ति करते है। दूसरा अर्थ यह है कि इस उत्सव में 'बलि को कुमुदो' का दान दिया जाता है। इस पर्व में लक्ष्मी की विधिवत् पूजा की जाती है। इस पर्व का मुख्य उद्देश्य धन की प्राप्ति एव निर्धनता का विनाश है। उस दिन व्रती को रात्रि–जागरण करना चाहिए। पूजन के बाद व्रती को फलाहार करना चाहिए। दूसरे दिन प्रातः स्नानादि के पश्चात् ब्राह्मण को भोजन कराकर स्वयं भोजन ग्रहण करना

---

[२१] निर्णय सिन्धु–२ पृष्ठ २०२
[२२] जैन एस. व्रत और त्योहार पृष्ठ ६६४

चाहिए। ऐसी अवधारणा है कि लक्ष्मी प्रत्येक घर में अर्धरात्रि में विचरण कर पूछती है कि 'को जागर्ति? कौन जाग रहा है।' इसी से 'कोजागार' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। यह व्रत लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए किया जाता है। इस दिन जागरण का बड़ा माहात्म्य है। जो भक्त रात्रि मे जागरण कर लक्ष्मी को प्रसन्न करता है, लक्ष्मी उस पर विशेष रूप से कृपा करती हैं। शरद पूर्णिमा के दिन एक अन्य उत्सव का आयोजन किया जाता है, जिसे शरद–पूर्णिमा कहा जाता है। ऐसी अवधारणा है कि इस रात्रि को चन्द्रमा को दुग्ध तथा खीर का भोग लगाना चाहिए। खीर बनाकर आकाश के नीचे रख दिया जाता है, जिससे उस पर चन्द्र की किरणें पड़ें। दूसरे दिन प्रातःकाल उसे लोग ग्रहण करतें है। इसी रात्रि को कीर्तन, भजन आदि का आयोजन भी होता है।

एक पौराणिक कथा के अनुसार मगध देश मे वलित नामक एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। उसे याचना करना स्वीकार नहीं था अतः वह निर्धन का निर्धन बना रहा। एक बार वलित लक्ष्मी की खोज में घर से निकला। जाते–जाते वह एक जंगल मे पहुँचा। उस वन में काली–नागकन्या कोजागर–व्रत करने के लिए आयी थी। पूजन करने के पश्चात् द्यूत खेलने के लिए उसका कोई साथी नही था। अतः वह द्यूत खेलने के लिए किसी साथी की खोज में निकली। रास्ते में वलित नाम के दरिद्र ब्राह्मण से भेंट हुई। उसने वलित को द्यूत–क्रीड़ा के लिए आमन्त्रित किया। वलित ने कहा द्यूत से लक्ष्मी का ही नही वरन् धर्म का भी नाश होता है। तब नाग–कन्या ने इस अवसर पर द्यूत–क्रीडा के महत्व को बताते हुए कहा कि इस दिन की क्रीड़ा से लक्ष्मी प्रसन्न होती है। मैं अपनी वंश–परम्परा से चली आ रही लक्ष्मी–पूजा के प्रसंग मे आज की रात्रि द्यूत–क्रीडा के लिए विवश हूँ। मनुष्य को अपनी कुल मर्यादा की रक्षा तो करनी ही चाहिए और फिर अश्विन पूर्णिमा की रात्रि में द्यूत–क्रीड़ा

का निषेध शास्त्रकारों ने भी नही किया है। आज की द्यूत क्रीड़ा से लक्ष्मी देवी प्रसन्न होती हैं।

वलित सहमत हो गया और उसने नाग कन्या के साथ द्यूत–क्रीड़ा में भाग लेने के लिए स्वीकृति दे दी। द्यूत क्रीड़ा में अनभ्यास होने के कारण वह अपना सब कुछ हार गया और इसी चिन्ता में ग्रस्त था। तभी नारायण ने वलित की दुर्दशा देखी तो लक्ष्मी जी से उस पर कृपा करने को कहा। लक्ष्मी ने प्रसन्न होकर वलित को कामदेव के समान मनोहर रूप एवं यौवन दिया, जिस पर नाग–कन्या आसक्त हो गयी। लक्ष्मी की कृपा से उसकी जीत हुई। उसने नागकन्या से गन्धर्व विवाह किया और अक्षय धन सम्पदा के साथ वह नागकन्या को सम्मान पूर्वक घर ले आया।

यम-द्वितीया

कार्तिक शुक्ल द्वितीया को एक उत्सव का आयोजन होता है जिसे यम–द्वितीया या भैया–दूज भी कहते हैं। कार्तिक शुक्ल की द्वितीया को यमुना ने यम को अपने घर भोजन के निमित्त बुलाया था, इस लिए इसे संसार में यम– द्वितीया के नाम से घोषित किया गया।[२३] इस तिथि के मध्याह्न को अपने घर मे भोजन नहीं करना चाहिए। बल्कि अपनी बहन के घर मे स्नेहवश खाना चाहिए। ऐसा करने से कल्याण अथवा समृद्धि प्राप्त होती है। यह तिथि भैया–दूज या भ्रातृ– द्वितीया के नाम से भी विख्यात है। यम–द्वितीया के दिन यमराज का पूजन किया जाता है। कहीं–कही इसी दिन कलम–दावात तथा चित्र–गुप्त की पूजा की जाती है। इस दिन बहिनें अपने भाई को अपने घर पर बुलाकर उसका टीका काढ़ती हैं, तथा भोजन कराती हैं। इसी से इसका नाम

---

[२३] भविष्य पुराण १४,१८–७३

'भैया—दूज' प्रसिद्ध है। भाई के कल्याण और वृद्धि की इच्छा से बहन इस दिन कुछ अन्य मांगलिक विधान भी करती है।

पूजन-विधि- प्रात· काल स्नानादि से निवृत्त होकर मध्याह्न के पहले प्रत्येक स्त्री को अपने भाई के दीर्घ जीवन, कल्याण एवं वृद्धि के निमित्त तथा अपने सौभाग्य के लिए अक्षत एवं कुमकुम से देवता यमराज की विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। कतिपय स्थानों पर भाई की प्रतिमा बनाकर घर के द्वार पर गोबर की चौकोर वेदी की रचना की जाती है। उसके चारों कोनो पर चार पुतलियो तथा बीच में एक पुतला सजाया जाता है। इसके बाद 'घर गृहस्थी की वस्तुएँ गोबर से बनाकर रखी जाती है। तदुपरान्त बहन द्वारा पूजा करके प्रासगिक कथा का श्रवण करना चाहिए। कथा के पश्चात् वह अपने भाई को टीका करके भोजन कराती है। कतिपय स्थानो में बहन एक गोबर की प्रतिमा बनाकर उस पर ईट रखती है और भाई के लिए मंगल—कामना करती है। इसके पश्चात् बहन भकटैया एवं चना लेकर अपनी जीभ को कॉटे से दागती है। भैया—दूज भाई—बहन के अगाध प्रेम का पर्व है।[२४]

एक पौराणिक कथा के अनुसार——भगवान सूर्य नारायण की पत्नी का नाम छाया था। उन्हीं की कोख से यमराज तथा यमुना का जन्म हुआ था। यमुना यमराज से बडा स्नेह करती थी। वे उनसे बराबर निवेदन करती थी कि इष्टमित्रों सहित उनके घर आकर भोजन करें, लेकिन अपने कार्य में व्यस्त यमराज बात को टालते रहते थे। कार्तिक शुक्ल द्वितीया का दिन आया। यमुना ने उस दिन यमराज को भोजन का निमन्त्रण देकर उन्हें अपने घर आने के लिए वचनबद्ध कर लिया।

---

[२४] जैन एस व्रत एव त्योहार पृष्ठ १०१—१०३

यमराज ने सोचा मै तो प्राणों को हरने वाला हूँ कोई मुझे अपने घर नहीं बुलाना चाहता। बहन जिस सद्भावना से मुझे बुला रही है, उसका पालन करना मेरा कर्तव्य है। यही सोच कर यमराज बहन के घर जाने का मन बना लिया। यमराज को अपने घर आया देख कर, यमुना की खुशी का ठिकाना न रहा। यमुना ने उन्हें स्नानादि कराकर पूजन के बाद अनेक प्रकार के व्यजन परोसकर भोजन कराया। यमुना द्वारा किये गये आतिथ्य से प्रसन्न होकर यमराज ने बहन को वर मॉगने का आदेश दिया। यमुना ने कहा 'भाई आप प्रतिवर्ष इसी दिन मेरे घर आकर भोजन करे। मेरी तरह जो बहन इस दिन अपने भाई को आदर–सत्कार करके टीका काढ़े, उसे तुम्हारा भय न रहे'। यमराज ने 'तथास्तु' कहकर, यमुना को अमूल्य वस्त्राभूषण देकर यम–लोक की राह ली।

इस दिन जो प्राणी नरक में रहते थे, वे तृप्त होकर पापमुक्त एवं सभी बन्धनो से रहित हो जाते हैं। इस तिथि को जो अपनी बहन के हाथ भोजन प्राप्त करता है उसे धन एवं सुख की प्राप्ति होती है। मूल रूप से इस पर्व का उद्देश्य भाई के प्रति बहिन की मंगल–कामना ही है।

पुराणों में वर्णित है कि जो व्यक्ति अपनी विवाहित बहनों को वस्त्रो एवं आभूषणों से सम्मानित करता है, उसे वर्ष भर किसी भी शत्रु का भय नहीं रहता है। इस तिथि को यम को यमनुा ने इस लोक में स्नेह से भोजन कराया था, अतः जो यम द्वितीया के दिन बहन के हाथ का भोजन करता है, उसे धन एवं सुख की प्राप्ति होती है। वैदिक काल तथा स्मृतियों के काल में भाई से विहीन कुमारियों के विवाह में कठिनाई होती थी, परन्तु इस भावना से वशीभूत होकर इस पर्व को आयोजित करना सम्भव प्रतीत नहीं होता। विवाहित बहनों से वर्षो तक भेंट नही हो पाती है, भाई दरिद्र हो सकता है, बहन अपने घर में सम्पत्ति

वाली हो सकती है, इसी प्रकार के सम्भावित कारणों से द्रवीभूत होकर सम्भवत. प्राचीन लेखकों ने इस पर्व की परिकल्पना की थी। इस अवसर पर भाई–बहन एक दूसरे से मिलते है एव बचपन के सुख–दुख को याद करते हैं। इस पर्व में यम और यमी का आख्यान जोडकर धार्मिकता का रंग भी दिया गया है।इस पर्व के आयोजन का ऐतिहासिक कारण उज्जैनी के सम्राट विक्रमादित्य का आज ही के दिन राज्याभिषेक होना था।

जैन–परम्परा के अनुसार इसी दिन चौतीसवें तीर्थकंर महावीर का निर्वाण हुआ था। आज भी उनकी निर्वाण–स्थली पावापुरी में दीपमालिका का पर्व आयोजित किया जाता है। प्रायः सभी जैन मन्दिरों में इस अवसर पर अपने–अपने सामर्थ्य के अनुसार मिष्ठान्न चढ़ाये जाते है तथा विविध समारोहों का आयोजन किया जाता है।[२५] यदि इन कथाओ से उद्भूत दीपावली के आयोजन के विषय में दृष्टिपात करें, तब हम यह कह सकते है कि तामसी प्रवृत्तियों के विनाश हेतु दीपक जलाने की परम्परा प्रचलित हुई। इसमें मूल रूप से अन्धकार को हटाने का भाव है, जो सद्गुणों के विकास और दुर्गुणो को तिरोहित होने का प्रतिबिम्ब है।

पर्यावरण का प्रभाव—वर्षा–काल में दक्षिण–पश्चिम मानसून हवाएँ चलने लगती हैं। आश्विन के महीने में उनका अन्त हो जाता हैं। अतः यह सम्भव है कि वर्षा– काल की समाप्ति पर अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए दीपक जलाये जाते हैं। इस प्रथा ने कालान्तर में दीपावली पर्व का रूप धारण किया।[२६]

[२५] गोडे पी.के भारतीय विद्यया १९४७ पृष्ठ ५६
[२६] थॉमस पी. फेस्टिवल ऐण्ड हॉली डे आफ इण्डिया पृष्ठ–४–६

चिरैया गौर

गोवर्धन पूजा एवं अन्नकूट के ही दिन प्रात. चिरैया–गौर का पर्व होता है। कतिपय स्थानों मे यह सौभाग्यवती स्त्रियो द्वारा ही सम्पादित होता है। शरद्–पूर्णिमा के दिन चावल धोकर चॉदनी में फैला दिये जाते हैं, जिसमें चन्द्रमा की किरणों के अमृत का उनसे सम्पर्क हो सके। ऐसी अवधारणा है कि शरद् पूर्णिमा को रात्रि मे चन्द्रमा से अमृत की वर्षा होती है। अमृत–संयुक्त चावलों को दीवाली की रात्रि में एक मटकी मे रख दिया जाता है, और उस पर एक घी का दीपक जला दिया जाता है। उन चावलो को 'जागरण वाले चावल' कहा जाता है। प्रातः काल होने से पहले नारियॉ उसे पीसती है। स्नान आदि के उपरान्त चावल को आटे मे मिलाकर चिडिया बनायी जाती है। उसको पकाकर उसके पीठ पर चावल के आटे का दीपक बनाकर रख दिया जाता है। स्त्रियाँ इस चिडिया को दीवाली की मिठाई,दूध या दही के साथ खाती हैं। चिडिया खाते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखती हैं कि उनका सिर न खायें और नहीं बगल मे चिपके अण्डो को। भोजन करने के पूर्व स्त्रियॉ उनका सिर तोडकर दबा लेती हैं। इस पूजा के पश्चात् भोजन के पूर्व स्त्रियाँ इसकी कथा का श्रवण करती हैं।

अपनी पावनता और पवित्रता के लिए दीवाली का त्योहार हमारे देश में तो लोक प्रिय है ही, हमारी सीमा से बाहरी देशों में भी इसका आदर है। वैसे तो सभी पर्वो का अपना महत्त्व है, किन्तु दीपावली की अपनी व्यक्तिगत विशेषताएँ हैं, जिसके कारण यह देश के विभिन्न भागों में अनेक–रूपता लिए प्रचलित है। शरद ऋतु भारत में सर्वत्र प्रकृति नवीन शोभा धारण करती है। हमारे कृषि–प्रधान देश में लक्ष्मी–पूजन करने का इससे बढ़कर कौन सा

सुअवसर हो सकता है? अतः ऐसे अवसर पर नागरिक बड़े उत्साह से एव श्रद्धा के साथ पूजन करते है। भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशो के लोग भिन्न–कथाओं के अनुसार इस पर्व को आयोजित करते है। परन्तु सामान्यत· उन सभी मे अवतारित पुरूषो एवं महान शक्तियो के जीवन–चरित्र तथा द्वारा उनके किये गये महान कार्यो की स्मृति में इस पर्व को आयोजित करने की परम्परा दृष्टि–गोचर होती है। लोग बीते हुए वर्ष और नये वर्ष की सन्ध्या को दीप–उत्सव मनाकर इसका स्वागत करते है। सम्पूर्ण वर्ष हमारे लिए शुभ हो, इसलिए भी पूजन करते है, और अपनी संकल्पित योजनाओं को सफल करने का प्रयास प्रारम्भ करते हैं। 'भारतीय संस्कृति में मृत्यु–देवता की भी वन्दना की गयी है। सायकाल यम की पूजा होती है एवं उनके नाम का दीपक जलाया जाता है। लोगो का प्राण–हरण करने वाले यमराज का तर्पण करना, अपने पूर्वजों का स्मरण करना, मिष्ठान्न का उपयोग करना तथा सुगन्धित धूप, दीप एवं पुष्पों से घर सजाना, नगर को सजाना इस उत्सव की विशिष्टता है।'[२७]

---

[२७] शर्मा.ए सी भारत के त्योहार, पृष्ठ १२६–१३३

मकर-संक्रान्ति

मकर–संक्रान्ति एक महत्त्वपूर्ण धार्मिक पर्व है। संक्रान्ति का अर्थ है–सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि मे प्रवेश करना। अतः जब मकर राशि में सूर्य प्रवेश करता है, वह तिथि मकर–संक्रान्ति के नाम से विख्यात है। इस प्रकार जब सूर्य–धनु राशि को छोडकर मकर–राशि में प्रवेश करता है, तो मकर–संक्रान्ति होती है।[१] राशियाँ बारह हैं यथा–मेष, वृषभ, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ, मीन[२]। प्रत्येक सूर्य–संक्रान्ति पवित्र रूप मे ग्राह्य होती है।

केवल सूर्य का ही किसी राशि में प्रवेश करना पवित्रता का द्योतक नहीं है, प्रत्युत सभी ग्रहो का अन्य नक्षत्र या अन्य राशि में प्रवेश पुण्य–काल माना जाता है।[३] हेमाद्रि[४] और काल–निर्णय[५] में क्रमश· जैमिनि और अनेक अन्य ज्योतिषशास्त्रों से उद्धरण देकर सूर्य एवं अन्य ग्रहों की सक्रान्ति को पुण्यकाल घोषित किया गया है जैसे 'सूर्य के विषय मे सक्रान्ति के पूर्व या पश्चात् सोलह घटिकाओं का समय पुण्य–समय है; चन्द्र के विषय में दोनो ओर एक घटी तेरह पल पुण्य–काल है, मगल के लिए चार घटिकाओं एवं एक पल, बुध के लिए तीन घटिकाएॅ एवं चौदह पल, बृहस्पति के लिए चार घटिकाएँ एवं सैंतीस पल, शुक्र के लिए चार घटिकाएँ एवं एक पल, तथा शनि के लिए बयासी घटिकाएँ एव सात पल। स्मृति–कौस्तुभ[६] के अनुसार 'संक्रान्ति' शब्द केवल रवि–संक्रान्ति के नाम से ही द्योतित है।

---

[१] हेमाद्रि काल–खण्ड पृष्ठ ४१०
[२] काल–निर्णय पृष्ठ ३३१
[३] काल–निर्णय पृष्ठ ३४५
[४] हेमाद्रि काल–खण्ड पृष्ठ ४३७
[५] काल–निर्णय पृष्ठ ३४५
[६] स्मृति–कौस्तुम पृष्ठ ५३१

इस के कम से कम सहस्त्र वर्ष पूर्व ब्राह्मण और उपनिषद ग्रन्थों में उत्तरायण के छः मासो का उल्लेख मिलता है।[७] ऋग्वेद[८] में 'अयन' शब्द आया है, जिसका अर्थ 'मार्ग' या 'स्थल' है। गृह्य सूत्रों मे उत्तरायण उद्गमन का द्योतक है। प्राचीन श्रोत, गृह्य एव धर्म–सूत्रो में राशियो का उल्लेख नहीं है। 'उद्गमन' कई शताब्दी पूर्व से शुभ माना गया है। अस्तु मकर–संक्रान्ति में सूर्य की उत्तरायण गति प्रारम्भ होती है।[९] इसलिये, मकर–संक्रान्ति का अत्यधिक माहात्म्य है। सूर्य जब एक राशि को छोड़कर दूसरी में प्रवेश करता है तो उस काल का यथावत ज्ञान हमारी मांसल ऑखो से सम्भव नही है, अत संक्रान्ति की तीन घटिकाएँ इधर या उधर उक्त काल का द्योतन करती हैं।[१०] संक्रान्ति–कृत्यों के लिय यह अधिकतम काल–सीमा है। देवी–पुराण में संक्रान्ति–काल की लघुता की ओर संकेत किया गया है—एक स्वस्थ एवं सुखी मनुष्य जब एक बार पलक गिराता है तो उसका तीसवाँ काल 'तत्पर' कहलाता है, तत्पर का सौवाँ भाग 'त्रुटि' कहा जाता है, तथा त्रुटि के सौवें भाग में सूर्य का दूसरी राशि मे प्रवेश होता है। संक्रान्ति में पुण्य–काल सात माने गये हैं—तीन, चार, पाँच, सात, आठ, नौ, या बारह घटिकाऍ। इन्हीं अवधियों में वास्तविक फल की प्राप्ति होती है। सक्रान्ति, दिन अथवा रात्रि दोनों में हो सकती है। दिन वाली संक्रान्ति पूरे दिन भर पुण्य काल वाली होती है। रात्रि वाली संक्रान्ति के विषय में हेमाद्रि, माधव आदि में लम्बे लम्बे विवेचन उपस्थित किये गये हैं। तिथितत्व[११] एवं धर्मसिन्धु[१२] के अनुसार मकर एवं कर्कट को छोड़कर अन्य संक्रान्तियों का पुण्यकाल दिन में पड़ता है।

---

[७] हेमाद्रि काल–खण्ड पृष्ठ ४१०

[८] ऋग्वेद ३,३३,७

[९] आश्वलायन गृह्य सूत्र १,१,१–२ कौषतिकी ग्रह्य सूत्र–१,५ आपस्तम्ब गृह्य सूत्र–१

[१०] हेमाद्रि काल निर्णय पृष्ठ ५३३

[११] तिथितत्व पृष्ठ १४४–१४५

[१२] धर्मसिन्धु पृष्ठ २–३

संक्रान्ति–पर्व पर व्रत के अनुपालन का उल्लेख मिलता है। मत्स्यपुराण[१३] में संक्रान्ति–व्रत का वर्णन किया है–—एक दिन पूर्व व्रती को एक बार मध्याह्न मे भोजन करना चाहिए और संक्रान्ति के दिन दाँतों को स्वच्छ करके तिल–युक्त जल से स्नान करना चाहिए। गृहस्थ को भोजन सामग्रियों से युक्त तीन पात्र तथा एक गाय, यम, रूद्र एव धर्म के नाम पर देनी चाहिए। ब्राह्मणों को मागलिक श्लोक पढना चाहिए। इसके उपरान्त तेल–विहीन भोजन करना चाहिए और यथाशक्ति अन्य लोगों को भोजन देना चाहिए। देवी पुराण[१४] के अनुसार जो व्यक्ति सक्रान्ति के पवित्र दिन पर स्नान नहीं करता, वह सात जन्मों तक रोगी और निर्धन रहता है, संक्रान्ति पर देवों को जो हव्य एवं पितरों को कव्य दिया जाता है वह सूर्य द्वारा, भविष्य जन्मों में लौटा दिया जाता है। पुण्य–काल में स्नानदान से विशेष फल की प्राप्ति होती है। सामान्यतया रात्रि में स्नान का निषेध है तथा दान का विशेष रूप से निषेध है किन्तु विशिष्ट अवसरों यथा ग्रहण, विवाह–संक्रान्ति, यात्रा, जनन, भरण तथा इतिहास–श्रवण पर दान किया जा सकता है।[१५]

मकर–सक्रान्ति के सम्मान में तीन दिनो तक या कम से कम एक दिन का उपवास रखना चाहिए। 'जो व्यक्ति तीन दिनों तक उपवास करता है, और उसके उपरान्त स्नान करके सूर्य की पूजा करता है, वह वांछित इच्छाओं की पूर्ति का अधिकारी होता है।' अतः संक्रान्ति का गंगा–स्नान अति पुण्यदायक है, ऐसा करने से मनुष्य ब्रह्म–लोक को प्राप्त होता है।[१६]

---

[१३] मत्स्यपुराण–२,६८,१७

[१४] देवी–पुराण, कालविवेक पृष्ठ ३८०, कालनिर्णय ३३३

[१५] हेमाद्रि काल–खण्ड, पृष्ठ ४३२

[१६] वर्ष–क्रिया–कौमुदी पृष्ठ–५१४

संक्रान्ति पर श्राद्ध भी करना चाहिए। विष्णु–धर्मसूत्र [१७] के अनुसार 'आदित्य अर्थात् सूर्य के सक्रमण पर दोनों विषुव दिनों पर, अपने जन्म–नक्षत्र पर, विशिष्ट शुभ अवसरो पर काम्य श्राद्ध करना चाहिए। इन दिनो के श्राद्ध से पितरो को अक्षय संतोष प्राप्त होता है'। निर्णय–सिन्धु [१८] के मतानुसार श्राद्ध पिण्ड–विहीन एवं पार्वण की भॉति होना चाहिए। ब्रह्मपुराण के अनुसार–अष्टमी, पक्षो की अन्त की तिथियों में, रवि–सक्रान्ति के दिन तथा पक्षोपान्त (चतुदर्शी) मे सम्भोग, तिल–मांस–भोजन नही करना चाहिए।

आजकल मकर–संक्रान्ति धार्मिक कृत्य की अपेक्षा सामाजिक अधिक है। उपवास नहीं किया जाता। शायद ही कोई श्राद्ध करता हो, किन्तु बहुत से लोग गगा–स्नान अवश्य करते हैं। तिल का प्रयोग अधिक होता है–यथा तिल से उबटन लगाना, तिल–दान करना एवं तिल खाना।[१९]

ज्योतिष–शास्त्र के अनुसार जाडे का अयन–काल २१ दिसम्बर को होता है और उसी दिन से सूर्य उत्तरायण होते है, किन्तु प्राचीन पद्धतियों के अनुसार रचे गये पञ्चाङ्गों मे उत्तरायण का आरम्भ १४ जनवरी से माना जाता है। इस प्रकार उपर्युक्त मकर–संक्रान्ति २३ दिन पीछे होती है। हेमाद्रि के अनुसार प्रचलित संक्रान्ति से १२ दिन पूर्व ही पुण्य–काल पड़ता है, अतः प्रतिपादित दान आदि कृत्य प्रचलित संक्रान्ति दिन के १२ दिन पूर्व भी किये जा सकते हैं।

आगे चलकर मकर–संक्रान्ति का दैवीकरण हो गया। वह साक्षात् दुर्गा मानी जाने लगी। आज कल के पञचाङ्गों में भी संक्रान्ति का दैवीकरण मिलता है, जिसमें वाहन, वस्त्र, आयुध आदि का उल्लेख मिलता है। मकर–संक्रान्ति,

---

[१७] विष्णु–धर्म–सूत्र–७७,१–२

[१८] निर्णय–सिन्धु पृष्ठ ६

[१९] हेमाद्रि काल–खण्ड पृष्ठ ४१५–४१६

जिसमे सूर्य की उत्तरायण गति आरम्भ होती है, राशियो के चलन के उपरान्त एक पवित्र तिथि मानी जाने लगी।

इस पर्व का प्रचलन हमारे देश में किसी न किसी रूप मे सर्वत्र पाया जाता है। मकर–सक्रान्ति के दिन को उत्तर–प्रदेश के पूर्वी जिलो मे 'खिचडी' नाम से पुकारते है। महाराष्ट्र–प्रदेश के ब्राह्मणों मे विवाहिता लडकियां पहली संक्रान्ति को सौभाग्यवती स्त्रियों को तेल, कपास, नमक आदि देती है। राजस्थान, मध्यप्रदेश एवं उत्तर–प्रदेश में इस अवसर पर वस्त्र, अन्न आदि का दान किया जाता है। बंगाल में इस दिन पूजा एवं स्नान की परम्परा प्रचलित है।[२०] प्रयाग मे इस दिन लाखों श्रद्धालुओं की भीड़ लग जाती है। उनका ऐसा मानना है कि इस दिन के स्नान से उनके सारे पापों का नाश हो जाता है।

दक्षिण भारत में इस दिन पोगल नामक उत्सव होता है। पोंगल का अर्थ है, क्या उबल रहा है? अथवा यह क्या पकाया जा रहा है? इस दिन सौभाग्यवती नारियाँ गीले वस्त्र मे ही दूध–चावल से भरे बर्तन को अग्नि में रखती हैं। गंगासागर में मकर–संक्रान्ति का बहुत बडा मेला लगता है। वहाँ इस अवसर पर समुद्र में स्नान करने के लिए लाखों लोग एकत्र होते हैं। मकर–संक्रान्ति के समय जो अयन बदलने की घटना होती है उस पर प्रायः अन्य देशो में कुछ न कुछ करने की परम्परा है। राजस्थान तथा गुजरात में इस दिन बालक, युवा, युवतियाँ व वृद्ध–जन–सभी बड़े उत्साह से पतंग उड़ाते हैं।

प्राचीन रोम मे इस दिन खजूर, अंजीर, शहद बाँटने की प्रथा है। प्राचीन यूनान में लोग वर–वधू की सन्तान वृद्धि के लिए तिलों का पकवान बाँटते थे। इस दिन कम्बल और शुद्ध घी का दान अत्यन्त पुण्य–कार्य माना जाता है।

---

[२०] व्रतोत्सव–चन्द्रिका २६१–२६३

मकर–संक्रान्ति के दिन पूर्व हिमांचल, हरियाणा तथा पंजाब में यह त्यौहार 'लोहडी' के रूप में मनाया जाता है। इस दिन सायं–काल अँधेरा होने पर होली के समान आग जलाकर तिल, गुड, चावल तथा भुने हुए मक्का से अग्नि–पूजन करके आहुतियॉ डाली जाती हैं। इस अवसर पर लोग मूॅगफली, तिल की गज्जक, रेवडियाँ आदि आपस मे बॉटकर खुशियाँ मनाते हैं।

यह पर्व भारत के प्रत्येक कोने में मनाया जाता है। इस पर्व की पूजा–पद्धति में शीत के प्रकोप से छुटकारा पाने का विधान अधिक है। इस पर्व पर तिल का विशेष महत्त्व माना जाता है। तिल–खाना तथा तिल–बाँटना इस पर्व की प्रमुख परम्परा है सम्भवतः शीत–निवारण के लिए ही तिल का अधिक महत्त्व है।

कथा–जाबालि ऋषि अपने समय के एक प्रख्यात महापुरूष थे। एक बार सुनाग नामक मुनि ने उनसे मकर–सक्रान्ति का माहात्म्य बताते हुए कहा था कि मकर–संक्रान्ति के अवसर पर शिव जी की प्रतिमा को घृत से अभिषिक्त करके उस पर तिल के फल एवं बेल पत्र चढ़ाने की विशेष महिमा है। तिल का फूल न मिलें तो कमल का फूल भी फलप्रद माना जाता है। रात्रि में जागरण के साथ 'ओम् ्नमः शिवाय ' मन्त्र का जाप तथा प्रात,काल स्नान एवं पूजा करने से शिव–गति प्राप्त होती है, एव इस जीवन में दरिद्रता एवं विपदा का विनाश होता है। मकर–संक्रान्ति पर दधि–मंथन दान का भी महत्त्व है। अखण्ड सुख, सौभाग्य, धन–धान्य तथा संतति की प्राप्ति के लिए यशोदा एवं कृष्ण की प्रतिमाओं का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिए और दधि–मन्थन की सभी सामग्रियों के साथ प्रयुक्त प्रतिमा भी किसी सत्पात्र को दान कर देना चाहिए।

एक बार कृपाचार्य की पत्नी कृपी ने दुर्वासाऋषि से अपनी दरिद्रता एवं सतानाभाव का दु;ख दूर करने का उपाय पूछा था, तो दुर्वासा ने उन्हें यही दधि–मन्थन–व्रत करने का उपाय बताया था। जिससे उनका दु,ख दारिद्रय दूर हुआ।

पोंगल

पोंगल तमिलनाडु का प्रमुख त्योहार है। यह हर वर्ष जनवरी में मकर–सक्रान्ति के अवसर पर मनाया जाता है। उसी समय धान की फसल भी पक कर तैयार होती है। पोगल के अवसर पर ही धान की कटाई शुरू होती है। नये धान को कूट कर नया चावल नये घडों में उबाला जाता है। उसे सूर्य–देव को अर्पित करके खुशियॉ मनायी जाती हैं। पोंगल का शाब्दिक अर्थ है–उबलना।

पोंगल पर्व तीन दिन तक मनाया जाता है। प्रथम दिन 'योगी पोंगल' कहलाता है। इस दिन पारिवारिक उत्सव होते हैं। हर परिवार अपने घर की लिपाई–पुताई तथा साज–सज्जा करता है।

दूसरे दिन सूर्य–पोंगल होता है। इस दिन नये धान को कूटकर निकाला चावल,दूध,घी और गुड़ के साथ नये घड़े मे उबाला जाता है। इस प्रकार जो खीर तैयार होती है, उसे सूर्य देवता को अर्पित किया जाता है तथा पोंगल वाले पात्र की पूजा की जाती है। लोग एक दूसरे से पूछते हैं कि–"क्या पोंगल हो गया।" उत्तर मिलता है "हॉ हो गया"। उस दिन सब नये कपड़े पहनते हैं।

पोंगल का तीसरा दिन 'मट्टू पोंगल' कहलाता है। मट्टू का अर्थ है पशु। इस दिन पशुओं को पास के जलाशय में नहलाया जाता है। उनकी सींगों

को तेल और रंगो से रंगकर उनका श्रृगार किया जाता है। उनके गले में घटियाँ बॉधी जाती है, फूलो की माला भी पहनाई जाती है। पोगल को सूर्य देवता की चढी खीर पशुओं को भी खिलाई जाती है। इस प्रकार पोंगल पर्व का तीसरा दिन पशुओं की पूजा का दिन होता है। पोगल पर्व की समाप्ति के दिन रात को पंचायती भोज होता है। उसमें नई फसल का चावल बडे प्रेम से खाया जाता है। पोगल पर्व धार्मिक कार्य तो होते ही है, उनके अलावा सॉडों से भिडन्त का प्रदर्शन भी होता है। प्राचीन तमिल–साहित्य में पोगल पर्व पर साडो की भिडन्त के रोमान्चकारी वृतान्त मिलते है।

परिशिष्ट

परिशिष्ट

प्रचीन भारतीय उत्सवों एवं परम्पराओं का अध्ययन करते समय भारतीय संस्कृति की बहुत सी विशिष्टताओं का अनावरण होता है। जो रोचक और ज्ञानवर्धक दोनों ही हैं। मूल रूप से इनका सम्बन्ध किसी न किसी दैवीय शक्ति से जुड़ा हुआ है। इनका उल्लेख पूर्व अध्यायों में करना सम्भव नहीं हो सका अस्तु सक्षेप में इस विषय प्रकाश डाला जा रहा है।

हमारी प्राचीन भारतीय सस्कृति की सबसे बडी विशेषता उसकी धार्मिक–परम्परा है। इस परम्परा का इतिहास सहस्त्रों वर्ष पुराना है। पृथ्वी–सूक्त के ऋषि के अनुसार हमारी मातृभूमि अनेक प्रकार के जन को धारण करती है। यह जन अनेक प्रकार की भाषाएँ बोलनें वाला और नाना धर्मों को मानने वाला है।[1] जन की विविधता भारतीय जीवन का अक्षुष्ण सत्य है। इसी के साथ भाषाओं के भेद और धर्मो के भेद जातीय जीवन की सामूहिक विविधता को और अधिक बढा देते हैं, किन्तु भारत वर्ष की अन्तरात्मा लोक की इस विविधता से कभी भी आक्रान्त नहीं हुई। यहाँ के मनीषियों ने विविधता के मूल में छिपी हुई एकता को खोज निकाला और अनेक प्रकार से इसी एकता पर बल दिया है। एकता का प्रतिपादक समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही भारतीय संस्कृति का मुख्य दृष्टिकोण है। समन्वय–प्रधान जीवन–पद्धति का सबसे अधिक प्रभाव धर्म के क्षेत्र में देखा जाता है। आर्य–संस्कृति, द्रविड़–संस्कृति, निषाद–संस्कृति और किरात–संस्कृति–इन अनेक संस्कृतियों के समन्वय से इस देश की महान् धार्मिक परम्परा का निर्माण हुआ। इनमें आदान–प्रदान की मात्रा इतनी अधिक

---

[1] अथर्ववेद १२,६,४५

थी कि किसी एक देव का मूल स्वरूप क्या था, किस प्रकार वह और सूत्रों को समेटता हुआ विकास को प्राप्त हुआ और अन्त मे देश और काल दोनों की विस्तृत अवधि में फैलकर वह किस रूप में आज मान्य हो रहा है– इसका विवेचन अत्यन्त कठिन हो गया है। फिर भी तुलनात्मक विवेचन से जब इस विषय का अनुसंधान किया जाता है तो अत्यन्त रोचक सामग्री सामने आती है।

वैदिक–देवता और लोक–देवता–इन दोनों के मेल जोल की प्रक्रिया वैदिक युग में ही प्रारम्भ हो गयी थी। जीवन के इस तथ्. के साक्ष्य वैदिक साहित्य में उपलब्ध होते हैं। प्राचीन साहित्य में विभिन्न देवी–देवताओं से सम्बन्धित उत्सवों की छोटी सूंची तथा लम्बी सूंची मिलती है।

अथर्ववेद में एक सूक्त मे बडी स्वभाविक रीति से वैदिक देवों के साथ अन्य देवी–देवताओ का मिला जुला क्रम इस प्रकार है––

(१) अग्नि
(२) वनस्पति
(३) ओषधि
(४) विरूध्
(५) इन्द्र
(६) वृहस्पति
(७) सूर्य
(८) वरूण
(९) मित्र
(१०) विष्णु
(११) भग
(१२) अंश

(१३) विवस्वान्

(१४) सविता

(१५) पूषा

(१६) त्वष्टा

(१७) गन्धर्व

(१८) अप्सराएँ

(१९) अश्विनी

(२०) ब्रह्मणस्पति

(२१) अर्यमा

(२२) अहोरात्र

(२३) सूर्य

(२४) चन्द्र

(२५) आदित्य

(२६) वात

(२७) पर्जन्य

(२८) अन्तरिक्ष

(२९) दिशा

(३०) आशा

(३१) उषा

(३२) सोम

(३३) भव

(३४) शर्व

(३५) रूद्र

(३६) पशुपति

(३७) द्युलोक

(३८) नक्षत्र

(३९) भूमि

(४०) यक्ष

(४१) पर्वत

(४२) समुद्र

(४३) नदी

(४४) सरोवर

(४५) सप्तर्षि

(४६) आपः

(४७) प्रजापति

(४८) यम

(४९) पितृ

(५०) द्युलोक–अन्तरिक्ष–पृथ्वी के वासी

(५१) आदित्य–रूद्र–वसु

(५२) रक्षस्

(५३) सर्प

(५४) पुण्यजन

(५५) मृत्यु

(५६) ऋतु

(५७) ऋतुपति

(५८) मास

(५९) संवत्सर

(६०) दक्षिण–पश्चिम–पूर्व–उत्तर के विश्वेदेव

(६१) उनकी पत्नियॉ

(६२) भूत

(६३) भूतपति

(६४) पंच दिशाओ की देवियॉ

(६५) द्वादश ऋतुओ के देव इत्यादि।[२]

देवी–देवताओ की यह सूची उस बन्धुत्व का सकेत करती है, जिसमे ऊँच नीच के भेद भाव के बिना देवों का सब समाज एक स्थान में इकट्ठा हुआ इसमें एक ओर अग्नि, इन्द्र, वृहस्पति, मित्र, वरूण, विष्णु, भग, सविता, पूषा, त्वष्टा, अर्यमा, सोम आदि वैदिक देवता है, जिनकी पद–प्रतिष्ठा बहुत ऊँची थी, वही दूसरी ओर यक्ष, राक्षस, सर्प, पुण्यजन, भूत आदि उच्चकोटि के किन्तु छोटे देवता है; जिनका सम्बन्ध आदिम जातियों से था। भूमि, पर्वत नदी, समुद्र और नक्षत्र–ये भूमि सम्बन्धित देवता थे, जिनकी परम्पराऍ लोक मे और साहित्य में पायी जाती है।

उपरोक्त जिन देवताओं के नाम सूची में प्राप्त होते हैं, उनसे सम्बन्धित मेला और उत्सव का घनिष्ठ सम्बन्ध था। प्रतिवर्ष समय–समय पर मेले और उत्सव हुआ करते थे। प्राचीन काल मे ऐसे मेले को 'मख' कहते थे। काशिका के एक उदाहरण में गंगा जी के मेले को 'गंगा मख' कहा गया है। उच्चधर्म या द्विजातियो के जीवन में जो स्थान वैदिक यज्ञों का था, लोक जीवन में वही स्थान 'मख' नामक उत्सवों का था। हरिवंश पुराण[३] में कृष्ण के द्वारा गोवर्धन उठाये जाने की लीला को 'गिरिमख' और 'गिरियज्ञ' दोनों शब्दों से कहा गया

---

[२] अथर्ववेद, ११,६,१–२३

[३] हरिवश पुराण (२,१७,११) स्थित शक्रमहस्तात श्री मान् गिरिमहस्त्वयम्, (२/१६/१०) तन्मह्म् रोचते गोपा गिरियज्ञ प्रवर्तताम्।

है। इस प्रकार मख या उत्सवों की सूचियॉ प्राचीन साहित्य मे मिलती हैं। जैन ग्रन्थ ज्ञाता धर्मकथा के अनुसार इस प्रकार है---

(१) इन्दमह

(२) खंदमह स्कन्दमह

(३) रूद्द जत्ता रूद्रयात्रा

(४) सिवजत्ता शिवयात्रा

(५) वेसमणजत्ता वैश्रवण–यात्रा

(६) नागजत्ता नाग–यात्रा

(७) भूयजत्ता भूत–यात्रा

(८) नईजत्ता नदी–यात्रा

(९) जक्ख जत्ता यक्ष–यात्रा

(१०) तलावजत्ता तड़ाग–यात्रा

(११) रूक्खजत्ता वृक्ष–यात्रा

(१२) चेइयजत्ता चैत्ययात्रा

(१३) पव्वयजत्ता पर्वत–यात्रा

(१४) उज्जाणजत्ता उद्यान–यात्रा

(१५) गिरिजत्ता गिरियात्रा

इसके अतिरिक्त दो विशिष्ट सूचियॉ बौद्ध साहित्य में भी पायी जाती है। एक सुत्तनिपात की निद्देस नामक व्याख्या में और दूसरी मिलिन्दपन्ह में। निद्देस में इन देवताओं के पूछने और मानने वाले को व्रतिक (पालि–वतिक) कहा गया है। वह सूची इस प्रकार है---

(१) हत्थिवतिक

(२) अस्वतिक

(३) गोवतिक

(४) कुक्कुर वतिक

(५) काकवतिक

(६) वासुदेव वतिक

(७) बलदेव वतिक

(८) पुराण मछवतिक

(९) मणिभद्द वतिक

(१०) अग्गि वतिक

(११) सुपण्य वतिक

(१२) यक्ख वतिक

(१३) असुर वतिक

(१४) गनधब्बवतिक

(१५) महाराज वतिक

(१६) चन्दिम वतिक

(१७) सूरियवतिक

(१८) इन्दवतिक

(१९) ब्रह्म वतिक

(२०) देव वतिक

(२१) दिसावतिक[४]

'मिलिन्दपन्ह' में इन देवताओं के मानने वाले आचार्यो के अनुयायियों को 'गण' कहा गया है। इनकी सूची इस प्रकार है——

(१) पब्बता

(२) धम्मगिरिया धर्मगिरिय

---

[४] महानिद्देस, १ पृष्ठ ८९,३१०

(३) ब्रह्मगिरिया

(४) पिसाचा

(५) मणिभद्दा

(६) पुराणभद्दा

(७) चन्दिम

(८) सूरिय

(९) कालिदेवता

(१०) सिवा

(११) वसुदेवा[१]

इसी प्रकार की एक छोटी सूची मानव–गृह्यसूत्र २, १४ मे भी पायी जाती है। उसमें देवताओं के नाम इस प्रकार हैं––

(१) यक्ष

(२) जम्भक

(३) विरूपाक्ष

(४) लोहिताक्ष

(५) वैश्रवण

(६) महासे

(७) महादेव महाराज१

इसके अतिरिक्त विभिन्न उद्धरणों में निम्नलिखित नाम और भी मिलते है––

(१) अजामह (आर्यामख)

(२) कोट्टकिरियामह (कोट्ट क्रिया या कोट्टवै)

---

[१] मिलिन्दपन्ह, वाडेकर संस्करण, पृष्ठ १९०

(३) धनुर्मख

(४) काममख

(५) ब्रह्ममख[६]

(६) रैवतकमख[७]

'मज्झिमनिकाय' मे गोव्रत और कुक्कुरव्रत का– जो निद्देस की सूची में भी है– विशेष उल्लेख किया गया है। गोव्रत के अनुयायी अपने सिर पर सींग बॉधते थे और गायो के साथ घास चरते हुए घूमते थे। इसी तरह कुक्कुरव्रत पालने वाले सब कुछ कुत्ते के जैसा व्यवहार करते थे।[८]

इस–प्रकार लोक देवताओं के विश्वास को 'व्रत' या 'भक्ति' कहा गया है। जैसे बुद्ध और महावीर या मक्ख लिगोसाल के अनुयायी अपने–अपने गण या गच्छों में संगठित थे, वैसे ही इन दूसरे देवताओं के अनुयायी भी अपने गणाचार्यो के अधीन रहकर जीवन बिताते थे। इन लोगो का ऐसा विश्वास था, कि जिस देवता की भक्ति की जायेगी, कालान्तर में वे उसी देवता का रूप ग्रहण करेंगे।[९]

इन लोक–देवताओं की परम्परा का उल्लेख भगवद्गीता में भी आया है। उनकी पूजा आदि के लिए 'व्रत' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[१०] इन देवताओ का व्रत पालन करने वाले व्रतिक, अथवा इनकी भक्ति करने वाले 'भक्त' थे इनका भजन करने वाले या 'मह' या 'उत्सव' के रूप में इनकी यात्रा करने वाले, इन विविध नामों के पीछे एक ही भाव था। गीताकार ने इन देवताओं की लम्बी सूची

---

[६] विराट–पर्व १२, अदि पर्व १५२,१८

[७] आदि–पर्व २११,२

[८] मज्झिम–निकाय, पपचसूदनी, भाग३, पृष्ठ १००

[९] मज्झिमनिकाय, १, ३८८

[१०] भगवद्गीता, ६, २३

देते हुए उन सबको भगवान की विभूति या नानारूप कह कर समन्वय किया है। इस सूची में किसी भी देवी देवता का निराकरण नही किया गया है, बल्कि सबको भगवान विष्णु का ही एक रूप मान लिया गया है।

'विष्णु धर्मोत्तर' में भी लोकदेवों की सूची प्रस्तुत की गई है। उसके अनुसार यह स्वाभाविक है कि लोग अपनी–अपनी रूचि के अनुसार अपना–अपना देवता चुन लेते थे। जो जिसको रूचता है, वह उसका देवता बन जाता है। उसी में उसके मन की भक्ति या पूरी शक्ति लग जाती है। इस प्रकार के देवता को भागवतों ने 'रोचदेवता' की संज्ञा दी है।[११] २८ रोचदेवताओं की सूची विष्णु–धर्मोत्तर मे प्रस्तुत की गयी है। रोच नामक देवताओं की सूची में शेष शब्द का भी बहुत व्यापक अर्थ किया गया है, जो गुप्त युग के भागवत धर्म की उदार भावना के अनुकूल था। इसी पुराण मे इसके अतिरिक्त दो प्रकार की धार्मिक क्रिया भी कही गयी है–एक अन्तर्वेदिक या यज्ञों का करना, और दूसरी बहिर्वेदिक जिसमें देवताओं की पूजा आती है[१२]। यह सूची इस प्रकार है–

(१)ब्रह्म (२)दक्षप्रजापति (३) नासत्य (४) बालचन्द अर्थात् शिव (५) बारह साध्यदेवता (६) तीन लोक (७) विष्णुं(८) बारह मृत्यु–देवता (९) यम (१०) गणेश (११) निद्रा देवी (१२) रति (१३) श्रद्धा (१४) कीर्ति (१५) मेघा (१६) सरस्वती (१७) प्रज्ञा (१८) तुष्टि (१९) कान्ति (२०) देवमातृकाएँ (२१) चन्द्रमा (२२) पृथिवी देवी (२३) दस विश्वेदेव (२४) गन्धर्व और उनका राज चित्ररथ (२५) देवपत्नियाँ (२६) अप्सराएँ (२७) नागदेवता (२८) पुष्कर (जल) (२९) नलकूबर (कुबेर के पुत्र) (३०) श्री (३१) प्रीति

---

[११] विष्णु धर्मोतर ३, २२२, २८

[१२] विष्णु धर्मोत्तर, ३, २२१, ७ (देवता काश्च कस्मिन्नु काले सपूज्यन्ते सदा)

देवियों की सूची भी दी गई है जो इस प्रकार है—

(३२) उमा (३३) मेना (३४) भद्रकाली (३५) कात्यायनी (३६) धृति (३७) स्वाहा (३८) स्वधा (३६) ऋद्धि (४०) अनसूया (४१) क्षमा (४२) सुभीमा (४३) देवसेना (४४) बेला (४५) ज्योत्सना (४६) शची (४७) गौरी (४८) वरूणानी (४६) यमपत्नी (५०) धूमोर्णा (५१) सुमहाभागा (५२) मृत्यु—छाया

अपनी रूचि अनुसार के किसी भी देवमातृका या देवपत्नी का पूजन किया जा सकता था। इसके अनन्तर चार महापशुओं को देवभाव से पूजने का उल्लेख है। (५३) ऐरावत (५४) उच्चै श्रवा (५५) शिव का नन्दी वृष (५६) विष्णु का गरूड़ इसके अतिरिक्त और भी देवी—देवताअें का वर्णन किया गया है। वर्ष भर अपने इष्ट देवों की आराधना या व्रत पालन का तथा उत्सव मनाने का क्रम बताया गया है।

मत्स्य—पुराण[१३] में लगभग २०० देवी—देवताओं की सूची प्राप्त होती है। आरण्यकों में भी कुछ छोटी देवियो के नाम आये हैं, जो इस प्रकार है :—

(१) काकी (२) हालिमा (३) रूद्रा (४) बृहली (५) आर्या (६) पलाला (७) मित्रा

इन सातों को बच्चों की माताएँ कहा गया है और इनके एक पुत्र को, जो स्कन्द की कृपा से उत्पन्न हुआ है, लोहिताक्ष नाम दिया गया है।[१४]

पुराणों में भी कई सूचियॉ प्राप्त होती हैं। इन देवों के पूजा की उल्लेख कई दृष्टियों से है। कही इनको 'विभूति' कहा गया है, कहीं इनके 'व्रत' का उल्लेख है, कहीं भक्ति, कहीं इन्हें 'रोच' की संज्ञा प्रदान की गई है।

---

[१३] मत्स्यपुराण, १७६,१०—३२

[१४] आरण्यक पर्व, २१७, ६—१०

वायु–पुराण मे देवियों की एक सूची है जिसमें स्पष्ट कहा गया है कि यथार्थ में दो ही महादेवियाँ है, एक प्रज्ञा अर्थात् सरस्वती और दूसरी श्री या लक्ष्मी, किन्तु वर्तमान मे देवी के अनेक स्वरूप और नाम प्राप्त होते है।[१५]

'धनुर्मख' एक विशेष प्रकार के उत्सव का आयोजन था, जिसमें योद्धा या वीर लोग धनुष के आरोपण द्वारा अपने बल की परीक्षा देते थे। मथुरा के यादवों में भी इस प्रकार के 'धनुर्मख' की प्रथा थी। कंस ने अक्रूर द्वारा कृष्ण को मथुरा बुलानें की योजना बनायी। उसमे यही कहा कि "हे अक्रूर! तुम व्रज मे जाकर व्रज–वासियों से कहो कि राजा ने आनन्द के अवसर पर धनुर्मख का आयोजन किया है, और उसमे कृष्ण बलराम को बुलाया है।[१६] वस्तुतः धनुर्मह नामक उत्सव का शिव पूजा के साथ सम्बन्ध था। प्राचीन काल में शिव देवता की सार्वजनिक पूजा के साथ ही 'धनुर्मख' का आयोजन किया जाता था। हरिवश पुराण[१७] मे आगे वर्णित हुआ है कि कंस ने मथुरा में पिनाकी शिव को लक्ष्य करके महोत्सव की योजना की थी। प्राचीन काल में इसप्रकार के महोत्सव को 'समाज' भी कहते थे। जिस स्थान पर 'समाज' का उत्सव किया जाता था, वह रंग या रंगावट कहा जाता था।[१८] समाज के अवसर पर अनेक प्रकार के विनोदो का आयोजन किया जाता था। नाच, गान, मल्लप्रदर्शन तथा प्रेक्षण या तमाशे समाज के अवसर पर होते थे।[१९] कंस के समाज महोत्सव में ये सब आमोद–प्रमोद थे, किन्तु उसमें मुख्य 'धनुर्मख' ही था।

कभी–कभी 'समाज' शब्द उत्सव का द्योतक भी पाया गया है। अशोक के समय दो प्रकार के 'समाज' का उल्लेख मिलता है। एक दोष व कुरीतियों से

---

[१५] वायुपुराण, ९–८५–९८
[१६] हरिवंश पुराण, २,२२,६१
[१७] हरिवंश पुराण २/१०१/६४
[१८] हरिवश २/१०१/५४–५८
[१९] हरिवश २/१०१/५५

युक्त था तो दूसरा निर्दोष व सात्विक रीति से मनोरंजन करने वाला। कंस ने जिस प्रकार के 'समाज' में भाग लेने के लिये निमन्त्रण भेजा था, उसे उसने 'धनुर्मख' कहा था। ऐसे उत्सव में शिव की पूजा ही प्रमुख उद्देश्य हुआ करती थी। धनुष–उत्सव शिव–पूजा से गहरा सम्बन्ध रखता था। सीता–स्वयवर के समय भी जनक ने जो धर्नुयज्ञ किया था, वह वस्तुतः 'धनुर्मख' नामक उत्सव ही था।[२०] जब दक्ष के यज्ञ में देवों ने शिव को भाग नही दिया, तब क्रुद्ध होकर शिव ने जिस अस्त्र से देवों का गर्व चूर्ण किया था, वह यही शैव धनु था।[२१] द्रौपदी के स्वयंवर में भी धनुष चढा कर लक्ष्य–विशेष का वेध करके कन्या का विजय करने की बात मुख्य है। इन सबके मूल में 'धनुर्मख' नामक प्राचीन उत्सव की परम्परा ही लक्षित होती है।

आदिम जन–समुदाय पहले गोपालन द्वारा अपना निर्वाह करता था। उत्तरकाल में कृषि–द्वारा जीवन निर्वाह का विकास हुआ। हरिवंश पुराण[२२] में किसानों द्वारा मनाये जाने वाले 'सीतायज्ञ' और ग्वालों द्वारा मनाये जाने वाले 'गिरियज्ञ' का उल्लेख किया गया है। 'गिरियज्ञ' या 'गिरिमख' उसी स्थिति का सूचक है, जिसमें जन गो पालन द्वारा अपनी आर्थिक स्थिति को व्यवस्थित करता था। हरिवंश–पुराण में गोवर्धन–धारण की बहुत सुसंगत व्याख्या मिलती है।

प्राचीन उत्सवों की इस सूची में 'इन्द्रमख' उत्सव विशेष महत्वपूर्ण था जिसे 'शक्रमख' भी कहते हैं। वर्षा ऋतु में सब राजा लोग और प्रजाएँ भी 'इन्द्रमख' के द्वारा देवराज इन्द्र की पूजन करती थीं। इन्द्रमख का उत्सव क्या

---

[२०] बालकाण्ड ३१.८
[२१] रामायण ६६.१०
[२२] हरिवश–पुराण २.१६.६

था? इस प्रश्न के उत्तर में वृद्धतम ग्वालों ने कृष्ण से कहा इन्द्रमख उत्सव के रूप में इन्द्र–ध्वज का पूजन किया जाता है।[२३] भारतीय साहित्य में इन्द्रध्वज का विशेष वर्णन उपरिचर–वसु कथा के अन्तर्गत महाभारत मे आया है। इस कथा के अनुसार इन्द्र ने धर्मपरायण राजा वसु से प्रसन्न होकर एक वैष्णवी यष्टि उसे प्रदान की।[२४] यह वैष्णवी यष्टि बॉस की बड़ी लाट थी, जिसे पाकर राजा ने इन्द्र की पूजा के लिए अपने नगर में धूमधाम से उसका प्रवेश कराया। उस यष्टि को गन्ध, माल्य एवं नाना आभूषणों से अलंकृत करते थे और दूसरे दिन उसे सीधा खडा करते थे यष्टि के रूप में भगवान शिव की भी हँसी–खुशी के साथ पूजा की जाती थी। यष्टि का पूजन शिव का हास्य रूप है। इस प्रकार राजा वसु द्वारा की गई पूजा से इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने यह घोषणा की कि जो राजा या मनुष्य इस प्रकार के 'मख' या 'उत्सव' द्वारा मेरा पूजन करेंगे अथवा प्रसन्नता से उसका आयोजन करायेंगे, उन्हे समस्त राष्ट्र के साथ विजय की श्री प्राप्त होगी। इस प्रकार इन्द्र ने प्रसन्न होकर महाराजवसु का विशेष सत्कार किया। चेदिराज वसु ने 'इन्द्रमख' के द्वारा धर्म से पृथिवी का पालन किया।[२५]

यष्टि–पूजा के साथ ही 'मणिभद्र' आदि यक्षों की तथा दूसरे देवताओं की पूजा भी की जाती थी। सब लोग अनेक प्रकार की क्रीडाओं से रमण करते थे। नगर और जनपद जन सभी 'इन्द्रमख' उत्सव मनाते थें। 'इन्द्र ध्वज' पूजन का समय शरदऋतु ज्ञात होता है। हरिवंश में स्वयं इन्द्र के मुख से कहलाया गया है कि—–यह जो वर्षा के चार मास हैं, इन चारों का विधान मेरे लिए ही था, किन्तु हे कृष्ण, इनमें से पहले दो महीनें मैं तुम्हें देता हूँ। बाद का जो

[२३] हरिवंश–पुराण २/१५/४
[२४] आदिवर्ष ५६/१७–पूना संस्करण
[२५] आदि–पर्व अध्याय ५७

शरद्काल है, उसके दो मास मेरे कहलायेंगे और चौमासे के द्वितीय अर्धभाग मे मेरे लिए ध्वजापूजन का विधान किया जायेगा।[२६] जिस–प्रकार प्राचीन काल में 'शिवमख' के साथ 'इन्द्रमख' का समन्वय हुआ था, जैसा कि 'हास्यरूपेण शकरः' उल्लेख से प्रतीत होता है, उसी प्रकार कृष्ण द्वारा गोवर्धन लीला के फलस्वरूप इन्द्रमख का समन्वय कृष्ण या पंचरात्र–परम्परा से सम्पन्न हुआ ज्ञात होता है। किन्तु इन्द्रध्वज पूजनके लिए समय का जो संकेत हरिवंश की कथा से मिलता है, उसके अतिरिक्त भी परम्पराएँ मिलती है। तमिल भाषा के अतिप्रसिद्ध काव्य? शिलपाधिकारम् के अनुसार "इन्द्रध्वज–पूजन" का उत्सव दक्षिण भारत में चैत्र पूर्णिमा को मनाया जाता है। जनता मे इन धार्मिक और सामाजिक मेलो का सम्बन्ध अथर्ववेद की परम्परा से था। इन लोकोत्सव के असवरों पर जनता अनेक प्रकार के मद्यपान करती थी। जिसके कारण ये उत्सव कहे जाते थे। अथर्ववेद के कौशिक सूत्रों में इन्द्रमख का विशेष रूप से वर्णन आया है। अथर्वपरिशिष्टसंग्रह[२७] नाम ग्रन्थ में 'इन्द्रमहोत्सव', 'ब्रह्मयाग' और 'स्कन्दयाग' ये तीन परिशिष्ट ग्रन्थ है। इनका सम्बन्ध क्रमशः 'इन्द्रमख' , ब्रह्ममख' और 'स्कन्दमख' से है। 'इन्द्रमहोत्सव' नामक उत्सव परिशिष्ट के अनुसार भाद्रपद के शुक्लपक्ष में मनाया जाता था। राजतंरगिणी [२८] में भी इन्द्र के उत्सव का वर्णन है, और इसका समय भाद्रपद–शुक्ल द्वादशी कहा गया है।

'इन्द्रमख' पूजा को लोगों की हँसी खुशी का वर्ष का सबसे बड़ा त्यौहार माना जाता था। उसमें दूसरा महत्वपूर्ण प्रमाण नाट्यशास्त्र का एक उल्लेख है; जिसमें भरत मुनि ने नाट्य–प्रयोग के लिए सब प्रकार की तैयारी करके ब्रह्मा से पूछा कि अब क्या करें? तब ब्रह्मा ने उत्तर दिया–यही नाट्यप्रयोग करने का

---

[२६] हरिवंश पुराण २/१६/४७–४८

[२७] अथर्वपरिशिष्ट, भाग, १६–२०

[२८] राजतरगिणी–८/१७०

ठीक समय है। इस समय देवराज इन्द्र का 'ध्वजमख' नामक उत्सव ही रहा है। अभी यहीं पर नाट्यवेद का प्रयोग करना चाहिए। तब उसी 'ध्वज मख' के उत्सव मे जहाँ महेंद्र की असुरविजय से प्रसन्न हुए देवता उल्लास मना रहे थे, भरतमुनि ने सर्वप्रथम नाट्यवेद के प्रयोग के लिए आशीर्वाद का उच्चारण करते हुए नन्दी–गान किया। नाट्यवेद के उस प्रयोग से परितुष्ट होकर ब्रह्मादिक देवताओं ने नाटक के लिए अलग–अलग उपकरण प्रदान किए। उनमें सबसे पहले इन्द्र ने अपना ध्वज नाट्यप्रयोग की सिद्धि के लिए प्रदान किया।[२९]

इस कथानक से यह ज्ञात होता है कि 'इन्द्रध्वज महोत्सव' या 'शक्रमख' के प्राचीन उत्सव के साथ जो आमोद–प्रमोद होते थे, उसी परम्परा में नियमित नाट्यप्रयोगों का उद्गम अतीत के किसी धुँधले युग में हुआ। विराटपर्व मे मेले को स्पष्ट ही 'उत्सव' या 'ब्रह्मा का समाज' कहा गया हैं।[३०] इस प्रकार हम देखते है कि एक ओर तो 'भगवान–पूज्यते चात्र हास्यरूपेण शंकरः' इस परम्परा में अनेक लोक उत्सव और मेले आज तक जनसाधारण में चले आ रहे हैं, और दूसरी ओर इन्ही 'मख' नामक उत्सवों के मंचन से प्रयोग–प्रधान नाट्यशास्त्र का जन्म हुआ। उसमें नाट्य ने नृत्य, गीत, अभिनय एवं कथनोपकथन द्वारा विकसित होकर सभ्य समाज में ऊँची प्रतिष्ठा प्राप्त की।

अतः प्राचीन भारतीयों के जीवन में इन्द्रमहोत्सव हरियाली से भरी हुई शस्यश्यामला धरित्री के दर्शन से मानवीय उल्लास को व्यक्त करने का उत्सव था। इसके द्वारा विश्व–व्यापी प्रजनन और पृथ्वी की कोख से पनपनें वाले वनस्पति–जीवन को देखकर मानव के स्वभाविक हर्ष की अभिव्यक्ति होती थी। जिस प्रकार भारत में इन्द्रध्वज के उत्थापन और पूजन का उत्सव प्रचलित था,

---

[२९] नाट्य–शास्त्र १,५८–५६

[३०] विराटपर्व १३/१४–१५

मे आर्य संस्कृति का क्रमशः विस्तार हुआ और ये सातों ही अत्यन्त पवित्र मानी जाती हैं। भीष्मपर्व मे कहा गया है कि सभी नदियॉ विश्व की माताएँ है, सभी महाफल देने वाली है। आर्य और म्लेच्छ बिना किसी भेदभाव के मिलजुल कर गंगा, सिन्धु, सरस्वती आदि महानदियों का जल पीते हैं।[३२] गंगा भारतीय नदी-देवियों मे सबसे अधिक पवित्र मानी जाती है। वह हिमवान की पुत्री, शिव की पत्नी और स्कन्द की माता है। भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसी नदी, जल धारा या जलाशय हो जहॉ वर्ष में एक बार या इससे अधिक बार धार्मिक स्नान या मेला न लगता हो।

'स्कन्दमख' का तात्पर्य स्कन्द-पूजा से है। वेदों में स्कन्द का उल्लेख नहीं मिलता। केवल अथर्ववेद के परिशिष्ट ग्रन्थों में से २० वें परिशिष्ट का नाम स्कन्दयोग या धूर्तकल्प है; जिसमें स्कन्द की पूजा का विधान है। उसके अनुसार फाल्गुन, आषाढ और कार्तिक के कृष्ण पक्ष में षष्ठी तिथि को स्कन्द की पूजा करनी चाहिए। महाभारत मे मूलस्वरूप में स्कन्द की स्थिति पिशाचगण के साथ थी। विकास की पहली सीढी में रूद्र के साथ स्कन्द का समन्वय हुआ, दूसरी में अग्नि के साथ और अन्त में रूद्र के साथ, जिसके फलस्वरूप वह गुप्तकाल में देवसेना के सेनापति के रूप में अत्यन्त प्रतिष्ठित पदवी को प्राप्त हुए। इसी विकास-क्रम में एक छोटी सी शाखा और फूटी, जिसके अनुसार स्कन्द 'बाल-ग्रह' या 'बच्चो का रक्षक देवता' माना गया। 'स्कन्द-मख' का मूल उत्सव निशीथ चूर्णि के अनुसार आश्विन-शुक्ल-पूर्णिमा को मनाया जाता था तथा उनकी रथयात्रा निकाली जाती थी।

रूद्र-शिव की पूजा जितनी प्राचीन थी, उतनी ही अधिक लोक-व्यापी भी। देवताओं के मध्य में रूद्र-शिव का महत्व बहुत अधिक था। यहाँ तक कि

---

[३२] भीष्म-पर्व ६,१३,१४

केवल विष्णु को छोडकर किसी भी अन्य देवता का प्रभाव इतना अधिक लोकोत्तर और व्यापक नहीं हुआ। वैदिक युग में रूद्र की जैसी मान्यता थी, उसका विशेष वर्णन यजुर्वेद के १६ वे अध्याय में प्राप्त होता है। इसमें अनेक रूद्रों की कल्पना की गई है। प्रत्येक दिशा में सहस्त्रों रूद्र भरे हुए हैं।[33] शतपथ मे कहा गया है कि–अग्नि ही वह देव है। उसी के ये बहुत से नाम हैं। पूरब देश में उसे 'शर्व' के नाम से पुकारते हैं। वाहीक देश में उसे 'भव' कहते हैं। उसे ही 'पशुपति रूद्र' कहा जाता है।[34] लोक में रूद्र–शिव की पूजा का सबसे प्राचीन प्रमाण सिन्धु–उपत्यका में प्राप्त सामग्री से मिलता है। मातृदेवी और शिव की पूजा–यही उस धर्म की बडी विशेषताएँ है। मोहनजोदड़ों की शिव–पूजा वस्तुतः लोक–धर्म का ही रूप है। यजुर्वेद में उसका दार्शनिक और धार्मिक सस्कार करने का प्रयत्न किया गया है। इस समय शिव–चतुर्दशी शिव का सबसे बडा पर्व है। सम्भवतः 'रूद्र–शिव मख' का भी यही समय हो।

भारतीय जीवन में नागपूजा तथा नागदेव के उत्सव को 'नागमख' कहते थे। उसके मेले या यात्राएँ 'नाग–यात्रा' या 'नागजत्ता' कही जाती थीं। उसके लिए दी जाने वाली पूजा–सामग्री और बलि नाग–बलि कही जाती थी। लोक में नागो का सम्बन्ध नागपचमी के उत्सव के रूप में अभी तक मनाया जाता है। श्रावण शुक्ल पंचमी को नागपंचमी का त्यौहार होता है। यक्षबलि, भूतबलि की भाँति नागबलि का भी विधान है। इसके अनुसार धूप, दीप, फूल, पुष्प, प्रसाद आदि से नागों की पूजा की जाती थी। नाग–परम्परा का जैसा प्रचार कश्मीर में था वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। यहाँ के नीलमत–पुराण ग्रन्थ में भिन्न–भिन्न स्थानों में पॉच सौ नाग–देवताओं की सूची मिलती है। प्रत्येक सोते, चश्मे या झरने का अपना–अपना नागदेवता था।

---

[33] यजुर्वेद १६/६

[34] शतपथ ब्राह्मण १/७/३८

प्राचीन—काल में वृक्षो की पूजा को 'रूक्ख मख' कहा गया है। यह पूजा भी 'गिरिमख' 'नदीमख' स्तर की है। पीपल, वट, तुलसी, आमलकी आदि की पूजा अभी तक लोक में इतनी अधिक व्याप्त है कि ऊँच—नीच सभी प्रकार के सामाजिक स्तरो पर धर्म का जीवित अंग बनी हुई है। ऐसे वृक्ष की पूजा—मान्यता बढ़ने से उसे किसी वेदिका या छोटे कटहरे से घेर दिया जाता है। प्राचीन समय में जब देवता के स्थान पर किसी मन्दिर आदि का अभाव होता था, तब उस स्थान की पहचान इसी वेदिका या मित्ति से की जाती थी। प्रायः 'रूक्ख देवता' के लिए बलि भी दी जाती थी। बौद्व, जैन और हिन्दू—इन सब धर्मो ने वृक्ष—पूजा की परम्परा को उन्मुक्त भाव से स्वीकार किया है। प्रत्येक बुद्ध और अनेक तीर्थकर के लिए एक—एक पवित्र वृक्ष की कल्पना की गई है। इस प्रकार बड़े सहज भाव से वृक्षों की पूजा बौद्ध धर्म और जैन धर्म में प्रविष्ट हो गयी और उसी प्रकार जनता से प्रीति और विश्वास प्राप्त करती रही, जिस प्रकार वह पहले प्राप्त करती थी। अव्यय अश्वत्थ का ही दूसरा नाम अक्षय—वट है, जो कभी भी क्षय को प्राप्त नही होता। ऋग्वेद[३५] में सहस्त्रकलश अर्थात सहस्त्र शाखाओं वाले वनस्पति का उल्लेख इस प्रकार हुआ है—"हे सोम, अपनी मधुमयी धारा से इस वनस्पति को सींच दो, जो सहस्त्रशाखाओं से युक्त है; जो हरियाली युक्त है, और स्वर्ण से बना होने के कारण अत्यन्त प्रकाश मान है।" दार्शनिक दृष्टि से यह कथन सत्य है। यह विश्वरूपी अश्वत्थ नित्य, नूतन रचना शक्ति से भरा हुआ है। इसके भीतर प्रजनन की अत्यधिक शक्ति है। यह ऋतु नामक सोमतत्व से अपने रोम प्रतिरोम में सिंचित है। उसी के मधु से इसके मधुकोष नित्य विकसित हो रहे हैं। सृष्टि का जो विश्व व्यापी—नियम है, वही अखण्ड ऋतु या सोम के रूप में इस वनस्पति को हरा भरा बनाता है। यह

---

[३५] ऋग्वेद ६,५,१०

सत्त्व, रजस् और तमस् इस त्रैगुण्य से प्रकाशित है। यही इसका हिरण्यमय प्रकाश है। अथर्ववेद में अश्वत्थ का धार्मिक स्वरूप अधिक उभर कर सामने आता है। वहाँ अश्वत्थ को देवों का धार्मिक स्थान कहा गया है।[३६] पीपल–वृक्ष पर देवताओं का निवास है– इस प्रकार का विश्वास आज भी परिलक्षित होता है। यह विश्वास इतना दृढ़ एवं बद्धमूल है, कि कोई भी हिन्दू पीपल की शाखा को नहीं काटता। उसकी मानसिक प्रतिक्रिया इस प्रकार की होती है, जैसे किसी देवता के जीवित अंगो को उससे अलग किया जा रहा हो। धर्म की कोमल–भावना के इस प्रकार लोकव्यापी होने का दूसरा उदाहरण विरल ही है। वृक्ष–पूजा के सम्बन्ध मे दूसरी प्राचीन मान्यता 'कल्पवृक्ष' की है। ऐसी मान्यता है कि देवता और असुरों द्वारा समुद्र–मन्थन करने पर चौदह रत्नों के साथ कल्पवृक्ष का भी जन्म हुआ। यह कल्पवृक्ष स्वर्ग लोक में इन्द्र के नन्दनवन का वृक्ष बन गया। महाभारत, रामायण, जातक, दिव्यावदान, जैन–साहित्य इन सब में उत्तरकुरूदेश और वहाँ होने वाले कल्पवृक्षो का वर्णन पाया जाता है। भीष्मपर्व के अनुसार उत्तरकुरूदेश में सिद्ध लोग रहते हैं। वहाँ सदा पुष्प–फल देने वाले वृक्ष है। उनमें से कुछ वृक्ष सर्वकामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। कुछ वृक्षों में से अमृत के समान स्वादिष्ठ दूध निकलता है, जिसमें छवों रसों का स्वाद मिलता हैं। उसकी शाखाओं से वस्त्र–आभूषण उत्पन्न होते है, और कुछ शाखाओं से अप्सराओं के समान स्त्रियाँ और स्त्री–पुरूषों के जोड़े निकलते हैं।[३७]

रामायण में भी ऐसे वृक्ष का वर्णन आया है, जो सदा फलते–फूलते हैं। वे अभीष्ट वस्तुओं को अपने भीतर से उत्पन्न करते हैं। अनेक प्रकार के वस्त्र, जड़ाऊ, आभूषण, सब प्रकार के शयन, मालाएँ, भक्ष्य–भोज्य, पान और रूप

---

[३६] अथर्ववेद–१६/३६/६

[३७] भीष्मपर्व–६/२–११

यौवन से भरी हुई गुणवती स्त्रियाँ ये सब पदार्थ उन कल्प–वृक्षों की शाखाओं से उत्पन्न होते हैं।[३८] इन वृक्षों के अतिरिक्त और भी अनेक वृक्ष पवित्र माने गये है। किसी न किसी रूप में उनका उत्सव मनाया जाता रहा है। विशेषतः कार्तिक में आमलकी (ऑवले) वृक्ष का उत्सव और पूजा आज तक प्रचलित है। 'रूक्ख–मह' का ही एक स्वरूप 'उज्जाणमह' था, जिसका उल्लेख 'णायाधम्मकहा' की सूची में आया है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वृक्ष की पूजा की जाती थी, उसी प्रकार वृक्षों से भरे हुए उद्यान में भी उत्सव, क्रीडा, गोष्ठी, समाज आदि का आयोजन किया जाता था। इस प्रकार की क्रिडाओं को पालि–साहित्य में उद्यान–क्रीडा कहा जाता था। वर्तमान में वृक्षो का विशेष महत्त्व है जो पर्यावरण से सम्बन्धित है। आज भी वृक्षारोपण को धर्म और पुण्य से जोड़ा जाता है।[३९]

[३८] रामायण ४३–४३

[३९] ऑवला के नीचे कार्तिक नवमी को खाना बनाने–खाने की परम्परा आजभी विद्यमान है। इसी प्रकार कार्तिक एकादशी (प्रबोधनी या देवोत्थान एकादशी) को तुलसी–पूजन, तुलसी–विवाह की परम्परा विद्यमान है।

ग्रन्थसूची

ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ

ऋग्वेद – संहिता और पद, शायण भाष्य सहित, एफ मैक्समूलर द्वितीय संस्करण (१८६०–२)

– शायण भाष्य सहित, मैक्समूलर, लंदन, आक्सफोर्ड, १८६२ ई०

अथर्ववेद – सम्पादक,आर०राय एव ह्विटने,बर्लिन, १८५६

– शंकर पांडुरंग पंडित, गर्वनमेण्ट सेन्ट्रल बुक डिपो, १६६६ ई०

– सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी, सूरत, १६५७ ई०

– डब्ल्यू०डी० ह्विटने, हारवर्ड, १६०५ ई०

कठोपनिषद – शंकरभाष्य सहित, अनुवाद, गीताप्रेस, गोरखपुर, १६६२ ई०।

छान्दोग्योपनिषद् – शकरभाष्य सहित, अनुवाद, गीता प्रेस, गोरखपुर, १६६२ ई०।

तैतरीय उपनिषद् – शंकरभाष्य सहित, अनुवाद, गीता प्रेस, गोरखपुर १६६६ ई०।

तैतरीयसंहिता – माधवभाष्य सहित, सं.ए० बेबर, बर्लिन (१८७१–७२)

तैतरीयसंहिता – माधवभाष्य सहित, कलकत्ता, १६५४–६६ ई०।

बाजसनेयीसंहिता – महीधर भाष्य, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई (१६१२)

– प्रका०ए०बेबर, लंदन, १८५२

– जयशंकर विद्याविलास प्रेस, बनारस, १६१२, १६१३, १६१४

मैत्रायणीसंहिता – सं० वानश्राउर, लीपझिंग (१८८१)

सूत्र साहित्य

आश्वलायन गृह्यसूत्र – त्रिवेन्द्रम संस्कृत, सीरीज, चौखम्बा, सं० ६३,१६३२ ई०।

आश्वालायन श्रौतसूत्र – सं०आर० विद्यारत्न.कलकत्ता (१८६४)

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र – सं० चि० स्वामी, बनारस (१६२८) एम० विंटरनित्स, १८८७ ई० गौतम धर्मसूत्र–सं, स्टेज्लर (१८७६) जी. वूलर सै.बु.ई.

मानव गृह्यसूत्र – सं. रामकृष्ण हर्ष शास्त्री. बडौदा (१६२६)

वौधायनगृह्यसूत्र – सं० आर० शर्मा शास्त्री, मैसूर (१६२०)

महाकाव्य

वाल्मीकि रामायण – गीता प्रेस, गोरखपुर

रामायण – वाल्मीकि टी०आर० व्यासाचार्य, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, १६०५, १६११ ई०।

महाभारत – गीता प्रेस, गोरखपुर (१६८८)

भगवद्गीता – गीता प्रेस, गोरखपुर (१६६०)

के०टी०तेलंग एम०बी०ई० द्वितीय संस्करण, १६०८,

पुराण

अग्निपुराण — गीता प्रेस, गोरखपुर

सं, बलदेव उपाध्याय, वाराणसी (१९९६)

अग्निपुराण — अनुवाद, मन्मथनाथ दत्त, कलकत्ता, १९०१ ई०।

गरूणपुराण — क्षेमराज कृष्णदास, बम्बई (१९०६)

— गीता प्रेस गोरखपुर (२०००)

— वेकटेश्वर प्रेस, बाम्बे, १९०६ ई०।

स्कन्दपुराण — गीता प्रेस गोरखपुर (२०००)

— वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई (१९१६)

भविष्यपुराण — वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई (१८५०)

— गीता प्रेस, गोरखपुर (१९९२)

मत्स्यपुराण — अनुवादक राम प्रसाद त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००३

— कल्याणांक, गीताप्रेस गोरखपुर (१९८४)

भागवत्पुराण — एम०एस०दत्त, कलकत्ता, १८९७ ई०।

— गीता प्रेस, गोरखपुर (१९६०)

ब्रह्मपुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, संस्करण मुम्बई, १९१३ ई०।

मार्कण्डेयपुराण — वेकटेश्वर प्रेस, संस्करण मुम्बई १९१० ई०।

पद्म पुराण आनदाश्रम, पूना (१८९३)

शिवपुराण — वेंकटेश्वर प्रेस, गीता प्रेस, बम्बई (१९५०)

वामनपुराण — कल्याणांक, गीताप्रेस, गोरखपुर (१९९२)

वाराहपुराण – कल्याणांक, गीता प्रेस, कलकत्ता (१८६३)

हरिवशपुराण – गीता प्रेस, गोरखपुर (१६५८)

– सं०आर० किंजवाडेकर,पुना १६३६ ई०।

धर्मशास्त्र

कालनिर्णय – कालमाधव, प्रिन्टेड एट दि वैप्टिस्ट मिशन प्रेस, कलकत्ता (१८६०)

मिशन प्रेस, कलकत्ता (१८६०)

गौतमस्मृति – कलकत्ता (१६५२)

नारदस्मृति – कलकत्ता (१८८५)

मनुस्मृति – चौखम्भा, वाराणसी (१६३५)

निर्णय सिन्धु – लखनऊ (१६३५)

– पं० शर्मा, मिहिरचन्द्र, बम्बई बुक डिपो, कचौड़ी गली वाराणसी (१६६०)

याज्ञवल्क्य स्मृति – पूना (१६००)

व्रतराज – माधवचार्य, वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई

व्रत विवेक – वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई

कालनिर्णय – कालमाधव कलकत्ता (१८६०)

कालविवेक – महीधर, रायल एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता (१६०४)

हेमाद्रि व्रतखण्ड – वेकटेश्वर प्रेस, बम्बई

वौद्ध साहित्य

जातक – अनुवाद रिजडेविड्स, भाग १–३, लंदन, १८६६, १६२१ ई०।

विनयपिटक – अनुवाद, रिजडेविड्स तथा एच ओल्डेनवर्ग, एस०वी०ई० आक्सफोर्ड, १८८१–१८८५ ई०।

दीपवंश – अनुवाद एच.ओल्डेनवर्ग, लंदन १८७६ ई०।

मज्झिमनिकाय–लंदन १८८८ ई०।

अर्थशास्त्र – अनुवाद, आर०राम शास्त्री, मैसूर, १६०६ ई०।

कृत्यकल्पतरू – व्रतखण्ड, लक्ष्मीधर, सं.के०पी० अयंकर, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा, १६३५ ई०।

अमरकोष – सं.ए०डी० शर्मा तथा एन० सरदेसाई, पूना, (१६४१)

चतुर्वर्गचिन्तामणि – हेमाद्रि, व्रतखण्ड तथा विवोलिथिका इण्डिया, योगेश्वर भट्टाचार्य, कलकत्ता, १६७४ ई०।

अन्य सहायक ग्रन्थ

विदेशी विवरण

अलवरूनी इण्डिया – सखाऊ इ०सी० लंदन, १६१४ ई०।

अग्रवाल. श्री वासुदेवशरण– प्राचीन भारतीय लोकधर्म, वाराणसी, (१६६४)

उपाध्याय बलदेव – वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, काशी १६६७ ई०।

उपाध्याय गौरीशंकर – व्रत चन्द्रिका, वाराणसी।

काणे. पी०बी० – हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र १–५ पूना (१६३०) (हिन्दी अनुवाद) धर्मशास्त्र का इतिहास, लखनऊ (१६७३–१६७५)

कीथ ए.वी. – रिलीजन आफ फिलॉसफी वेद एण्ड उपनिषद् हावर्ड ओरियण्टल सीरीज, लन्दन (१६२५)
(हिन्दी अनुवाद) सूर्यकांत, वाराणसी (१६६५)

कोशाम्बी डी.डी – मिथ एण्ड रियलिटी, बम्बई (१६२०)

गौड. रामकृष्ण – पौराणिक आख्यान कोश (१६८१)

चन्द्रा. आर०पी० – इन्डो–आर्यन रेसेज, राजशाही (१६१६)

त्रिपाठी. उर्मिला – भारतीय संस्कृति, वाराणसी (१६६३)

थामस. पी – फेस्टिवल एण्ड हॉलीडे आफ इण्डिया, प्रथम संस्करण (१६७१)

थामस. रोमिला – एशिएंट इण्डिया सोसल हिस्ट्री (१६७८)

पी. गणेशन – व्रतोत्सव–चन्द्रिका, वाराणसी (१६८०)

पाण्डेय, राजबली – हिन्दू संस्कार, बनारस (१६६६)

पाण्डेय, गोविन्दचन्द्र – फाउण्डेशन ऑफ इण्डियन कल्चर, नयी दिल्ली (१६८४)

बाशम. ए.एल – दी रेलिजन्स आफ इण्डिया, लंदन, १८८२ ई०।

मजूमदार–आर.सी – दी वैदिक एज.लंदन (१६५०)

मैक्समूलर – कम्परेटिव माइथोलाजी, आक्सफोर्ड (१६५७)
– हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, लंदन (१६५८)
ओरिजिन एण्ड ग्रोथ आफ रेलिजन, काशी, (१६६४)

यूवान् च्वांग – वाटर्स टी. डब्ल्यू भाग १ एवं २ लंदन ११०४.११०५

राय. एस.एन. – पौराणिक धर्म एवं समाज, इलाहाबाद (१६६८)

राय. यू.एन. – शाल भंजिका

वर्थ.ए – दी रेलिजन्स आफ इण्डिया, लदन (१८८२ ई०)

वेबर मैक्स – दी रिलीजन आफ इण्डिया, न्यूयार्क (१९६७)

शर्मा. वी.एन – फेस्टिवल आफ इण्डिया, अभिनव पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, १९७८

शास्त्री, राम प्रताप त्रिपाठी – हिन्दुओ के व्रत, पर्व एवं त्योहार, लोक भारती प्रकाशन इला. १९९८

हेस्टिग्स जे – इनसाइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एण्ड एथिक्स न्यूयार्क, १९०८

हण्टर, डब्ल्यू. डब्ल्यू – हिस्ट्री ऑफ उड़िसा, कलकत्ता, १९५६

हाजरा, आर०सी – स्टडीज इन पुराणिक रेकार्ड्स आन हिन्दू राइइट्स एण्ड कास्टम ढाका (१९४०)

हापकिन्स, इ.डब्ल्यू – दी रेलिजन आफ इण्डिया, वाराणसी (१९२६)

श्रीवास्तव. वी.सी – सन वरसिप इन ऐसेंट इण्डिया, इलाहाबाद (१९५८)